वीरमार्तंड चामुण्डरायदेव विरचित

चारित्रसार

(हिन्दी भाषा सहित)

आचार्य श्रीशान्तिसागर जैन ग्रन्थमाला

श्रीमद्वीरमार्तण्ड चामुण्डराय देव-विरचित

चारित्रसार

धर्मरत्न स्वर्गीय पंडित लालारामजी जैन शास्त्री कृत हिंदी भाषा सहित ।

जिसको

शांतिसागर जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था श्रीमहावीरजी (राजस्थान) के
महामंत्री—गृहविरत ब्रह्मचारी श्रीलाल काव्यतीर्थ ने
ब्रह्मचारिणी नत्थो देवी जी देहली की द्रव्य सहायता से

मुद्रक शेठ हीरालालजी पाटणी निवाईवासी के मंत्रित्व में
संस्थाके पवित्र प्रेसमें छपाकर प्रकाशित किया ।
वैशाख, वीर निर्वाण संवत् २४८८

प्राक् कथन

चारित्र चक्रवर्ती दिगम्बर जैनाचार्य श्री शांतिसागर जी के चरण प्रसाद से दिगम्बर जैन धर्मावलंबी श्रावक श्राविकाओ के अन्त: करण अपनी आत्माको वीतराग बनाने के लिये उत्साहित हुए। जिन लोगोंने कभी इन्द्रिय विजय न किया था, जो सदा ऐश आराम मे ही पले थे, उनके हृदयमे भी एक देश और सकल देश चारित्र धारण करने की भावना जागृत हो उठी और वे क्षुल्लक एलक मुनि आर्यिका आदि के व्रत लेकर कठिन कठिन तपस्या करने मे लग गये; जो ऊंचा व्रत न पाल सक्ते थे वे पहली प्रतिमा से लेकर दशमी प्रतिमा तक के व्रत अपनी शक्ति के अनुसार पालने मे तत्पर हुए, जो प्रतिमा रूप एक देश चारित्र न पाल सक्ते थे वे अष्ट मूल गुण मात्र धारण कर पाक्षिक श्रावक बने। इस तरह आप के उच्च आदर्श (सर्वस्व त्यागकर नग्न दिगम्बर मुनि बन जाना) को सामने देखकर असंख्य आत्माओने अपना सच्चा कल्याण का मार्ग पकडा ।

ब्रह्मचारिणी नत्थो देवी भी उनही आत्माओ मे से है जिन्हाने देहली सरीखे विशाल नगर मे और वैभवपूर्ण धनिक घराने मे रहकर भी सातवी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। आप चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शातिसागर जी महाराज की सल्लेखना के समय कुंथल गिरिपर उपस्थित थी और वहा ही आपके भाव एक चारित्र ग्रन्थ आचार्य शातिसागर जी की स्मृति मे प्रकाशित कर संसार मे चारित्र की महत्ता प्रसिद्ध करने के हुए। सुजानगढ़ (राजस्थान) मे आचार्य शांतिसागरजीके प्रशिष्य, आचार्य वीरसागर जी के शिष्य आचार्य शिवसागरजी का चातुर्मासिक योग सन् १९६० विक्रम संवत् २०१७ वीर निर्वाण सं० २४८६ मे हुआ। आचार्य संघकी आहारादि द्वारा वैयावृत्ति करने के लिये आप वहां पधारीं । सौभाग्यवश आचार्य महाराज का आहार निर्विघ्न आपके यहां हुआ। उससमय आपने अपनी चारित्र ग्रंथ प्रकाशित करनेकी इच्छा आचार्य महाराज तथा श्री संघ की आर्यिका गणिनी माता जी वीरमतिजी से प्रगट की।

सुजानगढमे आचार्य संघ की चरण सेवा मे हम (ब्र० श्रीलाल) और स्याद्वाद वारिधि पं० खूबचंदजी शास्त्री (इससमय स्वर्गस्थ) भी उपस्थित थे। संस्कृत ग्रंथ, चारित्रसारका प्रतिदिन व्याख्यान स्याद्वाद वारिधि जी प्रात: काल करते थे । उसको हिंदी भाषा सहित प्रकाशित करने का विचार सर्व सम्मति से हुआ। आ० शान्तिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था (श्री महावीरजी) का महामंत्री होने के कारण मुझे यह भार सौपा गया और आज वह ग्रन्थ आपके स्वाध्यायार्थ आपके कर कमलो मे विराजमान है।

उस ग्रंथ के प्रकाशन का समस्त व्यय ब्र: नत्थो देवीजी (अम्माजी सुंदरलालजी सुरेंद्रकुमारजी सदरबाजार देहली) ने किया है और सर्व साधारण मे ज्ञान वर्धन के लिये विनामूल्य वितरण किया है। सस्थासे मासिक पत्र श्रेयोमार्ग प्रकाशित होता है उसके ग्राहकों को भी यह उपहार मे दिया गया है। इस धर्म प्रेम के लिये ब्रह्मचारिणी जी धन्यवाद की पात्र है। आपका अनुकरण अन्य लोगोंको भी करना चाहिये।

संस्था ने अपना निजी भवन श्रीमहावीरजी क्षेत्रकी गभीर नदीके पूर्व तट पर सन् १९६१ में बनवाया उसमें प्रेस और पुस्तकालयका परिवर्तन किया तथा नवीन टाइप (शीशाक्षर) मगाया इसलिये इस ग्रंथके छपनेमे आशातीत विलम्ब हुआ। संस्थाके प्रेसमें अपवित्र सरेस (मांस) के बेलनों से छपाई नहीं होती, पवित्र कपडे और रबड के बेलनों से छपाई होती है इस लिये अधिक सुंदर छपाई नहीं हुई हैं, तो भी भविष्यमे सुन्दर छपाई हो इसका प्रयत्न किया जा रहा है।

संस्थाने इस ग्रन्थ को आजसे ४० साल पहले कलकत्ता में प्रथमवार छपाया था, इसकी प्रति बहुत वर्षों से मिलती न थी इसलिये यह द्वितीय संस्करण छपाया गया है। प्रतिलिपिसंशोधन सावधानी से किया गया है तौ भी दृष्टि दोषसे अशुद्धि रह जाना संभव है इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जो लोग संसारी प्राणियों से सच्ची सुख शान्ति का प्रचार करना चाहते है उन्हे वीतराग सर्वज्ञ की वाणी के प्रचार में तन मन धन लगा देना चाहिये।

वैशाख वदी ५ वि० सं० २०१९
२२ अप्रेल १९६२ वीर नि: २४८८
आचार्य श्रीशांतिवीर नगर, श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

गृहविरत ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ
महामंत्री
श्री शांतिसागर जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था।

श्री शांतिसागरजैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्थाका उद्देश्य और परिचय

यह सुप्रसिद्ध आचार्य श्री १०८ आचार्य श्रीशांतिसागर जी महाराज की स्मृतिमें स्थापित है। इस का उद्देश्य समस्त जैन अजैन समाज में दिगम्बर जैन धर्म के उद्देश्या का प्रचार करना है इस उद्देश्य के अनुसार वर्तमान मे यह संस्कृत प्राकृत जैन शास्त्रों का हिन्दी अनुवाद मूल सहित अपने पवित्र प्रेस मे छपाकर प्रचार कर रही है।

"श्रेयोमार्ग" मासिक पत्र धार्मिक लेखों से विभूषित निकाल रही है। इस संस्था का निजी भवन श्रीमहावीरजी में गंभीर नदी के पूर्व तट पर सड़क के पास अवस्थित है।

त्यागी व्रती संसारसे विरक्त पुरुषों के लिये एक विद्यालय स्थापित करनेकी योजना विचाराधीन है।

आप जैन धर्मका प्रचार करना चाहते हैं तो इसके सहायक बनिये, निरीक्षण कीजिये, और एक आदि जैन ग्रंथ प्रकाशित करा कर बिना मूल्य अथवा अल्प मूल्य से बटवाईये।

व्रति विद्यालय के लिये भवन मे एकादि कमरा बनवा कर सहायता कीजिये।

अन्तिम जीवन मे शाति प्राप्त करने के लिये स्वयं व्रती बनकर यहां निवास कीजिये और जैन शास्त्रों का अर्थ विद्वामों से सुनकर पढ़ कर आत्मकल्याण कीजिये।

महामंत्री—आचार्य श्रीशांतिसागर जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था
आचार्य श्रीशांतिवीरनगर, श्रीमहावीरजी (राजस्थान)

ब्रह्मचारी श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर स्तवन

लेखिका—श्रीमती ब्रह्मचारिणी नत्थो देवी, सदर बाजार बारहटोटी—देहली

१

शांतिसिंधुका ध्यान करो नर नारि, भक्ति चित्तमें लाके।
जिन तजी विनश्वर देह, समाधि सजाके॥ टेक॥

२

एक 'भोज' ग्राम है भारी, वहां 'भीम गौड' अधिकारी,
उनकी 'सत्यवती' शुभ नारी, गर्भमें जन्म लिया तुम आके॥ शांति०॥

३

'सतगौडा' नाम सुहाया, बालावस्था वीत युवापन आया,
धारा ब्रह्मचर्य व्रत तुमने, सव विधि काम नशाके॥ शांति०॥

४

पल पल क्षण क्षण होते, सैंताल्लीस वर्ष जब वीते,
धरा दिगम्बर वेष, परिग्रह सभी हटाके॥ शांति०॥

५

सागर शांति कहाये, सार्थक नाम धराये
जीते उपसर्ग महान्, आत्मामें ध्यान जमाके॥ शांति०॥

६

विक्रमका संवत् आया, शत उनीस चौरासी १६८४ गाया,
तब शिखर सम्मेद को चाले, सिद्धोमें भक्ति लगाके ॥ शांति० ॥

७

धर्मामृत वर्षा कीनी, आत्मिक शांति दीनी,
किया जगत उद्धार, सच्चारित्र दिखाके ॥ शांति० ॥

८

नेत्रों की ज्योति घटी है, व्रत पालनमें बाध पडी है,
तुम लीनी सलेखना धार, अहिंसामें प्रीति लगाके ॥ शांति० ॥

९–१०

भादों सुदि द्वितीया आई, रविवार दिवस शुभ गाई,
दोहजार बारह मांहि, प्रातः सात बजाके ॥ शान्ति० ॥
श्रीकुंथल गिरिके शीस, कर उपवास छतीस,
भये स्वर्गमें देव, व्रत आदर्श दिखाके ॥ शांति० ॥

११

तुम होगे सिद्ध भगवान, सिद्धों का करके ध्यान,
'नत्थो' को दो सद् ज्ञान, चरण का सहारा लगाके ॥ शांति० ।

प्रातःस्मरणीय चारित्र–चक्रवर्ती, तपोमूर्ति, दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८शान्तिसागर महाराजका अतिसंक्षिप्त परिचय।

आचार्य श्री शान्तिसागरजीका जन्म भोज (बेलगाम) ग्राम निवासी क्षत्रिय वंशमें मातुल-गृह (मामाके घर) में आषाढ़ कृष्ण ६ सं० १९२९ में बुधवारकी रात्रिको हुआ। आपका जन्म नाम 'मानगौंडा' पिताका नाम 'भीमगौंडा' व माताका नाम 'सत्यवती' था। आप जातिसे चतुर्थ जैन थे।

शैशव काल—

आपका शरीर प्रारम्भसे ही कसरती और बलिष्ठ रहा। आपकी प्रवृत्ति शांत तथा विवेकशील रही। आप मधुर भाषी और कम बोलने वाले रहे; अन्य बालकोंके साथ क्रीड़ा करना आपको पसन्द नहीं था। इस अवस्थामें भी आप बड़ोंके पास बैठकर तात्त्विक चर्चा सुनना अधिक पसन्द करते थे। कुश्ती कूदने आदिमें आपका समकक्ष आस-पासके ग्राममें नहीं था। मधुरभाषी, साहसी और धैर्यवान होनेके कारण आप समस्त ग्रामके प्रिय थे।

बाल्यकाल—

भोज ग्राममें जो शिक्षण उपलब्ध हो सकता था, वह आपने प्राप्त किया। तदुपरान्त आपका ज्ञान शास्त्र-स्वाध्यायके साथ परिपक्व होता रहा। बालपनमें आपको ऐसे साधन उपलब्ध हो गए जो आपकी तात्त्विक शक्तिको बढ़ानेमें सहायक हुए। "बाल्य जीवनमें माता पिताके संस्कार शिशुके अंतःकरण पर अंकित हो जाते हैं" यह लोकोक्ति आचार्य श्रीके सम्बन्धमे पूर्ण रूपसे घटित हुई। आपकी माता साधुओं, विद्वानों, त्यागियों तथा मुनिराजोंको आहार देती थीं। आप उन्हें सहयोग देते थे। उपदेशोंका श्रवण करते थे। अपनी ज्ञानवृद्धि करते थे अतएव १७ वर्षकी आयुमें ही वैराग्य भाव और मुनि बननेकी लालसा जागृत हो चुकी थी। आप एक मुनिराज आदिसागरजीको स्वयं कन्धे पर बैठाकर नदी पार कराते थे।

निर्दोष बाल-ब्रह्मचारी—

८ वर्षकी अवस्थामें ही ६ वर्षकी बालिकासे आपका विवाह कर दिया गया। परन्तु वह बालिका ६ माह बाद ही मरणको प्राप्त हुई। १८ वर्षकी आयु होनेपर माता–पिताने आपसे पुनः विवाहके लिए आग्रह किया किन्तु आपने अनिच्छा प्रकट की। आग्रह होनेपर आपने दृढ़तासे कहा—'यदि गृहजालमें फँसानेका प्रयत्न किया तो घरबार छोडकर मुनिदीक्षा ले लूँगा'।

आपकी वैराग्य भावना देखकर माता पिताने अपना विचार बदल दिया। इसप्रकार आप बाल्यकालसे ही निर्दोष ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते रहे।

युवा अवस्था—

आपकी भावना दीक्षा लेनेकी देखकर माता--पिताने आपको व्रत, नियम, उपवास आदि करनेकी स्वीकृति दे दी साथमें आज्ञा दी कि वे उनके जीवन पर्यन्त घर छोडकर न जायें। वे अधिक समय कपडेकी दूकान पर व्यतीत करते थे और शास्त्र स्वाध्यायमें लीन रहते थे। अनुज–भ्राताके कार्यवश बाहर चले जानेपर कारोबार आपको देखना पडता था। ग्राहकके कपडा पसन्द कर लेनेपर आप भाव बताकर कह देते थे कि स्वयं कपडा नापकर ले लो, दाम रख दो अथवा बहीमें स्वयं लिखकर ले जावो। धीरे धीरे आपकी दुकान ही स्वाध्यायशाला हो गई। मध्याह्नमें १५-२० सज्जन वहां एकत्रित हो जाते थे और शास्त्र-प्रवचन वहां किया जाता था। ३२ वर्षकी अवस्थामें आप श्री सम्मेद-शिखरजीकी वंदना के लिएगये और सदैवके लिए घी-तेल खाना छोड आए। घर आनेपर एकबार भोजन करनेकी प्रतिज्ञा भी ले ली।

आपके पिताने १६ वर्ष तक एकबार भोजन पानी लिया और १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया। एक दिन उन्होंने अपने पुत्रोंको एकत्रित कर परिवारका भार सौंप यम समाधि धारण कर पंच परमेष्ठीका स्मरण करते हुए शरीर त्याग दिया। आपकी अवस्था उस समय ३७ वर्षकी थी। ३ वर्ष बाद आपकी माताने भी समाधि धारण कर १२ घंटेमें देह त्याग दी। अब आप माता पिताकी आज्ञासे स्वतन्त्र हो गये।

दीक्षा—

ज्येष्ठ सुदी १३ सं० १९७२ में 'उत्त' ग्राममें मुनिराज श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामीसे आपने क्षुल्लक पदकी दीक्षा ग्रहणकी और घर-बार त्याग दिया। विहार करते हुए आपने श्री गिरनारजीकी यात्रा की, वहां पर ऐलक पद ग्रहण किया ४७ वर्षकी आयुमें विक्रम सं० १९७६ में यामल (यरनाल) ग्राममें पंच-कल्याणकके अवसर पर दीक्षादिवसको मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामीसे आपने मुनिदीक्षा धारण की।

आपने दक्षिण प्रान्तमें भ्रमण कर जैनागमका प्रभाव व्यक्त किया। अनेक कुरीतियोंका निवारण किया। धीरे-धीरे आपकी ख्याति होने लगी। आपने श्रावकोंको मुनि और क्षुल्लक एलक व्रतकी दीक्षा दी और आचार्य पद धारण किया।

ससंघ उत्तर-भारत में भ्रमण—

मगसिर कृष्णा प्रतिपदा सं० १९८४ को आचार्य शान्तिसागरजीने ससंघ श्रीसम्मेदशिखरजी की वंदनार्थ पर्यटन किया। मुनिविहारका शताब्दियों बाद उत्तर भारतमें यह प्रथम अवसर था। उत्तरीय भारतमें धार्मिकताकी लहर उमड पडी स्थान-स्थान पर अपूर्व स्वागत हुआ। सम्मेदशिखर पहुंचने पर पंच कल्याणक उत्सव हुआ और समस्त भारतसे लाखों यात्री एकत्रित हुये। श्री सम्मेदशिखरकी वंदनाके उपरांत उत्तर प्रदेश, मध्य-भारत और मध्य-प्रदेशमें विहार करके कटनी ललितपुर होता हुआ यह संघ देहली पधारा। भारतकी राजधानी धन्य हुई। आपके संघमें इस समय ७ मुनिराज थे जो सप्तऋषिके नामसे विख्यात थे। आपके चरण रजसे जैन आश्रम देहलीका भवन पवित्र हुआ जहां चतुर्मास सानन्द हुआ। देहलीसे विहार करनेपर यह संघ राजस्थान गुजरात काठियावाडसे विहार करता हुआ गिरनार क्षेत्रकी वन्दनाकर दक्षिण प्रान्तको लौट गया। ७ वर्षके इस बीस हजार मील पैदल विहारमें लाखों स्त्री-पुरुषोंने आध्यात्मिक लाभ उठाया। मुनि विहारका मार्ग निर्बाध प्रशस्त बना दिया। दिगम्बर जैन सस्कृतिकी भारी प्रभावना हुई। आप द्वारा दीक्षित मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका क्षुल्लिका, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी पदका आचार पालनेवालोंकी संख्या लगभग ७०० है और अब तो आपके शिष्य प्रशिष्यों के प्रयत्न और उपदेश से इससे कई गनी हैं।

आपने अनेक महान व्रत लिए और कठिन तपस्या की। कितनी ही बार अनेक उपसर्ग हुए परन्तु आप ध्यानारूढ रहे और आपके चेहरे पर सदैव मुस्कान बनी रही। सर्पोंका उपसर्ग आपके लिए एक खिलवाड रहा। कोनूर की गुफा में एक विषधर सर्प आपके शरीरसे लिपट गया और बहुत समय बाद स्वय ही शरीरसे उतरकर चला गया। एक अन्य उडान मारने वाला सर्प ३ घन्टे तक महाराजके शरीरसे खेलता रहा। शेंडवाल और कोगनौली, मे सर्पोंके अनेक उपसर्ग हुए। मुक्तागिरी, बडवानी, श्रवणबेलगोल, सतपुरा सोनागिरिके पास शेर भी आपकी ध्यान मुद्राके पाससे होकर चले गए। द्रोणगिरिमें एक शेर महाराजके समीप आकर बैठ गया और प्रातः उठकर चला गया। कहा जाता है कि व्याघ्रराज योगिराजके दर्शनार्थ पधारे थे। जिस समय आचार्य निद्राविजय तपमें लीन थे, लाखों चींटियां आपके शरीरसे चिपट गई। प्रातः देखा गया कि शरीर सूज गया है और कितनी ही जगहों से रक्त-प्रवाह हो रहा है। और आपने कितने ही वर्ष अन्न और दुग्ध, रसादिका त्याग रखा।

समाधि—

सं० २००० मे आपने समाधि धारण करनेके लिए स्थानका निर्वाचन करना प्रारम्भ कर दिया। आजसे ३ वर्ष पहले ज्ञात हुआ कि आप २ वर्ष पूर्व ही १२ वर्षके भीतर शरीर त्यागनेका नियम ले चुके है। २४ अक्टूबर सन् १९५३ के दिन आपने विचार व्यक्त कर दिये थे कि दूसरे नेत्रकी ज्योति मन्द होनेपर यम सल्लेखना धारण कर लेंगे। १४ अगस्त सन् १९५५ को आपने यम सल्लेखना ग्रहण कर इङ्गिनी—मरण व्रत धारण किया। १५ अगस्त सन् १९५५ से आप किसी दिन केवल एकबार गर्म जल ले रहे थे। ४ सितम्बर सन् ५५ से आपने जल लेना सर्वथा बन्द कर दिया। धीरे-धीरे आपका शारीरिक बल क्षीण होता गया। पर आत्मबलमें कोई कमी न आसकी। दिनाङ्क १८-सितम्बर सन् १९५५ रविवारको प्रातः ७ बजकर १० मिनटपर आपका देहावसान हो गया।

स्वर्ग प्रयाण करनेके पूर्व ये मुनीन्द्र ३६ उपवास होते हुए भी पूर्ण सावधान और आत्मचिंतनमें निमग्न थे। इनके मुखसे अस्पष्ट ध्वनिमें ॐ सिद्धाय नमः पुण्य मंत्रके शब्द निकले थे। इनका दाह संस्कार जैन शास्त्रानुसार कुंथल-

गिरि पर्वतपर भारतसे भिन्न-भिन्न प्रांतोंसे आगत लगभग १५ हजार नरनारियोंके समक्ष कोल्हापुरके जैन मठाधीश भट्टारक लक्ष्मीसेन महाराजके तत्त्वावधानमें हुआ था। इनके वियोगमें भारतवर्ष भरमें लाखों लोगोंने व्यापार आदि बंद कर श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। राजधानी देहलीमें ता० १८ सितम्बरको उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णनने अपने भक्तिपूर्ण शब्दोंमें इनकी अभिवंदना करते हुए कहा—आचार्य शांतिसागरजी ऐसे संत थे, जिनके बलिदानके सहारे ही यह संसार जीवित है। आचार्य श्री बहुत बड़े सन्त थे, जिनके निधनसे भारतको बहुत बड़ी क्षति पहुंची है। जनताको चाहिए कि वह आचार्य शांतिसागरजीके आदर्शोंको अपने जीवनमें व्यावहारिक रूप दे।

शिष्य—परंपरा

आचार्य श्रीशांतिसागरजी ने सल्लेखनाके समय अपना आचार्य पद मिती भादों वदी ७ सं० २०१२ बुधवार तारीख २४ अगस्त सन १९५५ के दिन अपने प्रथम दीक्षित सुयोग्य मुनि शिष्य वीरसागरजी महाराजको प्रदान किया। इस समय मुनिराज वीरसागरजी का चतुर्मास जयपुर में (खानिया दि० जैन नशियामें) होरहा था। स्थानीय और बाहर से आये लगभग १० हजार जैन जनताने आचार्य पद प्रदानका उत्सव मनाया। मुनिराज वीरसागरजी के संघ में उस समय ३ मुनि ३ क्षुल्लक १०–१२ आर्यिकाएं, ६–७ क्षुल्लिकाएं तथा बीसों ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणीयां थे। इसलिये वे दीक्षा शिक्षा देने का कार्य तो गुरु आज्ञासे पहले से ही करते आते थे परन्तु अब विधिवत् आचार्य पदसे सुशोभित हो यह कार्य करने लगे।

आचार्य वीरसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम हीरालाल जी था। बंबईप्रांतके वीर गाम में आपका जन्म विक्रम संवत् १९३३ में आसाढ सुदी १५ पूर्णमासी के दिन हुआ। पिताका नाम शेठ रामसुख जी और माता का नाम 'भागू' बाई था। जाति खंडेलवाल, गोत्र गंगवाल धर्म दिगम्बर जैन था। आपने संसार को निःसार समझ कर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया और दक्षिण की जैन जनतामें जैन धर्मका प्रसार करने के कार्य में लग गये आपने जगह जगह जैन पाठशाला स्थापित कराई और औरंगावादमें विद्यालय स्थापित कर स्वयं अध्यापक और संचालक का काम करने लगे। ऐलक पन्नालाल जी से आपने दूसरी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये।

अब आपकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर वैराग्यकी तरफ बढ़ने लगी। ऐसे ही समय आचार्य श्रीशांतिसागर जी का नाम और यश प्रकाशमें आया। आप अपने मित्र नांदगांव निवासी शेठ खुशालचंदजी के (पीछे जो मुनिराज चंद्रसागर जी नामसे प्रसिद्ध हुए) साथ आचार्य श्री के दर्शनार्थ बेलगाम जिले के 'कोहिनूर' ग्राममें पहुंचे। यहां आपके परिणाम इतन विशुद्ध हुए कि–सदा के लिये घर बार छोड कर आप आचार्य श्री के पादमूल में रहने लगे। विक्रम सं १९८० फागुन सुदी सप्तमी के दिन कुंभोज नगर में आप क्षुल्लक बने। आपका शुभ नाम वीरसागर रखा गया

आपने सर्वथा परिग्रह का त्याग कर विक्रम सं० १९८१ में आश्वन सुदी ११ के दिन, 'समडौली' ग्राममें मुनि दीक्षा आचार्य शांतिसागर जीसे ग्रहण की। अब आप सर्वथा निराकुल हो आत्मविशुद्धिमें रत रहने लगे। जब आचार्य संघने श्रीसम्मेदशिखरजी की वंदनाके लिये विहार किया तब आप भी साथ में थे। मध्य और उत्तर भारतके प्रायः समस्त नगरों में धर्मामृत वर्षाकर जब आचार्य शांतिसागर जी दक्षिण वापिस लौटने लगे तो आप ज्ञान चारित्र से शिथिल उत्तर भारत में धर्मप्रचारार्थ गुरु आज्ञा से इधर ही रहगये।

आपकी तपश्चर्या और उपदेशशैली से, जहां आप जाते वहां की ही जनता प्रभावित होती और शक्त्यनुसार चारित्र ग्रहण करती। आपकी संगठन शक्ति अपूर्व थी इसलिये आपके संघमें त्यागियोंकी संख्या अन्य आचार्य संघोंसे अत्यधिक थी।

आपने समाधिपूर्वक इस नश्वर देह को आश्विनवदी अमावस सं० २०१४ में दिन के साढे ग्यारह बजे सामायिक करते हुए छोडा। आपकी छतरी (समाधिस्थल) खानिया में संगमरमर की लगभग २५ पचीस हजार रु० लगा-कर आपके भक्तोंने बनवाई है जहां प्रतिवर्ष आश्विन वदी अमावसके दिन श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये मेला लगता है।

आचार्य शिवसागरजी महाराज

आचार्य वीरसागरजी का पद आपके प्रथम शिष्य मुनिराज शिवसागरजी को मिला। आप विद्वान सहनशील कठोर तपस्या करने में अभ्यस्त और गुरु भक्त हैं। आपका नाम भी गृहस्थावस्थाका 'हीरालाल' था। खंडेलवाल जाति, रांवका गोत्र में आपका जन्म दक्षिण प्रान्त के 'अडगांव' नामक ग्राम में हुआ पिताका नाम सेठ नेमीचंदजी और माताका नाम दगडा बाई था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा आपके दीक्षा गुरु आचार्य वीरसागरजी जब हीरालालजी ब्रह्मचारी थे तब उनके तत्त्वावधानमें ही हुई। गुरुके समान आप भी बालब्रह्मचारी है।

आपने सातवीं प्रतिमा मुक्तागिरी सिद्ध क्षेत्रपर ग्रहण की फिर संवत् २००० के फागुन सुदी ५ को आचार्य वीरसागरजी से सिद्धवर कूट पर क्षुल्लक के व्रत ग्रहण किये। इसके बाद नागौर (राजस्थान) में आचार्य संघका चोमासा हुआ वहां सं० २००६ के आसाढ सुदी ११ के दिन शुभ मुहूर्त में मुनिव्रत धारण किया। तबसे आप सदा ही आत्म शुद्धि में उत्तरोत्तर उन्नति कर रहे है। इससमय आपके संघमें ६ मुनिराज, २ क्षुल्लक, २१ आर्यिका माताजी १ क्षुल्लिका तथा ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी लगभग २१ है।

जैन धर्मका जो उद्योत इस समय हो रहा है, उसमें प्रधान कारण आचार्य शान्तिसागर जी ही हैं इसलिये मैं उनके श्री चरणों में श्रद्धापूर्वक शीस नमाती हूं और भावना करती हूं कि—मुझे सदा ही वीतराग मार्गका अवलंबन मिले जिससे एक दिन, मैं कर्म—बंधनसे सर्वथा मुक्त हो अनंत सुख का अनुभव अनंत काल तक करती रहूं।

विनीता—नत्थो देवी ब्रह्मचारिणी, देहली

आषाढ सुदी ८ विक्रमसं० २४८८

॥ श्री सर्वज्ञजिनवाणी नमस्तस्यै ॥

शास्त्र---स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ जय जय जय, नमोस्तु ! नमोस्तु !! नमोस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः । कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका । मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ३

॥ श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनःप्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री............ ....नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोनुसारतामासाद्य श्री.................. आचार्येण विरचितं, सर्वे श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु ।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाद्या जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥

प्रत्येक मनुष्य को नित्य प्रति स्वाध्याय करना चाहिए ।

श्रीमान् सुन्दरलालजी सुरेन्द्रकुमार जी की अम्माजी श्रीमती ब्रह्मचारिणी नत्थो देवी देहली वालीकी ओर से सादर भेंट

श्री वीतरागाय नमः

श्री शांतिसागर जैन ग्रंथमाला

श्रीमच्चामुण्डराय विरचित–

चारित्रसार

हिंदी अनुवाद सहित

अरिहननरजोहननरहस्यहरं पूजनार्हमर्हन्तम् ।
सिद्धान्सिद्धाष्टगुणान् रत्नत्रयसाधकान् स्तुवे साधून् ॥

मैं (ग्रंथकर्ता श्रीचामुंडराय) मोहनीय कर्मका नाश करनेवाले ज्ञानावरण तथा दर्शनावरणका नाश करनेवाले और अंतराय कर्मका नाश करनेवाले तथा सबके द्वारा पूजा करने योग्य ऐसे अरहंत भगवानकी स्तुति करता हूँ तथा सिद्धोंके आठ गुणोंसे सुशोभित ऐसे

श्रीमज्जिनेन्द्रकथिताय सुमंगलाय लोकोत्तमाय शरणाय विनेयजंतोः।
धर्माय कायवचनाशयशुद्धितोऽहं स्वर्गापवर्गफलदाय नमस्करोमि
धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते। धर्मेणैवसमाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया। धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय॥

।मूलगांवतत्रणुव्राप—— वतक्यस्स

सम्यग्दृष्टीनां चत्वारो बंदनाप्रधानभूताः, अर्हन्तः सिद्धाः साधवो धर्मश्चेति। तत्रार्हत्सिद्धसाधवो नमस्कारेणोक्ताः, धर्म उच्यते आत्मा-

सिद्ध भगवानकी स्तुति करता हूँ और सदा रत्नत्रयको सिद्ध करनेवाले साधुलोगोंकी स्तुति करता हूँ॥ १॥

और जो अन्तरंग वहिरंग लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान अरहंत देवका कहा हुआ है, जो संसारमें सुमंगल रूप है। सर्वोत्तम है। शिष्य जीवोंको शरणरूप है। और स्वर्ग मोक्ष रूप फल देनेवाला है ऐसे धर्मको मैं मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक नमस्कार करता हूँ॥ २॥

इस संसारमें धर्म ही सब सुखोंका खजाना है और धर्म ही सबका हित करनेवाला है। इस धर्मको विद्वान् लोग ही सेवन करते हैं वा वृद्धि करते हैं। इस धर्मसेही मोक्षसुख प्राप्त होता है इसलिये इसी धर्मकेलिये मैं नमस्कार करता हूँ। संसारी जीवोंको धर्मके सिवाय और कोई मित्र नहीं है। इस धर्मकी जड दया है इसलिये मैं अपना चित्त प्रतिदिन धर्ममें धारण करता हूँ। हे धर्म! मेरी रक्षा कर॥ ३॥

सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतोंका वर्णन——सम्यग्दृष्टियोंके लिये प्रधान रीतिसे वंदना करने योग्य चार हैं—अरहंत सिद्ध साधु और धर्म। इनमेंसे अरहंत सिद्ध और साधु तो नमस्कार रूपसे कह दिये गये हैं अब धर्मका स्वरूप कहते हैं। जो इस आत्माको सबको इष्ट ऐसे नरेंद्र

...स्थाने धत्त इति धर्मः। अथवा संसारस्थान्प्राणिनो धरते धारयतीति वा धर्मः स च सागाराऽनगार-विषयभेदाद् द्विविधः तत्र सागारधर्म उच्यते।

दार्शनिकव्रतिकावपि सामायिकप्रोषधोपवासश्च। सचित्तरात्रिभुक्तिव्रतनिरतौ ब्रह्मचारी च॥

आरंभाद्विनिवृत्तः परिग्रहादनुमतस्तथोद्दिष्टः। इत्येकादशनिलया जिनोदिताः श्रावकाः क्रमशः॥

व्रतादयो गुणा दर्शनादिभिः पूर्वगुणैः सह क्रमप्रवृद्धा भवंति। तत्र दार्शनिकः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः पंचगुरुचरणभक्तः सम्यग्दर्शन-विशुद्धश्च भवति। जिनेन भगवताऽर्हता परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रंथलक्षणे मोक्षमार्गे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। तस्य सम्यग्दर्शनस्य मोक्षपुर-

सुरेन्द्र मुनींद्र और मोक्ष स्थानमें धारण करदे उसे धर्म कहते हैं अथवा संसारी प्राणियोंको जो धारण कर उत्तम स्थानमें पहुँचादे उसे धर्म कहते हैं। वह धर्म गृहस्थ और मुनियोंके भेदसे दो प्रकारका है उसमेंसे पहिले गृहस्थधर्मको कहते हैं।

दार्शनिक, व्रती, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिव्रत, नित ब्रह्मचारी, आरंभत्यागी, परिग्रहत्यागी, अनुमति और उद्दिष्टत्यागी; इसप्रकार श्री जिनेन्द्रदेवने अनुक्रमसे इन ग्यारह स्थानोंमें रहनेवाले ग्यारह प्रकारके श्रावक बतलाये हैं।

इन श्रावकोंके ये व्रतादि गुण सम्यग्दर्शन आदि अपने पहिलेके गुणोंके साथ अनुक्रमसे बढते रहते हैं। इनमेंसे दर्शन प्रतिमावाला संसार और शरीरके भोगोंसे विरक्त रहता है पांचों परमेष्ठियोंके चरणकमलोंका भक्त रहता है, और सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध रहता है भगवान अरहंत परमेष्ठी श्रीजिनेन्द्रदेवने जो निर्ग्रंथरूप मोक्षका मार्ग बतलाया है उसमें श्रद्धान रखना सम्यग्दर्शन कहलाता है यह सम्यग्दर्शन मोक्षनगरमें जानेवाले पथिकके लिये मार्गमें खानेपीने वा काम आनेयोग्य पाथेय है, मुक्तिरूपी सुन्दर स्त्रीके शृंगार करनेके लिये मणियोंका बना हुआ दर्पण है, संसारमहासागररूपी गढेमें डूबे हुए मनुष्यके लिये दिये हुए हाथका सहारा है। श्रावकोंके

सम्यक्त्वमंगहीनं राज्यमिव श्रेयसे भवेन्नैव । न्यूनाक्षरो हि मंत्रो नालं विषवेदनाच्छित्यै ॥

सम्यक्त्वस्य गुणाः—संवेगो निर्वेदो निंदा गर्हा तथोपशमभक्ती । अनुकंपा वात्सल्यं गुणास्तु सम्यक्त्वयुक्तस्य ॥

उक्तं चावद्धायुष्कविषये—सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि । दुःकुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः ॥

आठो अंगों से परिपूर्ण सम्यग्दर्शन होता है । यदि सम्यग्दर्शन न हो तो अणुव्रत तथा महाव्रतों का नाम तक नहीं होता है । यही सम्यग्दर्शन यदि अणुव्रत सहित हो तो उससे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और यदि महाव्रत सहित हो तो उससे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है । जिसप्रकार अंग-हीन राज्य कल्याणकारी नहीं होसकता उसीप्रकार अंग हीन सम्यग्दर्शन भी कल्याणकारी नहीं हो सकता ; सो ठीक ही है क्योंकि अक्षरहीन मंत्रसे कभी विषकी वेदना दूर नहीं होती ।

अब आगे सम्यग्दर्शनके गुण कहते हैं—संवेग (धर्मके कामोंमें परम रुचि रखना) निर्वेद (संसारशरीरभोगोंसे विरक्त रहना) निंदा (अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निंदा करते रहना) गर्हा (अपनेमें गुण होते हुए भी मनमें अपनी निंदा करते रहना) उपशम (कषायों की मन्दता रखना शांतिभाव रखना) भक्ति (पंच परमेष्ठीमें गाढ भक्ति रखना) अनुकंपा (जीवदयाके भाव प्रगट करते रहना) वात्सल्य (धर्मात्माओंमें प्रेम रखना) ये आठ सम्यग्दृष्टी पुरुषके गुण हैं। सम्यग्दर्शनकी प्रशंसामें अवद्धायुष्क (जिसके सम्यग्दर्शन होगया हो और आयुकर्मका बंध न हुआ हो) के लिये लिखा है—जो शुद्धसम्यग्दृष्टी है वह अव्रती होने पर भी नारकी तिर्यंच नपुंसक, स्त्री नहीं होता, नीचकुलमें उत्पन्न नहीं होता, विकृत (अंग उपांग हीन) नहीं होता थोडी आयुवाला नहीं होता और दरिद्री भी नहीं होता । और भी लिखा है—इस संसाररूपी महासागरमें जो भव्य चारित्ररूपी जहाजपर चढ़कर मोक्षरूपी द्वीपको जारहे हैं उनके लिये यह

भवाब्धौ भव्यसार्थस्य निर्वाणद्वीपयायिनः । चारित्रयानपात्रस्य कर्णधारो हि दर्शनम् ॥

दार्शनिकस्य कस्यचित्कदाचिद्दर्शनमोहोदयाद‌तीचाराः पंच भवंति । शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवा इति । तत्र मनसा मिथ्या-दृष्टेर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशंसा, वचसा भूताभूतगुणोद्भावनं संस्तवः, एवं प्रशंसासंस्तवयोर्मानसकृतो वाक्कृतश्च भेदः शेषाः सुगमाः । सम्यग्दर्शनसामान्याद‌णुव्रतिकमहाव्रतिनोरिमेऽतिचाराः ।

व्रतिको निःशल्यः पंचाणुव्रतरात्रिभोजनविरमणशीलसप्तकं निरतिचारेण यः पालयति स भवति । तत्र यथा शरीरानुप्रवेशिकाण्डकुंतादि

सम्यग्दर्शन खेवटियाके समान है—भावार्थ—सम्यग्दर्शन के विना वे कभी मोक्ष नहीं पहुँच सकते।

किसी समय किसी सम्यग्दृष्टीके दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे शंकाः आकांक्षा, विचिकित्सा अन्यदृष्टिप्रशंसा तथा अन्यदृष्टिसंस्तव ये पांच अतिचार भी होते हैं। मनसे मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान और चारित्र गुणोंको प्रगट करना प्रशंसा है और बचनसे उनमें होनेवाले वा न होनेवाले गुणोंको प्रगट करना संस्तव है । वस ! यही मनसे तथा बचनसे होनेवाली प्रशंसा और स्तुति में भेद है । वाकी के अतिचार सब सरल हैं । सम्यग्दर्शन अणुव्रती और महाव्रती दोनों के एकसा होता है । इसलिये ये अतिचार भी दोनों के ही होते हैं ।

जो शल्यरहित होकर पांच अणुव्रत रात्रि भोजनत्याग और सातों शीलोंको [तीन गुण व्रत चार शिक्षाव्रतोंको] अतिचार रहित पालता है वही व्रती कहलाता है । शल्य वाणको कहते हैं जिस प्रकार शरीरमें घुसा हुआ वाण अथवा भाला वरछाकी चोट जीवोंको दुःख देती है उसी-प्रकार कर्मके उदय जन्य विकार होनेपर जो शल्यके (वाणके) समान शरीर और मन को दुःख देनेवाला हो उसे शल्य कहते हैं। वह शल्य माया निदान और मिथ्यादर्शनके भेदसे तीन प्रकार है। वंचना ठगना आदिको माया कहते हैं । विषय भोगोंकी इच्छा करना निदान है और

प्रहरणं शरीरिणां बाधाकरं तथा कर्मोदयविकारे शरीरमानसबाधाहेतुत्वाच्छल्यमिव शल्यम्। तत्त्रिविधं, मायानिदानमिथ्यादर्शनभेदात्। माया वंचनं, निदानं विषयभोगाकांक्षा, मिथ्यादर्शनमतत्त्वश्रद्धानम्। उत्तरत्र वक्ष्यमाणेन महाव्रतिनाऽपि शल्यत्रयं परिहर्त्तव्यम्।

अभिसंधिकृतो नियमो व्रतमित्युच्यते, सर्वसावद्यनिवृत्त्यसंभवादणुव्रतं द्वींद्रियादीनां जंगमप्राणिनां प्रमत्तयोगेन प्राणव्यपरोपणान्मनोवाक्कायैश्च आगारीत्याद्यणुव्रतम्।

तस्य प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणलक्षणस्य पंचातीचारा भवंति। बंधो, वधः, छेदः, अतिभारारोपणं, अन्नपाननिरोधश्चेति। तत्राभिमतदेशगमनं प्रत्युत्सुकस्य तत्प्रतिबंधहेतोः कीलादिषु रज्ज्वादिभिर्व्यतिषंगो बंधः। दंडकशावेत्रादिभिः प्राणिनामभिघातो वधः। कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं छेदः।

अतत्त्वोंका श्रद्धान करना अथवा तत्त्वोंका श्रद्धान न करना मिथ्यादर्शन है। आगे जो महाव्रतका स्वरूप कहेंगे उसको धारण करनेवाले महाव्रतोंका भी तीनों शल्योंका त्याग कर देना चाहिये।

अभिप्राय पूर्वक नियम करनेको व्रत कहते हैं। गृहस्थके समस्त पापोंका त्याग होना असंभव है इसलिये जो गृहस्थ मन वचन काय इन तीनोंसे प्रमाद वा कषायसे होनेवाले दो इंद्रिय आदि त्रस जीवोंके प्राणों के घातसे दूर रहता है अर्थात् जो मन वचन काय तीनोंसे त्रस जीवोंकी हिंसा करना छोड़ देता है उसका वह पहिला अहिंसाणुव्रत कहलाता है। प्रमादके निमित्तसे त्रस जीवों की हिंसाका त्याग करनेरूप अहिंसाणुव्रतके बंध वध छेद अतिभारारोपण और अन्नपान निरोध ये पांच अतिचार होते हैं। जो (पुरुष स्त्री वा पशु) अपनी इच्छानुसार किसी स्थानको जाना चाहता हो उसे रोकनेके लिये कील खूंटा आदिमें रस्सी सांकल आदि के द्वारा बांधना बंध कहलाता है। लकड़ी कोड़ा और बेंत आदिके द्वारा जीवोंको मारना वध है। कान नाक आदि अवयवोंका काटना छेद है। बैल घोड़ा आदि जीव अपनी शक्तिके अनुसार न्यायसे ले जाने योग्य जितना बोझ ले जा सकते हैं उससे अधिक बोझ लादना अतिभारारोपण कहलाता है। किसी भी

...भारस्य वाहनमतिलोभाद् गवादीनामतिभारारोपणं। तेषां गवादीनां कुतश्चित्कारणात् क्षुत्पिपासाबाधोत्पादनमन्नपाननिरोध इति।

...नात्निवृत्तादरो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम्। तस्य व्रतस्य पंचातिक्रमा भवन्ति। मिथ्योपदेशः, रहोऽभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहारः, साकारमंत्रभेदश्चेति।

...क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवर्त्तनमभिसंधानं वा मिथ्योपदेशः। स्त्रीपुरुषाभ्यामेकांतेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं रहोऽभ्याख्यानम्। अन्येनानुक्तं यत्किंचित्परप्रयोगवशादेवं तेनोक्तमनुष्ठितमिति वंचनानिमित्त लेखनं कूटलेखक्रिया। ...स्य 'एवमित्य'—नुज्ञावचनं न्यासापहारः। अर्थप्रकरणांगविकार-

कारणसे उन बैल घोडा आदि जानवरोंको भूख प्यासकी बाधा देना अन्नपान निरोध है।

स्नेह, मोह और द्वेषके उद्रेकसे असत्य भाषण किया जाता है उस असत्यके त्याग करनेमें आदर रखना गृहस्थके दूसरा सत्याणुव्रत कहलाता है। इस सत्याणुव्रतके भी मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्रभेद ये पाच अतिचार होते हैं। अभ्युदय और मोक्ष सिद्ध करनेवाली विशेष क्रियाओंमें किसी भी अन्य पुरुषको विपरीतरूपसे प्रवृत्त कराना अथवा विपरीत अभिप्राय बतलाना मिथ्योपदेश है। स्त्री पुरुषोंके द्वारा एकान्त में की हुई विशेष क्रियाओंको प्रकाशित कर देना रहोभ्याख्यान है। जो बात किसी दूसरेने नहीं कही है उसी बातको किसीकी प्रेरणासे "उसने यह बात कही है अथवा उसने यह काम किया है" इस प्रकार ठगनेके लिये झूठे लेख लिखना कूटलेख क्रिया है। कोई पुरुष सोना चांदी आदि द्रव्य किसीके धरोहर रख गया हो और फिर अपनी रक्खी हुई संख्या भूलकर थोडा ही द्रव्य मांगता हो उसके लिये वह धरोहर रखनेवाला "अच्छा ठीक है इतना ले जाओ" इस प्रकार आज्ञा दे तो उस धरोहर रखनेवालेके न्यासापहार अतिचार लगता है। किसी अर्थके

भ्रूक्षेपादिभिः परादूतमुपलभ्य यदाविष्करणमसूयादिनिमित्तं तत्साकारमन्त्रभेद इति । अथ राजादिभयेन पार्थिवादिभयवशाद्वा परित्यक्तं वा निहितं पतितं विस्मृतं वा यददत्तं ततो निवृत्तादरः श्रावक इति तृतीयमणुव्रतम् ।

अदत्तादानविरतेः पंचातीचाराः भवन्ति । स्तेनप्रयोगः, तदाहृतादानं, विरुद्धराज्यातिक्रमः हीनाधिकमानोन्माने, प्रतिरूपकव्यवहारश्चेति । मोषकस्य त्रिधा प्रयोजनं, स्वयमेव प्रयुंक्ते, अन्येन वा प्रयोजयति, प्रयुंक्तमनुमन्यते वा यः स स्तेनप्रयोगः । अप्रयुक्तेनाननुमतेन च चोरेणानीतस्य ग्रहणं तदाहृतादानम् । विरुद्धं राज्यं विरुद्धराज्यं, उचितन्यायादन्येन प्रकारेणादानं ग्रहणमतिक्रमः, तस्मिन्विरुद्धराज्ये योऽसावतिक्रमः स विरुद्धराज्यातिक्रमः । प्रस्थादि मानं तुलाद्युन्मानमेतेन न्यूनेनान्यस्मै देयमधिकेनात्मना

प्रकरणसे अथवा अंगोंके विकारसे वा भौंह चलाने आदि किसी भी कारणसे दूसरेका अभिप्राय जानकर ईर्षा और डाहके निमित्तसे उस अभिप्रायको प्रगट कर देना साकारमन्त्रभेद कहलाता है।

जो राजा आदिके भयके वशसे परवश होकर छोड दिया गया हो अथवा कोई रखगया हो वा किसीसे पड गया हो अथवा कोई भूल गया हो ऐसे दूसरेको दुःख देनेवाले विना दिये हुए द्रव्यको ग्रहण करना चोरी है उसका त्याग करना अथवा उसका त्याग करनेमें आदर रखना श्रावकके तीसरा अचौर्याणुव्रत कहलाता है। इस अचौर्याणुव्रतके स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम हीनाधिकमानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार ये पांच अतिचार होते हैं। चोरको तीन तरहसे प्रेरणा की जा सकती है—एक तो चोरको स्वयं प्रेरणा करना, दूसरे अन्य किसीसे प्रेरणा कराना और तीसरे चोरी करनेवालेको भला मानना इन तीनों क्रियाओंको स्तेनप्रयोग कहते हैं। जिसको चोरी करनेके लिये न तो प्रेरणा की है और न जिसकी चोरी करनेमें सहमत हुआ है ऐसे चोरके द्वारा लाये हुए द्रव्यको ग्रहण करना तदाहृतादान है। जिस राज्यमें विरुद्धता फैली हो उसे विरुद्धराज्य कहते हैं, उचित न्यायको छोडकर दूसरी

आश्रमितोमादि कूटप्रयोगो हीनाधिकमानोन्मानम्। कृत्रिमै हिरण्यादिभिर्वञ्चनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहार इति। उपात्ताया अनुपात्तायाश्च परांगनायाः संगाद्विरतरतिर्विरताविरत इति चतुर्थमणुव्रतम्।

स्वदारसन्तोषव्रतस्यातीचाराः पंच भवंति परविवाहकरणं, इत्वरिकापरिगृहीतागमन इत्वरिकाअपरिगृहीतागमनं अनंगक्रीडा, कामतीव्राभिनिवेशश्चेति तत्र सद्वेद्यस्य चारित्रमोहस्य चादयाद्विवहनं विवाहः परस्य विवाहकरणं परविवाहकरणं ज्ञानावरणक्षयोपशमादापादितकलागुणज्ञतया चारित्रमोहस्त्रीवेदोदयप्रकर्षात् अंगोपांगनामोदयावष्टंभाच्च परपुरुषानेतीति इत्वरिका या गणिकात्वेन वा पुंश्चलीत्वेन पर

तरहसे ग्रहण करना अतिक्रम कहलाता है। किसी विरुद्ध राज्यमें अतिक्रम करना अर्थात् उचित न्यायको छोड़कर अन्याय पूर्वक लेना देना विरुद्धराज्यातिक्रम है। नापनेके सेर पायली आदिको मान कहते हैं और तौलनेके तोले सेर छटांक आदिको उन्मान कहते हैं इनको कमती बढ़ती रखना अर्थात् कमतीसे दूसरोंको देना और बढतीसे लेना इस प्रकार छलकपटके प्रयोग करनेको हीनाधिक मानोन्मान कहते हैं। कृत्रिम सोने चांदी आदिके द्वारा ठगनेको व्यवहार करना प्रतिरूपक व्यवहार है।

उपात्त (विवाहित) तथा अनुपात्त (अविवाहित) परस्त्रियोंके समागमसे विरक्त रहना सो विरताविरत श्रावकके चौथा अणुव्रत कहलाता है। इस स्वदारसन्तोष व्रतके परविवाहकरण, इत्वरिका अपरिगृहीतागमन, इत्वरिका परिगृहीतागमन, अनंग क्रीडा और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच अतिचार होते हैं। सातावेदनीय कर्म और चारित्र-मोहनीय कर्मके उदयसे जो पंच अग्नि और देवोंकी साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण किया जाता है उसे विवाह कहते हैं। दूसरेका विवाह करना परविवाहकरण कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेसे जो कला गुण आदि प्राप्त हुए हैं उनके कारण तथा चारित्रमोहनीय कर्मके अंतर्गत स्त्रीवेद कर्मके विशेष उदय होनेसे और अंगोपांग नाम कर्म के

पुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता, तस्यां गमनमित्वरिका-अपरिगृहीतागमनं । या पुनरेकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता, तस्यां गमनमित्वरिकापरिगृहीतागमनं । अंगं प्रजननं योनिश्च, ततो अन्यत्र अनेकविधप्रजननविकारेण रतिरनंगक्रीडा । कामस्य प्रवृद्धः परिणामोऽनुपरतवृत्त्यादिः कामतीव्राभिनिवेश इति । धनधान्यक्षेत्रादीनामिच्छावशात् कृतपरिच्छेदो गृहीति पंचममणुव्रतं ।

परिग्रहविरमणव्रतस्य पंचातिक्रमा भवंति, क्षेत्र-वास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्यमिति, तत्र क्षेत्रं सस्याधिकरणं, वास्तु अगारं, हिरण्यं रूप्यादिव्यवहारप्रयोजनं, सुवर्णं विख्यातं, धनं गवादि, धान्यं व्रीह्यादि, दासीदासं भृत्यस्त्रीपुरुषवर्गः, कुप्यं क्षोमकार्पासकौशेयचंदनादि

उदयकी प्राप्ति होनेसे जो पर पुरुषोंके समीप जाती है उसे इत्वरिका कहते हैं वेश्या होकर अथवा व्यभिचारिणी बनकर परपुरुषोंके समीप जानेका जिसका स्वभाव है, जिसका कोई स्वामी नहीं है उसे इत्वरिकाअपरिगृहीता कहते हैं उसमें गमन करना इत्वरिका अपरिगृहीतागमन कहलाता है। जिसका कोई एक पुरुष स्वामी हो वह परिगृहीता कहलाती है इत्वरिका परिगृहीता स्त्रीमें गमन करना इत्वरिकापरिगृहीतागमन कहलाता है। उत्पन्न होनेके स्थानको अर्थात् योनिको अंग कहते हैं उसको छोडकर किसी भी दूसरी जगह काम क्रीडा करना अनंगक्रीडा कहलाती है। कामके अत्यन्त बढे हुए परिणामोंको अर्थात् कामसेवनसे तृप्त न होना सदा उसीमें लगे रहना आदिको कामतीव्राभिनिवेश कहते हैं।

अपनी इच्छानुसार धन धान्य क्षेत्र आदिका परिमाण करलेना सो गृहस्थके पांचवां परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहलाता है। इस परिग्रहपरिमाण व्रतके क्षेत्र वास्तु, हिरण्य सुवर्ण, धन धान्य, दासी दास, और कुप्य ये पांच अतिचार होते हैं। जिनमें धान्य पैदा होता है ऐसे खेतोंको क्षेत्र कहते हैं, मकानको वास्तु कहते हैं, रुपया आदि जिससे संसारका व्यवहार चलता है उन्हें हिरण्य कहते हैं सोनेको सुवर्ण, गाय भैंस घोडे आदि जानवरोंको धन, गेहूँ जौ आदिको धान्य,

यत्तु एतावानेव परिग्रहो मम नाऽतोऽन्य इति परिच्छिन्नात्प्रमाणात् क्षेत्रवास्त्वादिविषयादतिरेक अतिलोभवशात्प्रमाणातिरेक इति ।

रात्रावन्नपानखाद्यलेह्येभ्यश्चतुर्भ्यः सत्त्वानुकम्पया विरमणं रात्रिभोजनविरमणं षष्ठमणुव्रतं ।

वधादसत्याच्चौर्याच्च कामाद् ग्रंथान्निवर्त्तनं । पंचधाऽणुव्रतं रात्र्यभुक्तिः षष्ठमणुव्रतं ॥

इत्यणुव्रतवर्णनं ।

शीलसप्तकवर्णनम् ।

स्थवीयसीं विरतिमभ्युपगतस्य श्रावकस्य व्रतविशेषो गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं शीलसप्तकमिदमुच्यते । दिग्विरतिः, देशविरतिः, अनर्थदंडविरतिः सामायिकं, प्रोषधोपवासः, उपभोगपरिभोगपरिमाणं, अतिथिसंविभागश्चेति ।

नौकर रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंके समूहको दासी दास, और कपडा कपास, कोसा चंदन आदि घरकी सामग्रीको कुप्य कहते हैं। परिग्रहपरिमाणाणुव्रत धारण करनेवालेको इन सब चीजोंका परिमाण करलेना चाहिये कि मैं इन चीजोंको इतनी रक्खूंगा इससे अधिक नहीं। इसप्रकार परिमाण करलेनेपर अतिशय लोभके वश होकर उस परिमाणका उल्लंघन करना अर्थात् खेत मकान आदिकी मर्यादा वा संख्या बढालेना परिग्रहपरिमाण व्रतके अतिचार हैं।

जीवोंपर दयाकर रात्रिमें अन्न पान खाद्य और लेह्य इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करना रात्रिभोजन विरमण नामका छट्ठा अणुव्रत कहलाता है।

हिंसा असत्य चोरी कामसेवन और परिग्रह इनसे एकदेश विरक्त होना त्यागकरना पांच-प्रकारका अणुव्रत कहलाता है। तथा रात्रिभोजनका त्याग करना छठा अणुव्रत कहा जाता है।

इसप्रकार अणुव्रतोंका वर्णन समाप्त हुआ।

आगे गुणव्रत तथा शिक्षाव्रतोंका वर्णन करते हैं—जो श्रावक अपने व्रतोंको स्थिर रखना

तत्र प्राची, अपाची, उदीची, प्रतीची ऊर्ध्वं, अधो, विदिशश्चेति । तासां परिमाणं योजनादिभिः पर्वतादिप्रसिद्धाभिज्ञानैश्च ताश्च दिशो दुष्परिहारैः क्षुद्रजंतुभिराकुला अतस्ततो बहिर्न यास्यामीति निवृत्तिर्दिग्विरतिः निरवशेषतो निवृत्तिं कर्तुमशक्नुवतः शक्त्या प्राणिवधविरतिं प्रत्यागूर्णस्यात्र प्राणनिमित्तं यात्रा भवतु मा वा सत्यपि प्रयोजनभूयस्त्वे परिमितादिग्वधेर्बहिर्न यास्यामीति तिर्यगातिक्रमः प्रणिधानादहिंसाद्यणुव्रतधारिणोऽप्यस्य परिगणितादिग्वधेर्बहिर्मनोवाक्काययोगैः कृतकारितानुमतविकल्पैर्हिंसादिसर्वनिवृत्तिरिति महाव्रतं भवति

चाहता है उसे तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन सातों विशेष व्रतोंको और पालन करनाचाहिये इन सातों व्रतोंको शील कहते हैं तथा दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदंडविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण, और अतिथिसंविभागव्रत ये उनके नाम हैं।

पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊर्ध्व (ऊपर) अधो (नीचे) ईशान आग्नेय नैऋत्य और वायव्य ये दश दिशाएं कहलाती हैं। पर्वत नदी आदि प्रसिद्ध चिन्होंके द्वारा अथवा योजनादिके द्वारा उन दशो दिशाओंका परिमाण करलेना और यह नियम करलेना कि ये सब दिशाएं जो हटाये न जा सकें ऐसे छोटे २ जीवोंसे भरी हुई हैं इसलिये इस किये हुए परिमाणके बाहर मैं नहीं जाऊंगा इसप्रकार परिमाणके बाहर जाने आनेका त्यागकरना दिग्विरति है। जो श्रावक संपूर्ण पापोंका त्याग नहीं कर सकता इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार प्राणियों की हिंसाका त्याग करना चाहता है वह यह समझता है कि प्राणोंके लिये यात्रा हो अथवा न हो, भारी से भारी प्रयोजन वा काम होनेपर भी नियमित दिशाओंके बाहर नहीं जाऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा करने वाले तथा अहिंसा आदि पांचों अणुव्रतोंको धारण करनेवाले श्रावकके नियमित दिशाओंके परिमाणके बाहर मन बचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे हिंसादि समस्त पापोंका पूर्ण रीतिसे त्याग होजाता है इसलिये मर्यादाके बाहर उसके महाव्रतही समझा जाता है

दिग्विरमणव्रतस्य पंचातीचारा भवंति-ऊर्ध्वातिक्रमः, अधोऽतिक्रमः तिर्यगतिक्रमः क्षेत्रवृद्धिः स्मृत्यंतराधानं चेति । तत्र पर्वतमरुद्भूम्यादीनामारोहणादूर्ध्वातिक्रमः कूपावतरणादिरधोतिक्रमः भूमिबिलगिरदरीप्रवेशादिस्तिर्यगतिक्रमः प्राग्दिशो योजनादिभिः परिच्छिद्य पुनर्लोभवशात्ततोऽधिकाकांक्षणं क्षेत्रवृद्धिः ; इदमिदं मया योजनादिभिरभिज्ञानं कृतमिति तदभावः स्मृत्यंतराधानं । दिग्विरमणव्रतस्य प्रमादान्मोहाद्व्यासंगाद्वातीचारा भवंति । मदीयस्य गृहांतरस्य तडागस्य वा मध्यं मुक्त्वा देशांतरं न गमिष्यामीति तन्निवृत्तिर्देशविरतिः । प्रयोजनमपि दिग्विरतिवद्देशविरतिव्रतस्य ।

तस्य पंचातिचारा भवंति । आनयनं,प्रेष्यप्रयोगः,शब्दानुपातः, रूपानुपातः पुद्गलक्षेप इति । तत्रात्मना संकल्पितदेशे स्थितस्य प्रयो

इस दिग्विरति व्रतके ऊर्ध्वातिक्रम, अधोतिक्रम, तिर्यगतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यंतराधान ये पांच अतिचार होते हैं। पर्वत वा ऊंचा भूमिपर चढनेसे ऊपरकी मर्यादामें उल्लंघन किया जा सकता है, कूएमें उतरने आदिमें नीचेकी दिशाका उल्लंघन हो सकता है। पृथ्वीके बडेबडे बिल और पर्वतोंकी कंदराओंमें जानेमें तिर्यक् अतिक्रम होता है योजनादिके द्वारा जो सब दिशाओंका परिमाण किया था उसके आगे जानेके लिये भी लोभके कारण आकांक्षा रखना क्षेत्र वृद्धि है। मैंने योजनादिको के द्वारा इतना इतना परिमाण किया है ऐसी स्मृति का भूल जाना स्मृत्यंतराधान है। ये सब अतिचार प्रमादसे मोहसे अथवा व्यासंगसे होते हैं।

मैं इस घरमें रहता हूँ अथवा इस तालाब के भीतर मकानमें रहता हूँ इसलिये इतने दिनतक अथवा इतनी देरतक इसके बाहर अन्य देशमें नहीं जाऊंगा इस प्रकार त्याग कर देना देशविरति है। इस देशविरतिका प्रयोजन भी दिग्विरतिके समान समझना चाहिये।

इस व्रतके भी आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, और पुद्गलक्षेप ऐसे पांच अतिचार हैं। जितना देश अपने रहनेके लिये संकल्प कर रक्खा है उसमें रहकर भी किसी प्रयोजनसे (मर्यादाके बाहरसे) "तुम यह ले आओ" ऐसी आज्ञादेना आनयन है। जितना देश नियत

जनवशाद् यत्किंचिदानयेत्याज्ञापनमानयनं । परिच्छिन्नदेशाद्बहिः स्वयमगत्वाऽन्यप्रेष्यप्रयोगेणैवाभिप्रेतव्यापारसाधनं प्रेष्यप्रयोगः व्यापारकरान्पुरुषानुद्दिश्याभ्युत्कासिकादिकरणं शब्दानुपातः । मम रूपं निरीक्ष्य व्यापारमचिरान्निष्पादयंतीति स्वांगदर्शनं रूपानुपातः । कर्मकरानुद्दिश्य लोष्टपाषाणादिपातः पुद्गलक्षेप इति । दिग्विरतिः सार्वकालिकी । देशविरतिर्यथाशक्तिकालनियमेनेति ।

प्रयोजनं विना पापादानहेतुरनर्थदंडः । स च पंचविधः । अपध्यानं, पापोपदेशः, प्रमादाचरितं, हिंसाप्रदान, अशुभश्रुतिरिति । तत्र जयपराजयवधबंधांगच्छेदसर्वस्वहरणादिकं कथं स्यादिति मनसा चिंतनमपध्यानम् । पापोपदेशश्चतुर्विधः—क्लेशवाणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, वधकोपदेशः आरंभकोपदेशश्चेति । तत्रास्मिन्प्रदेशे दासीदासाश्च सुलभास्तन्नमून्देशान्नीत्वा विक्रये कृते महा नर्थलाभा भविष्यतीति क्लेशवणिज्या । गामहिष्यादीन्पशूनत्र गृहीत्वाऽन्यत्र देश व्यवहारे कृते सति भूरि वित्तलाभ इति तिर्यग्वणिज्या । वागुरिकशौकरिकशाकुनिका-

कर रक्खा है उसके बाहर स्वयं न जाकर भी किसी दूसरेको भेजकर ही अपना प्रयोजन सिद्धकर लेना प्रेष्यप्रयोग है । मर्यादाके बाहर व्यापार करने वाले आदि पुरुषोंकी ओर लक्ष्य रखकरही अर्थात् उन्हें खास जतलानेकेलिये ही खांसना भठारना आदि शब्दानुपात है । मर्यादाके बाहर काम करनेवाले लोग मेरे रूपको—मुझे देखकर कामको बहुत जल्दी कर डालेंगे यही समझकर अपना शरीर दिखाना रूपानुपात है । अपने नौकर वा काम करनेवालोंको समझानेके लिये ढेला पत्थर आदि फेंकना पुद्गलक्षेप है । दिग्विरति व्रत जन्मभरकेलिये होता है और देशविरति अपनी शक्तिके अनुसार कालकी मर्यादाको लेकर होता है ।

बिनाही प्रयोजनके जितने पाप लगते हों उन्हें अनर्थदंड कहते हैं । अनर्थदंड पांच हैं अपध्यान, पापोपदेश; प्रमादाचरित, हिंसाप्रदान, और अशुभश्रुति । हारना जीतना मारना बांधना अंगोंको काटना सब धनका हरण हो जाना आदि कैसे हो इसप्रकार मनसे चिंतवन करना अपध्यान है । पापोपदेश चार प्रकारका है—क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, बधकोपदेश और आरंभकोपदेश । अमुकदेशमें दासी दास बहुत मिलते हैं उन्हें वहांसे लेजाकर बेचनेमें

दिभ्यो मृगवराहशाकुन्तप्रभृतयोऽमुष्मिन्प्रदेशे सन्तीति वचनं वधकोपदेशः। आरंभकेभ्यः कृषीवलादिभ्यः क्षित्युदकज्वलनपवनवनस्पत्यारम्भोऽनेनोपायेन कर्तव्य इत्याख्यानमारंभकोपदेशः। इत्येवं प्रकारं पापसंयुक्तं वचनं पापोपदेशः। प्रयोजनमंतरेण भूमिकुट्टनसलिलसेचन अग्निविध्यापनवातप्रतिघातवनस्पतिच्छेदनाद्यवद्यकर्म प्रमादाचरितं विषशस्त्राग्निरज्जुकशादंडादिहिंसोपकरणप्रदानं हिंसाप्रदानं रागादिप्रवृद्धिहेतु दुष्टकथाश्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिरिति। एतस्मादनर्थदंडाद्विरतिः कार्या।

अनर्थदंडविरमणव्रतस्य पंचातीचारा भवंति। कंदर्पः, कौत्कुच्यं, मौखर्यं, असमीक्ष्याधिकरणं उपभोगपरिभोगानर्थक्यमिति। चारित्र

बहुतसा धनका लाभ होगा इस को कूटवाणिज्या कहते हैं। गाय भैंस आदि पशुओंको यहांसे ले जाकर दूसरे देशमें बेचनेसे बहुत लाभ मिलेगा इसको तिर्यग्वणिज्या कहते हैं। हिरण आदि पशु मारनेवालोंको यह कहना कि अमुक देशमें हिरण बहुत हैं, सूअर मारनेवालों को यह कहना कि अमुक देशमें सूअर बहुत हैं और पक्षी मारने वालोंको यह कहना कि अमुक देशमें पक्षी बहुत हैं सो वधकोपदेश है। किसान आदि आरंभ करनेवालोंको यह उपदेश देना कि पृथ्वीका आरंभ [जोतना खोदना आदि] इसप्रकारसे करना चाहिये तथा जल अग्नि वायु वनस्पति आदिका आरंभ इस उपायसे करना चाहिये ऐसे उपदेश वा व्याख्यान को आरंभकोपदेश कहते हैं इस प्रकार पापरूप वचन कहना पापोपदेश है। बिना ही प्रयोजनके पृथ्वीको खोदना पानी सींचना, अग्नि जलाना, वायु रोकना, वनस्पतियोंको काटना आदि पापकर्मोंको प्रमादाचरित कहते हैं। विष, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, चाबुक, लाठी आदि हिंसा करनेवाली चीजोंको देना हिंसादान है। राग द्वेष आदिके उद्रेकसे दुष्ट कथाओंको सुनना सिखाना फैलाना आदि अशुभश्रुति है। इन पांचों अनर्थ दंडोंका त्याग अवश्य करना चाहिये। इसको अनर्थदंड विरति कहते हैं।

मोहोदयापादितात् रागोद्रेकात् हाससंयुक्तोऽशिष्टवाक्प्रयोगः कन्दर्पः। रागस्य समावेशाद्धास्यवचनमशिष्टवचनमित्येतदुभयं परस्मिन् दुष्टेन कायकर्मणा युक्तं कौत्कुच्यं। धार्ष्ट्यप्रायं यत्किंचनानर्थकं बहुप्रलपनं तन्मौखर्यं। असमीक्ष्याधिकरणं त्रिविधं मनोवाक्कायविषयभेदात् तत्र मानसं परानर्थककाव्यादि चिंतनं। वाग्गतं निष्प्रयोजनकथाव्याख्यानं परपीडाप्रधानं यत्किंचन वक्तृत्वं च। कायिकं प्रयोजनमन्तरेण गच्छंस्तिष्ठन्नासीनो वा सचित्तेतरपत्रपुष्पफलच्छेदनभेदनकुट्टनक्षेपणादीनि कुर्यात्, अग्निविषक्षारादिप्रदानं चारभेत। इत्येवमादि तदेतत्सर्वमसमीक्ष्याधिकरणं। यस्य यावतार्थेनोपभोगपरिभोगौ परिकल्पितौ तस्य तावानेवार्थ इत्युच्यते, ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यं तदुपभोगपरिभोगानर्थक्यं।

इस अनर्थदंड व्रतके भी कंदर्प कौत्कुच्य मौखर्य असमीक्ष्याधिकरण और उपभोग परिभोगानर्थक्य ये पांच अतिचार हैं। चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे जो रागका उद्रेक होता है उससे हंसी मिलेहुए अशिष्ट वचनोंके कहनेको कंदर्प कहते हैं। रागकी तीव्रताके कारण दूसरेके लिये शरीरकी दुष्ट क्रिया सहित (शरीरके खोटे विकारों सहित) हंसी मिले हुए वचन तथा साधारण वचन इन दोनोंका कहना कौत्कुच्य है। सभ्यताके बाहर जो कुछ अनर्थक और बहुतसा बकवाद करना है वह मौखर्य कहलाता है। असमीक्ष्याधिकरण तीन प्रकार है—मनके द्वारा किया हुआ, वचनके द्वारा किया हुआ और शरीरके द्वारा किया हुआ। दूसरेका अनर्थ करनेवाले काव्य आदिकोंका चिंतवन करना मनके द्वारा किया हुआ असमीक्ष्याधिकरण है। विना ही प्रयोजन के दूसरेको पीड़ा देनेकी प्रधानता रखनेवाली कथाओंका व्याख्यान करना अथवा दूसरों को पीड़ा देनेकी प्रधानता रखनेवाले व्याख्यान देना वचनके द्वारा किया हुआ असमीक्ष्याधिकरण है। विनाही प्रयोजनके चलते हुए खड़े होकर अथवा बैठकर सचित्त वा अचित्त पत्ते फूल आदिको छेदना भेदना, कूटना, फेकना तथा अग्नि विष खार आदि का देना तथा और भी ऐसी ही क्रियाओंको विना प्रयोजन करना शरीर कृत असमीक्ष्याधिकरण है। जिसका

सम्यगेकत्वेनायनं गमनं समयः, स्वविषयेभ्यो विनिवृत्त्य कायवाङ्मनःकर्मणामात्मना सह वर्त्तनाद्द्रव्यार्थेनात्मन एकत्वगमनमित्यर्थः समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा सामायिकं। तच्च नियतकाले नियतदेशे च भवति। निर्व्याक्षेपमेकांतं भवनं वनं चैत्यालयादिकं च देशं मर्यादीकृत्य केशबंधमुष्टिबंधं वस्त्रबंधं पर्यंकमकरमुखाद्यासनं स्थानं च कालमवधिं कृत्वा शीतोष्णादिपरीषहविजयी उपसर्गसहिष्णुर्मौनी हिंसादिभ्यो विषयकषायेभ्यश्च विनिवृत्त्य सामायिके वर्तमानो महाव्रती भवति। हिंसादिषु सर्वेष्वनासक्तचित्तोऽभ्यंतरप्रत्याख्यानसंयमघातिकर्मोदयजनितमंदाविरतिपरिणामे सत्यपि महाव्रतमित्युपचर्यते। एवं च कृत्वाऽभव्यस्यापि निर्ग्रंथ-

जितने धनसे वा जितनी चीजोंसे उपभोग परिभोग हो सकता है वह तो उसका अर्थ कहलाता है उससे अधिक संग्रह करना अनर्थक कहलाता है इसप्रकार प्रयोजनसे अधिक सामग्रियोंका इकट्ठा करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है।

अच्छीतरह प्राप्त होना अर्थात् एकान्तरूपसे आत्मामें तल्लीन हो जाना समय है। मन वचन कायकी क्रियाओंका अपने अपने विषयसे हटकर आत्माके साथ तल्लीन होनेसे द्रव्य तथा अर्थ दोनोंसे आत्माके साथ एक रूप होजाना ही समयका अभिप्राय है। समयको ही सामायिक कहते हैं अथवा समयही जिसका प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं। वह सामायिक नियत देश और नियत समयमें ही किया जाता है। जिसमें कोई उपद्रव न हो और एकांत हो ऐसे मकान वन तथा चैत्यालय आदि सामायिककेलिये योग्य देश हैं। ऐसे किसी देशमें केशोंका बांधना मुष्टिका बांधना वस्त्रोंका बांधना पर्यंक आसन, मकरमुखासन आदि अनेक आसनोंमेंसे किसी एक आसनसे बैठना इन सबकी तथा उस स्थानकी मर्यादा नियतकर सामायिक करना चाहिये। समय की मर्यादा बांधकर भी सामायिक करना चाहिये और उतने समयतक शीत उष्ण आदिकी परिषह यदि आजांय तो उन्हें जीतना चाहिये। उससमय

लिंगधारिण एकादशांगाध्यायिनो महाव्रतपरिपालनादसंयमभावस्याप्युपरिमग्रैवेयकविमानवासितोत्पन्ना भवति । एवं भव्योऽपि निर्ग्रंथ-रूपधारी सामायिकवशादहमिंद्रस्थानवासी भवति चेत्किं पुनः सम्यग्दर्शनपूतात्मा सामायिकमापन्न इति ।

सामायिकव्रतस्य सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानस्य पंचातीचारा भवंति । कायदुःप्रणिधानं, वाग्दुःप्रणिधानं मनोदुःप्रणिधानं अनादरः, स्मृत्यनुपस्थापनं चेति । तत्र दुष्टं प्रणिधानं, दुःप्रणिधानं,अन्यथा वा प्रणिधानं, दुःप्रणिधानं, क्रोधादिपरिणामवशाद् दुष्टं प्रणिधानं भवति, शरीरावयवानामनिभृतावस्थानं कायदुःप्रणिधानम् । वर्णसंस्कारे भावार्थे चागमकत्वं चापलादि वाग्दुःप्रणिधानम् । मनसोऽनर्पितत्वं मनोदुःप्रणिधानं, इति कर्त्तव्यतां प्रत्यसाकल्याद्यथा कथंचित्प्रवृत्तिरनुत्साहोऽनादरः । अनेकाग्र्यमसमाहितमनस्कता स्मृत्यनुपस्थापनं,

उपसर्गोंको भी सहन करना चाहिये, मौन धारण करना चहिये और विषय कषायोंसे दूर होकर सामायिक करना चाहिये इसतरह सामायिक करनेवाला गृहस्थ महाव्रती गिना जाता है। यद्यपि उस समय उस सामायिक करनेवालेका चित्त हिंसादि समस्त पापोंमेंसे किसी भी पापमें आसक्त नहीं रहता तथापि संयमको घात करनेवाले अंतरंग कारण प्रत्याख्यनावरण कर्मके उदय होनेसे मंद मंद अविरति रूप (त्याग न करनेरूप) परिणाम होते हैं। तथापि उसे उपचार से महाव्रत कहते हैं। इसप्रकार सामायिक करनेवाला यदि अभव्य भी हो और वह निर्ग्रंथरूप धारणकर ग्यारह अंगका पाठी हो तो वास्तवमें असंयम भाव धारण करने पर भी वाह्य महाव्रतों के पालन करनेसे वह उपरिम ग्रैवेयकके विमानों में अहमिंद्र उत्पन्न हो सकता है। इसीतरह भव्य जीव भी वाह्य निर्ग्रंथ लिंग धारणकर केवल सामायिक धारण करनेसे अहमिंद्रोंके स्थानमें जाकर उत्पन्न हो जाता है यदि वही भव्य जीव सम्यग्दर्शनसे अपने आत्माको पवित्र करले और फिर सामायिक धारण करे तो फिर उसकी क्या वात है! भावार्थ—वह तो मुक्त होता ही है।

समस्त पापरूप योगोंका त्याग करना ही सामायिक है ऐसे इस सामायिकके कायदुःप्रणि-

अथवा रात्रिदिवं प्रमादिनस्य संचित्यानुपस्थापनं स्मृत्यनुपस्थापनं । मनोदुःप्रणिधानस्मृत्यनुपस्थापनयोरयं भेदः, क्रोधाद्यावेशात्सामायिकौदासीन्येनवा चिरकालमवस्थापनं मनसो मनोदुःप्रणिधानं, चिंतायाः परिस्पंदनादैकाग्र्येणानवस्थापनं स्मृत्यनुपस्थापनमिति विस्पष्टमन्यत्वं ।

प्रोषधः पर्वपर्यायवाची, शब्दादिग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पंचापीन्द्रियाणि उपेत्य तस्मिन् वसंतीत्युपवासः । उक्तं च—

धान, वाग्दुःप्रणिधान, मनोदुःप्रणिधान, अनादर, और स्मृत्यनुपस्थापन ये पांच अतिचार हैं। दुष्ट प्रणिधान अथवा दुष्ट प्रवृत्तिको दुःप्रणिधान कहते हैं अथवा अन्यथा रूप प्रवृत्ति करना भी दुःप्रणिधान है। क्रोधादि कषायरूप परिणामोंके निमित्तसे दुष्टप्रवृत्ति वा दुःप्रणिधान होता है हाथ पैर आदि शरीरके अवयवोंको निश्चल न रखना काय दुःप्रणिधान है, अक्षरों के उच्चारण में अथवा अर्थ वा अर्थमें प्रमाणता न होना उच्चारणमें वा अर्थमें चपलताका होना वाग्दुःप्रणिधान है। सामायिकमें मन न लगाना मनोदुःप्रणिधान है। सामायिकमें करने योग्य कर्तव्य कर्मोंको पूर्ण न करना उनको जिस तिस तरह करना अथवा सामायिक वा सामायिक की क्रियाके करनेका उत्साह न रखना अनादर है। चित्तको एकाग्र न रखना अथवा चित्तमें समाधानता न रखना स्मृत्यनुपस्थापन है। अथवा अत्यंत प्रमादी होनेके कारण रातदिन चिंतवन करते हुए भी स्मरण न रहना स्मृत्यनुपस्थापन है। मनोदुःप्रणिधान और स्मृत्यनुपस्थापन इन दोनोंमें यह भेद है कि क्रोधादि कषायों के आवेशसे अथवा सामायिकमें उदासीनता रखने के कारण बहुत थोडी देरतक सामायिकमें चित्त लगाना मनोदुःप्रणिधान है और चिंतवन के परिस्पंदन होनेसे अर्थात् बदलजानेसे चित्तको एकाग्र न रखना स्थिर न रखना स्मृत्यनुपस्थापन है। इसप्रकार दोनों अतिचारोंकी भिन्नता स्पष्ट है।

उपेत्याक्षाणि सर्वाणि निवृत्तानि स्वकार्यतः। वसंति यत्र स प्राज्ञैरुपवासोऽभिधीयते ॥

पर्वणि चतुर्विधाऽऽहारनिवृत्तिः प्रोषधोपवासः, निरारंभः श्रावकः स्वशरीरसंस्कारकारणस्नान गंधमाल्याभरणादिभिर्विरहितः शुचावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथाश्रवणश्रावणचिन्तनावहितांतःकरणः सन्नुपवसेत्।

प्रोषधोपवासस्य पंचातीचारा भवंति—अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गं अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानं, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणं अनादरः, स्मृत्यनुपस्थापनं चेति। तत्र जंतवः संति न संति वेति प्रत्यवेक्षणं चक्षुषः व्यापारो मृदुनोपकरणेन यत्क्रियते प्रयोजनं तत्प्रमार्जनं, अप्रत्यवेक्षितायां भुवि मूत्रपूरीषोत्सर्गोऽप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यार्हदाचार्यादिपूजोपकरणस्य गंधमाल्यधूपादेरात्मपरिधानाद्यर्थस्य वस्त्रपात्रादेश्चादानमप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानं। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्य प्रावरणादेः संस्तरणस्योप–

प्रोषधशब्दका अर्थ पर्व है। कान आदि पांचों इन्द्रियोंकी अपने शब्द आदि विषयोंको ग्रहण करनेकी उत्सुकता छोड़कर आत्मामें आकर निवास करने को उपवास कहते हैं। लिखा भी है

उपेत्याक्षाणीत्यादि अर्थात् समस्त इंद्रियां अपने अपने कार्योंसे निवृत्त होकर आत्मामें आकर निवास करे उसे विद्वान् लोग उपवास कहते हैं।

पर्वके दिन चारोंप्रकार के आहारका त्याग करना प्रोषधोपवास है। उस दिन श्रावकको सब तरहके आरंभ छोड़ देना चाहिये। अपने शरीरका संस्कार करनेवाले शोभा वढ़ानेवाले स्नान गंध, माला, और आभरण आदिकोंका त्याग करदेना चाहिये तथा किसी पवित्र जगह में साधुओंके निवासस्थानमें, चैत्यालयमें अथवा अपने खास प्रोषधोपवासके घरमें रहकर अपने अंतःकरणमें धर्मकथाओंको सुनते और चिंतवन करते रहना चाहिये।

इस प्रोषधोपवास के अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण अनादर और स्मृत्यनुपस्थापन ये पांच अतिचार हैं यहांपर जीव है

२:

क्रमणमप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणं । क्षुदर्पाडितत्त्वादावश्यकेष्वनुत्साहोऽनादरः । स्मृत्यनुपस्थापनं व्याख्यातमेव ।

उपेत्यात्मसात्कृत्य भुज्यत इत्युपभोगः, अशनपानगंधमाल्यादि सकृद् भुक्त्वा पुनरपि भुज्यत इति परिभोगः, आच्छादनप्रावरणालंकारशयनाशनगृहयानवाहनादि: तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणं भोगपरिसंख्यानं पंचविधं, त्रसघातप्रमादबहुवधानिष्टानुपसेव्यविषयभेदात् तत्र मधुमांसं सदा परिहर्तव्यं त्रसघातं प्रति निवृत्तचेतसा, मद्यमुपसेव्यमानं कार्याकार्याविवेकसंमोहकरमिति तद्वर्जनं । प्रमादविरहाय केतक्यर्जुनपुष्पादीनि बहुजतुयोनिस्थानानि, आर्द्रशृंगवेरमूलकहरिद्रानिंबकुसुमादीन्यनंतकायव्यपदेशार्हाणि एतेषामुप-

वा नहीं हैं इसप्रकार आंख से देखनेको प्रत्यवेक्षण कहते हैं। किसी भी कोमल उपकरणसे जीवोंके बचाने को प्रमार्जन कहते हैं। जो पृथ्वी न तो आंख से देखी है और न किसी उपकरण से शुद्ध की है उसमें मूत्र पुरीष करनापेशाब करना शौच वा टट्टी जाना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग कहलाता है। अरहंत वा आचार्य आदि परमेष्ठियोंकी पूजाके जो वर्तन आदि उपकरण हैं अथवा गंध माला धूप आदि पूजाकी सामग्री है अथवा अपने पहिननेके कपड़े वा वर्तनआदि हैं उन सबको विना प्रमार्जन किये (शोधे) ग्रहण करना अप्रत्यवेक्षितामार्जितादान है इसीतरह वीना देखेविना प्रमार्जन किये ओढनेके वस्त्रोंको रखना, बिछाना बिछाना (प्रोषधोपवासके दिन चटाई आदि बिछाना) अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण कहलाता है । भूखकी अधिक बाधा होनेसे (अथवा और किसी कारण से) देवपूजा आदि आवश्यक कर्मोंमें उत्साह न रखना अनादर है। स्मृत्यनुपस्थापनकी व्याख्या पहिले कर ही चुके हैं।

जो अपने पास लाकर भोगा जाय उसको उपभोग कहते हैं। भोजन, पीनेकी चीजें गंध माला आदि सब उपभोग हैं। एकवार भोग करके भी फिर दुवारा तिवारा जिसको उपभोग किया जाय उसको परिभोग कहते हैं। ओढने बिछाने पहनने के कपड़े आभूषण, शय्या, आसन

मद्यनेन बहुघातोऽल्पफलमिति तत्परिहारः श्रेयान् । यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टान्निवर्त्तनं कर्त्तव्यं । नहि व्रतमभिसंधिनियमाभावे सतीष्टानामपि चित्रवस्त्रवेषाभरणादीनामनुपसेव्यानां परित्यागः कार्यो यावज्जीवं । अथ न शक्तिः कालपरिच्छेदेन वस्तुपरिमाणेन च शक्त्यनुरूपं निवर्त्तनं कार्यं ।

घर रथ पालकी आदि सवारी और घोड़े हाथी आदि सवारी के जानवर ये सब परिभोग हैं। इन उपभोग परिभोग दोनों का परिमाण करना उपभोग परिभोग परिमाण कहलाता है। भोगों का त्याग त्रसघात (जिसमें त्रस जीवोंका घात हो) प्रमाद (जिसमें प्रमाद वा वेहोशी हो) बहुवध (जिसमें बहुतसे स्थावर जीवोंका घात हो अनिष्ट जो इष्ट न हो) अनुपसेव्य जो, सेवन करने योग्य न हो (इनके विषय भेदसे पांच तरह किया जाता है। जिसके हृदयमें त्रस जीवोंकी हिंसाका त्याग है उसे मधु (शहद) और मांस सदाके लिये छोड़ देना चाहिये मद्यके (शराबके सेवन) करनेवाला मोहित वा वेहोश हो जाता है उसे कार्य अकार्यका कुछ ज्ञान नहीं रहता। इसलिये प्रमाद दूर करने के लिए मद्यका त्याग करना आवश्यक है। कैतकीके फूल अर्जुन वृक्षके फूल तथा और भी ऐसे फूलोंमें अनेक छोटे छोटे जीव पैदा होते रहते हैं। वे फूल छोटे छोटे जीवोंके पैदा होनेके स्थान हैं, गीला अदरक गीली मूली गीली हल्दी गीले नीमके फूल आदि चीजों में अनंतकाय जीव रहते हैं इन सब चीजों के सेवन करनेसे फल तो बहुत थोडा होता है और घात बहुत से जीवों का होता है। इसलिये इनका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है। रथ पालकी आदि सवारीकी चीजें हाथी घोडे आदि सवारीके जानवर तथा आभूषण आदि चीजोंमेंसे मुझे इतना इतना रखना ही अभीष्ट है इतनेके सिवाय सब अनिष्ट हैं यही समझ-

उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतस्यातीचाराः पंच भवंति । सचित्ताहारः, सचित्तसंबंधाहारः,सचित्तसन्मिश्राहारः, अभिषवाहारः दुःपक्वाहारश्चेति । तत्र चेतनावद्द्रव्यं सचित्तं हरितकायः तदभ्यवहरणं सचित्ताहारः सचित्तवतोपश्लिष्ट सचित्तसंबद्धाहारः सचित्तेन व्यतिकीर्णः सचित्तसन्मिश्राहारः । सौवीरादिद्रवो वा वृष्यं वाऽभिषवाहारः । मांतम्तदुलभावेनातिक्लेदनेन वा दुष्टः पक्वो दुःपक्वाहारः । संबंधमिश्रयोरय भेदः संसर्गमात्रं संबधः सूक्ष्मजंतुव्याकीर्णत्वाद्विभागोऽशक्यः सन्मिश्रः । एतेषामभ्यवहरणे सचित्तोपयोग इंद्रियमद-

कर अनिष्टका त्याग अवश्य कर देना चाहिये । जब तक प्रतिज्ञा पूर्वक नियम न किया जाय तबतक व्रत कभी नहीं कहला सकता इसलिये जो पदार्थ इष्ट हैं अर्थात् अपने नियत किये हुए परिमाण में आगये हैं उनमें भी अनेक रंग के वस्त्र चित्र विचित्र पोशाक और चित्र बिचित्र आभरण आदि जो सेवन करनेके अयोग्य है उनका त्याग भी जीवन पर्यंत तकके लिये कर देना चाहिये । यदि जन्म भरके त्याग करनेके लिये शक्ति न हो अथवा अधिक पदार्थोंके त्याग करनेकी शक्ति न हो तो कालका परिमाण नियत कर तथा उन पदार्थोंका परिमाण नियत कर अपनी शक्तिके अनुसार त्याग कर देना चाहिये ।

इस उपभोग परिभोग परिमाणके सचित्ताहार सचित्तसंबंधाहार, सचित्तसन्मिश्राहार अभिषवाहार और दुःपक्वाहार ये पांच अतिचार हैं। जिसमें चेतना हो ऐसे हरितकाय वनस्पति आदि द्रव्योंको सचित्त कहते हैं ऐसे द्रव्योंका भोजन करना सचित्ताहार कहलाता है जिस भोजनका सचित्तवाले द्रव्यके साथ संबंध वा संसर्ग होगया हो उसे सचित्त संबंधाहार कहते हैं। जिस भोजनमें सचित्त द्रव्य मिलगया हो उसे सचित्तसन्मिश्राहार कहते हैं । जो सोवीर आसव आदि पतले वा पौष्टिक पदार्थ हैं उन्हें अभिषवाहार कहते हैं । पककर भी चावल ही ऐसे बने रहनेमें अथवा अधिक पककर गल जानेसे जिनका पाक दुष्ट पाक कहलाता हो अर्थात् जिस

वृद्धिर्वातादिप्रकोपो वा स्यात्। तत्प्रतीकारविषये पापलेपो भवति। अतिथयश्चैनं परिहरेयुरिति।

संयम मविनाशयन्नततीत्यतिथिरथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथिरनियतकालगमनमित्यर्थः। अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः, स चतुर्विधः भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्। उक्तं हि—

प्रतिग्रहोच्चस्थाने च पादक्षालनमर्चनम्। प्रणामो योगशुद्धिश्च भिक्षाशुद्धिश्च ते नव ॥ १ ॥

उक्तं हि—

श्रद्धा शक्तिरलुब्धत्वं भक्तिर्ज्ञानं दया क्षमा। इति श्रद्धादयः सप्त गुणाः स्युर्गृहमेधिनाम् ॥ १ ॥

भोजनका पाक ठीक न हुआ हो (अधिक पकगया हो वा थोडा पका हो) उसे दुःपक्वाहार कहते हैं। सचित्त संबंध और सचित्त सन्मिश्र इन दोनोंमें यह भेद है कि जिसके साथ केवल सचित्तका सबंध हुआ हो वह तो सचित्त सबंध है और जिसमें सूक्ष्म जंतु इसप्रकार मिल गये हों कि जिन्हें कभी अलग नही कर सकते ऐसे भोजनको सचित्तसन्मिश्र कहते हैं। इन ऊपर लिखे हुए सबतरहके भोजन करनेसे अपना उपयोग सचित्त रूप होता है, इंद्रियोंका मद बढता है और वायु आदि दोषोंका प्रकोप होता है तथा उनके प्रतीकार करनेमें भी (उन रोगोंका इलाजकरनेमें भी) पापका लेप होता है अर्थात् पाप बढ़ता है और अतिथि वा साधु लोग भी इन सब चीजोंको छोड़ देते हैं। (इसलिये ये सब उपभोग परिभोग परिमाणके अतिचार हैं)

जो संयमको नाश न करते हुए विहार करें उन्हें अतिथि कहते हैं अथवा जिनकी कोई तिथि नियत न हों अर्थात् अनियमित समयमें गमन करते हों उन्हें अतिथि कहते हैं। (मुनियोंकी भिक्षामें उत्सव पर्व आदि कोई भी बाधक नहीं होते इसीलिये उनकी भिक्षाके लिये कोई तिथि नियत नहीं रहती वे भिक्षाके लिये कब आवेंगे ऐसा किसीको भी मालूम नहीं रहता) ऐसे

एवंविधनवविधपुण्यैः प्रतिपत्तिकुशलेन सप्तगुणैः समन्वितेन मोक्षमार्गमभ्युद्यतायातिथये संयमपरायणाय शुद्धचेतसाऽऽश्चर्यपंचकादिक-मनिच्छता निरवद्या भिक्षा देया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि दातव्यानि। औषधं ग्लानाय वातपित्तश्लेष्म-प्रकोपहताय योग्यमुपयोजनीय प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति।

अतिथिसंविभागव्रतस्य पंचातीचारा भवंति। सचित्तनिक्षेपः, सचित्तपिधानं परव्यपदेशः मात्सर्यं, कालातिक्रमश्चेति। तत्र सचित्ते पद्मपत्रादौ निधानं सचित्तनिक्षेपः। सचित्तेनावरणं सचित्तपिधानं। इदमत्र दाता दीयमानोऽप्ययमस्येति समर्पणं परव्यपदेशः।

अतिथिके लिये दान देना अतिथिसंविभाग व्रत कहलाता है। यह दान भिक्षा उपकरण औषध और प्रतिश्रय (वा वसतिका) के भेदसे चार प्रकारका है

अन्य शास्त्रोंमें लिखा है—प्रतिग्रहोच्चस्थानेत्यादि

अर्थात् प्रतिग्रह, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, पूजन, प्रणाम, मनको शुद्ध रखना, वचनको शुद्ध रखना, कायको शुद्ध रखना, और शुद्धभिक्षा देना ये नौ प्रकारकी भक्ति वा विधि कहलाती है। इसीतरह—श्रद्धाशक्तिरलुब्धत्वमित्यादि।

अर्थात्—श्रद्धा शक्ति, लोभ न करना, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा ये श्रद्धा आदि सात दान देने वाले गृहस्थोंके गुण हैं।

इसप्रकार नवतरहकी भक्ति वा नौ तरहके पुण्य अथवा विधिके पालन करनेमें जो अत्यंत कुशल है और श्रद्धा आदि सातों गुण जिसमें मौजूद हैं ऐसे गृहस्थको जो मोक्षमार्गके धारण करनेमें सदा तत्पर हैं और संयम पालन करने में सदा तल्लीन हैं ऐसे अतिथि साधुके लिये शुद्ध चित्तसे पंचाश्चर्य आदि किसी की भी इच्छा न रखकर निर्दोष भिक्षा देना चाहिये। इसीतरह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी वृद्धि करने वाले धर्मोपकरण (पीछी शास्त्र कमंडलु

प्रयच्छतोऽपि सत आदरमंतरेण दानं मात्सर्यं अनगाराणामयोग्ये काले भोजनं कालातिक्रम इतिपात्रदाने स्वस्य परस्य चोपकारः, स्वोपकारः पुण्यसंचयः, परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः । तच्च दानं पारंपर्येण मोक्षकारणं साक्षात्पुण्यहेतुः । विधिविशेषाद्द्रव्यविशेषाद्दातृविशेषात्पात्रविशेषाद्दानविशेषः । तत्र प्रतिग्रहोच्चदेशस्थापनमित्येवमादीनां क्रियाणामादरेण करणं विधिविशेषः; । दीयमानेऽन्नादौ प्रतिगृहीतुस्तपःस्वाध्यायपरिवृद्धिकरणत्वाद्द्रव्यविशेषः; प्रतिगृहीतृजनेऽभ्यसूयात्यागोऽविषादो दित्सतो ददतो दत्तवतश्च प्रीतियोगः, कुशलाभिसंधितावसुधारासुरप्रशंसादिदृष्टफलानपेक्षिता, निरुपरोधत्वमनिदानत्वे श्रद्धादिगुणसमन्वितत्वमित्येवमादि दातृविशेषः । मोक्षकारणगुणसंयोगः पात्रविशेषः ततश्च फलविशेषः ।

आदि) देने चाहिये जो साधु वात पित्त कफआदिके प्रकोपसे पीडित हैं ऐसे रोगी मुनिके लिये औषधि देनी चाहिये तथा परमधर्मकी श्रद्धा पूर्वक वसतिका बनवा देनी चाहिये।

इसी अतिथि संविभाग व्रतके सचित्तनिक्षेप, सचित्तपिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, और कालातिक्रम ये पांच अतिचार हैं। आहार देने योग्य भोजनको कमलके पत्ते आदि सचित्त पदार्थपर रखना सचित्तनिक्षेप है। कमलके पत्ते आदि सचित्त पदार्थसे भोजनोंको ढकना सचित्तपिधान है। इस पदार्थका देनेवाला दाता यह है तथा यह जो भोजन दिया जा रहा है वह इसका है इस प्रकार कहकर आहार देना परव्यपदेश है। आहार देते हुए भी विना आदर के देना मात्सर्य है। जो समय मुनियोंकी भिक्षाका नहीं है उसमें भोजन करना कालातिक्रम है। पात्र दान देनेमें अपना उपकार भी होता है और दूसरेका भी उपकार होता है। पुण्यकी वृद्धिहोना अपना उपकार है और सम्यग्ज्ञानकी वृद्धिहोना परोपकार है। वह पात्रदान परंपरासे मोक्षका कारण और साक्षात पुण्य बढानेका हेतु है !

विधिकी विशेषता होनेसे द्रव्यकी विशेषता होनेसे दाताकी विशेषता होनेसे और

सत्पात्रोपगतं दानं सुक्षेत्रगतबीजवत् । फलाय यद्यपि स्वल्पं तदनल्पाय कल्प्यते ॥ १ ॥

तथा च—दानकृतविशेषेणोत्तमभोगभूमो दरिद्र कलत्रजनितसुखफल श्रीषेणोऽनुभूत् ।

तथा च—दानानुमोदेन रतिवररतिवेगाख्यं कपोतमिथुनं विजयार्द्ध प्रतिबद्धगांधारविषयसुसीमानगराधिपतेरादित्यगते रतिवरचरो

पात्रकी विशेषता होनेसे दानमें भी विशेषता हो जाती है। प्रतिग्रह उच्चस्थान आदि नवधा भक्तिकी क्रियाएं हैं उन्हें आदर पूर्वक करना विधिकी विशेषता कहलाती है। भिक्षामें जो अन्न दिया जाय वह यदि आहार लेनेवाले साधुके तपश्चरण स्वाध्याय आदिको वढाने वाला हो तो वही द्रव्यकी विशेषता कहलाती है। आहार देनेवालेका अभ्यास पूर्वक दान देना दान देनेमें किसी तरहका विषाद न करना जो दान देनेकी इच्छा रखता है जो दान देता है और जिसने दान दिया है उसके प्रति सदा प्रेम प्रगट करना अपने दान देनेकी कुशलता संसारमें प्रसिद्ध हो, मेरे घर रत्नोंकी वर्षा हो, देव लोग भी मेरी प्रशंसा करें इत्यादि प्रत्यक्ष फलोंकी इच्छा न रखना, दान देते हुए किसीको नहीं रोकना निदान नहीं करना, और श्रद्धादि सातों गुणोंका धारण करना तथा और भी ऐसे ही गुणोंको धारण करना दाताकी विशेषता कहलाती है मोक्षके कारण जो गुण हैं उनको धारण करना पात्रकी विशेषता है इसप्रकार विधि द्रव्य दाता और पात्रकी विशेषता होनेसे दानमें विशेषता होती है और दानमें विशेषता होनेसे उसके फलमें विशेषता होती है। सत्पात्रोपगतं दानमित्यादि

अर्थात्—जिस प्रकार अच्छे क्षेत्रमें छोटासा भी बीज बोया जाता है तो भी उसपर अनेक बड़े बड़े फल लगते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ पात्रको यदि थोड़ासा भी दान दिया जाय तो भी उसका

हिरण्यवर्मनामा नंदनोऽभूत् । तस्मिन्नेव गिरौ गिरिविषये भोगपुरपतेर्वायुरथस्य रतिवेगचरी प्रभावत्याख्या तनयाऽभूत् । एवं हिरण्यवर्मा प्रभावती च जातिकुलसाधित विद्याप्रभावेण सुखमन्वभूतां । उक्तहिंसादिपंचदोषविरहितेन द्यूतमद्यमांसानि परिहर्त्तव्यानि । यथा चोक्तं महापुराणे—

हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात् । द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट संत्यमी मूलगुणाः ॥

कितवस्य सदाऽरागद्वेषमोहवंचनानृतानि प्रजायंतेऽर्थस्य योऽपि भवति जनेष्वविश्वसनीयश्च, सप्तव्यसनेषु प्रधानं द्यूतं तस्मात्तत्परिहर्त्तव्यं ।

तथा च—भरतेऽस्मिन्कुरुजांगलविषये श्रावस्तिपुराधिपतिः सुकेतुमहाराजो महाभोगी द्यूतव्यसनाभिहतः स्वकीयं कोशं राष्ट्रमंतःपुरं च

बड़ा भारी फल प्राप्त हुआ करता है।

दानके फलकी विशेषतासे ही श्रीषेणने उत्तम भोग भूमिमें जन्म लेकर दश प्रकारके कल्प वृक्षोंसे उत्पन्न हुए अपूर्व सुखका अनुभव किया था।

इसी प्रकार दानकी अनुमोदना करनेसे रतिवर कबूतर और रतिवेगा कबूतरीने भी सुखोंका अनुभव किया था। रतिवर कबूतर तो दानकी अनुमोदनासे विजयार्द्ध पर्वतपर बसनेवाले गांधार देशकी सुशीमा नगरीके राजा आदित्य गतिके हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ और रतिवेगा कबूतरी उसी विजयार्द्ध पर्वतपर गिरि नामके देशके भोगपुर नामके नगर के राजा वायुरथकी प्रभावती नामकी पुत्री हुई थी। इन दोनोंका परस्पर विवाह हुआ था और दोनोंका जाति कुल आदिके द्वारा सिद्ध हुई अनेक विद्याएं प्राप्त थीं इसलिये उन विद्याओंके प्रभावसे उन दोनोंने अनेक तरहके सुखोंका अनुभव किया था।

ऊपर जो हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप बतलाये हैं उनका त्याग (एक देश त्याग) करनेवाले श्रावकको जूआ खेलना, मद्यसेवन करना और मांस भक्षण करनेका भी

द्यूते हारयित्वा महादुःखाभिभूतोऽभूत् । तथा च युधिष्ठिरोऽपि द्यूतेन राज्याद्भ्रष्टः कष्टां दशामवाप ।

मांसान्निवृत्तिरहिंसाव्रतपरिपालनार्थं, मांसाशिनं साधवो विनिंदंति प्रेत्य च दुःखभाग्भवति । तथा चान्यैरुक्तं—

मां स भक्षयिता प्रेत्य यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥

मांसं प्राणिशरीरं प्राण्यंगस्य च विदारणेन विना । तन्नाप्यते ततस्तत्त्यक्तं जैनैः सदा सर्वैः ॥

तथा हि—कुंभनाम्नो नरपतेर्भीमो नाम महानसिकस्तिर्यग्मांसमलभमानो मृतशिशुमांसं सर्वभारेण सन्मिश्रं कृत्वा कुंभस्य दत्तवान् ततःप्रभृति सोऽपि नरमांसलोलुपः संजातः । तज्ज्ञात्वा प्रकृतयो राज्यस्यायमयोग्य इति तं परिहृतवन्त्यः । तथा च विंध्यमलयकूटजवने किरातमुख्यः खदिरसारःसमाधिगुप्तमुनिं दृष्ट्वा प्रणतस्तस्मै धर्मलाभ इत्युक्ते कोऽसौ धर्मः, कोऽसौ लाभइत्युक्तपरिप्रश्ने मांसादि-

त्याग कर देना चाहिये यही महापुराणमें भी लिखी है । हिंसासत्यस्तेयादित्यादि ।

अर्थात् स्थूल हिंसा, स्थूल चोरी, स्थूल अब्रह्म और स्थूल परिग्रहसे विरक्त होना तथा जूआ मांस और मद्यका त्याग करना ये आठ गृहस्थोंके मूलगुण कहलाते हैं । जूआ खेलनेसे सदा राग द्वेष मोह ठगी झूठ आदि पैदा होते रहते हैं धनका नाश भी होता है और जूआ खेलनेवाला लोगोंमें अविश्वास पात्र गिना जाता है । इसके सिवाय यह जूआ खेलना सातों व्यसनोंमें सबसे प्रधान है । सबसे मुख्य है इसलिये जूआ खेलनेका त्याग अवश्य कर देना चाहिये । देखो इसी भरतक्षेत्रके कुलाल नामके देशमें श्रावस्तिपुर नगरका राजा महाराजसुकेतु बडा ही ऐश्वर्यशाली और सुखी राजा था परंतु जूआ खेलनेके व्यसनमें पड़कर वह अपना सब खजाना हार गया सबराज्यहारगया और सब अंतःपुर हार गया तथा उसे अनेक तरहके महादुःख भोगने पडे । इसी तरह राजा युधिष्ठिरको भी जूआखेलनेसे राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ा तथा बडी हीदुःखमयी अवस्था भोगनी पड़ी ।

निवृत्तिर्धर्म्मस्तत्प्राप्तिलीभस्ततः स्वर्गादिसुखं जायत इत्युक्तवति मुनौ तत्सव परिहर्त्तुमहमशक्त इति वचने तदाकूतमवधार्य त्वयाकाकमांसं पूर्वं किं भक्षितमुत न वेत्युक्ते ऽकृतभक्षणोऽहमस्मि, प्रतिवचने यद्येवं तद्भक्षणव्रतं त्वया गृह्यतामित्युपदेशेन गृहामित्युपदेशेन तत्परिगृह्यातिवंद्य गतवतः कालांतरे तस्यामये समुत्पन्ने सति वैद्ये न काकमांसभक्षणादस्य व्याधेरुपशमो भविष्यतीत्युक्ते कंठगतेष्वपि प्राणेषु मया न कर्तव्यं तत्काकमांसोपयोगविरमणव्रतं तपोधनसमीपे परिगृहीतं,संकल्पभंगे कुतः सत्पुरुषता ? ततः काकमां-

अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेके लिये मांसका त्याग करना भी आवश्यक है मांस भक्षण करने वालेकी साधुलोग भी निंदा करते हैं और परलोकमें भी उसे वहुतसे दुःख भोगने पडते हैं। इसी वातको अन्य लोगों ने भी कहा है—मांसं भक्षयति प्रेत्येत्यादि।

अर्थात्—वुद्धिमान लोग मांस शब्दका अर्थ यही वतलाते हैं कि इस जन्ममें जिसका मांस खाता है वह भी परलोकमें मुझे अवश्य खायगा (मांस अर्थात् वह मुझे खायगा यही मांस शब्दका अर्थ है) मांस प्राणियोंका शरीर है प्राणियोंके शरीरको विदारण किये विना वह मिल नहीं सकता इसलिये सभी जेनी लोग उस मांसका परित्याग सदाके लिये करदेते हैं॥

देखो राजा कुंभके भीम नामका रसोइया था किसी एक दिन उसे तिर्यंचका मांस नहीं मिला इसलिये उसने एक मरे हुए वालकका मांस पकाया और उसमें सब मसालें डालकर राजा कुंभको दिया। उसे भी वह वहुत अच्छा लगा और तवसे ही वह मनुष्योंके मांस खानेका लोलुपी होगया यह वात वहांकी प्रजाको मालूम हुई और अब यह राज्यके अयोग्य है, यह समझकर उसे राज्यसे अलग कर दिया।

इसीतरह विंध्याचलके मलयकुटज वनमें खदिरसार नामका भीलोंका राजा था उसने किसी एक दिन समाधिगुप्त नामके मुनिराजके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया, मुनिराजने

साभ्यवहरणं न करिष्यामीति प्रतिज्ञाने समुपलक्षिततदीयाकूतरतं मांसमुपभोजयितु सौरपुराधिपतिः शूरवीरनामा तस्य मैथुनः समागच्छ न् वनगहनगतवटतरोरधः कांचिदभिरुदतीं समीक्ष्य कथय केन हतुना रोदिष्ये का त्वं' इत्यनुयुक्ता साऽवाचदहं यक्षी तव श्यालकं वलवदामयपरिपीडिततं मांसभक्षण विरमणव्रतफलेन भविष्यंतमधिपति भवानद्य मासभोजनेन नरकगतिभागिनं कर्तु प्रारभत इति रोदनमनुभवामीति तयोदितः अद्धे हि तदहं न कारयिष्मीति व्याहृत्य गत्वा तमवलोक्य शरीरामयनिराकरणहेतुस्त्वया मांसोपयोगः क्रियतामिति प्रियश्यालकवचनश्रवणेन त्वं प्राणसमो बंधुः श्रेय एव मे कथयितुमर्हसि, न हितार्थवचनमेतन्नरकगतिप्रापणहेतुत्वादेवं क्रियमाणोऽपि म्रिये

भी उत्तरमें धर्मलाभ हो, ऐसा कहा। इसपर खदिरसार ने पूछा कि धर्म क्या है और लाभ किसे कहते हैं? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मांसादिकका त्याग करना धर्म है और उसका प्राप्ति होना लाभ है धर्मकी प्राप्ति होनेसे अर्थात् धर्म पालन करनेसे स्वर्गआदिके सुख प्राप्त होते हैं। इसपर खदिरसारने कहा कि में उन सवका (सवतरहके मांसका) त्याग नहीं कर सकता। तब मुनिराजने उसका अभिप्राय समझकर पूछा कि क्या तूने पहिले कभी कौएका मांस खाया है या नहीं? इसके उत्तरमें खदिरसारने कहा कि आजतक मैंने कौएका मांस कभी नहीं खाया है। यह सुनकर मुनिराजने कहा कि अच्छा जब तैंने कौएका मांस आजतक नही खाया है तो अब उसके न खानेका व्रत स्वीकार कर। इसप्रकार मुनिराजके उपदेशसे उसने व्रत स्वीकार किया और मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया। उसके वाद किसी एक समय उसी खदिरसारको कोई रोग होगया उसपर वैद्योंने उपाय वताया कि कौएका मांस खानेसे इसका रोग शांत हो जायगा। इसपर खदिरसारने प्रतिज्ञा की कि कंठगत प्राण हो जाने पर भी मैं यह काम नहीं कर सकता। मैंने मुनिराजके समिप कौएके मांसके त्याग करनेका व्रत स्वीकार किया है। अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेसे सत्पुरूषपना कैसे रहसकता है ` मैं

[illegible] तस्मै यक्षीनिरूपितवृत्तान्तमकथयत् । साऽपि तदाकर्णनादाहिंसादिश्रावक व्रतमविकलमादाय जीवितान्ते सौधर्मकल्पे देवोभवत् । शूरवीर तस्य परलोकक्रियावसान उपगच्छन् यक्षी निरीक्ष्य कथय स किं मे मैथुनस्तव पतिरजायतेति परिपृष्टा साऽवोचत् । स्वीकृतसमस्तव्रतसंग्रहस्यामुख्यव्यंतरगतिपरांमुखस्य सौधर्मकल्पे समुत्पत्तिरासीत् ततो मदधिपत्वप्रच्युत' प्रकृष्टदिव्यभोगमनुभवतीनि हृदयगततद्वचनार्थनिश्चितमतिरहो व्रतप्रभावः समभिलषितफलप्रदानसमर्थ इति समाधि-गुप्तिमुनिसमीपे परिगृहीतश्रावकव्रतो वभूव । खदिरसारो द्विसागरोपमकालं दिव्यभोगमनुभूय समनुष्ठितभोगनिदानः स्वजीवितांते

कौएका मांस कभी नही खाऊंगा । जब खदिरसारने ऐसी प्रतिज्ञा की तब उसका अभिप्राय जानकर उसे कौएका मांस खिलानेके लिये सौरपुर नगरका राजा शूरवीर नामका उसका वह नोई अपने नगरसे आने लगा । उसने गहन वनमें वड़के वृक्षके नीचे एक स्त्रीको रोते हुए देखा और उससे पूछा कि वतला तू अकेली बैठी हुई यहां क्यों रो रही है उसके उत्तरमें उस स्त्रीने कहा कि मैं यक्षी हूँ । तेरा साला जोबहुत अधिक वीमार है और जिसने कौएके मांस भक्षण करनेके त्याग करनेका व्रत लिया है वह उस व्रतके फलसे मरकर मेरा पति होनेवा-ला है परन्तु तुम लोग जाकर उसे कौएका मांस खिलाकर उसे नरकमें भेजनेका काम कर रहे हो इसीलिये मैं रो रही हूं । उस स्त्रीकी यह वात सुनकर उससे शूरवीर ने कहा कि तू विश्वास रख मैं यह काम नही करूगा अर्थात् उसे कौएका मांस नही खिलाऊंगा ऐसा कहकर वह अपने सालेके पास पहुंचा उसे देखकर वह कहनेलगा कि शरीरका रोग दूर करनेके लिये तुझे मांसका उपयोग करना चाहिये अपने प्यारे बहनोई वा सालेके वचन सुन कर खदिरसारने कहा कि हे शूरवीर तू मेरे प्राणोंके समान प्यारा भाई है तुझे मेरे कल्याण करनेवाले ही वचन कहने चाहिये परन्तु ये तुम्हारे वचन मेरा कल्याण करनेवाले नहीं हैं क्योंकि ये वचन मुझे नरक गतिमें लेजानेवाले हैं । इस प्रकार यदि मुझे मरना पडेगा तो मर जाऊंगा परंतु अपनी

ततः प्रच्युतः प्रत्यंतपुरे सुमित्रनामा मित्रराज्ञः पुत्रोभूत्। निर्दर्शनतपः कृत्वा व्यंतर आसीत्ततः कुणिकनरपतेः श्रीमतिदेव्याश्च श्रेणिकोऽभूदिति एवं दृष्टादृष्टफलस्याप्यहितं मांसं।

मद्यपस्य हिताहितविवेकता वाच्यावाच्यता गम्यागम्यता कार्याकार्यं च नास्ति मद्यमुपसेविनो जनस्य स्मृतिं विनाशयति, विनष्टस्मृतिकः किं न करोति, किं न भाषते, कमुन्मार्गं न गच्छति, सर्वदोषाणामास्पदं तदेव तस्याख्यानं।

प्रतिज्ञा नहीं तोड़ूंगा इस प्रकार उसका वचन सुनकर और उसका अभिप्राय जानकर शूरवीरने उसके लिये उस यक्षीका कहा हुआ सब हाल कहा। उसे सुनकर खदिरसारने भी अहिंसा आदि श्रावकके संपूर्ण व्रत धारण कर लिये और आयुके अंतमें मरकर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। इधर शूरवीरने उसकी अंतिम सब क्रियाएं की और फिर अपने नगरको चलने लगा। मार्गमें वही यक्षी फिर मिली उससे उसने पूछा कि वह मेरा साला तेरा पति हुआ? इसके उत्तरमें उस यक्षीने कहा कि उसने श्रावकके समस्त व्रत स्वीकार कर लिये थे इसलिये वह व्यंतर देवोंकी गौण गतिमें उत्पन्न नहीं हुआ किंतु गौण देव गतिसे विमुख होकर सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुआ है इसलिये वह मेरे पति होनेसे छूट गया है और उत्तम दिव्य भोगोंका अनुभव कर रहा है। यक्षीकी यह बात सुनकर वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि देखो व्रतोंका प्रभाव कैसा है? यह व्रतोंका प्रभाव इच्छानुसार समस्त फल देनेमें समर्थ है यही निश्चयकर उसने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके समीप श्रावकके समस्त व्रत स्वीकार कर लिये। इधर खदिरसारने दो सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव किया और भोगोंका निदानकर आयु पूरी होने पर वहांसे च्युत हुआ तथा प्रत्यंतपुर नामके नगरमें सुमित्र नामका मित्र राजाका पुत्र उत्पन्न हुआ। वहांपर उ[illegible] सम्यग्दर्शन रहित होकर तपश्चरण [illegible]

तथा हि—कश्चित् ब्राम्हणो गुणी गंगास्नानार्थं गच्छन्नटवीप्रदेशे प्रहसनशीलेन मदिरामदोन्मत्तेन कांतासहितशबरेण संनिरुध्य मांसभक्षणसुरापानशबरीसंसर्गेषु भवताऽन्यतममंगीकरणीयमन्यथा भवंतं व्यापादयामीत्युक्तः किंकर्तव्यतामूढः, प्राण्यंगत्वान्मांसभक्षणे पापोपलेपो भवति, शबरीसंसर्गे जातिनाशः संजायते, पिष्टोदकगुडधातक्यादिसमुत्पन्नं निरवद्यं मद्यमिदं पिबामीति पीत्वा विनष्टस्मृति रगम्यगमनमभक्ष्यभक्षणं च कृतवान् । तथा हि—मद्यपायिनामपराधाद्‌द्वैपायनमुनिकोपाद्‌भस्मीभूतायां द्वारवत्यां विनष्टा यादवा इति ।

मत्तो हिनस्ति सर्वं मिथ्या प्रलपति विवेकविकलतया मातरमपि कामयते सावद्यं मद्यमत एव ॥

देव हुआ फिर वहांसे आकर राजा कुणिककी रानी श्रीमती देवीके श्रेणिक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे यह सिद्ध है कि मांस भक्षण करनेका प्रत्यक्ष फल भी बुरा है और परोक्ष फल भी बुरा है।

मद्य सेवन करने वालोंको (शराब आदि नशेकी चीजें खाने पीने वालोंको) तो हित अहित-का कुछ विचार नहीं रहता। क्या कहना चाहिये क्या नहीं, कहां जाना चाहिये कहां नहीं तथा क्या करना चाहिये क्या नहीं! आदि किसी बातका ध्यान नहीं रहता है। जो मनुष्य मद्यसेवन करता है उसकी स्मरण शक्ति सब नष्ट हो जाती है और जिसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है वह कौनसा पापकार्य नहीं कर सकता कौनसा वचन नहीं कह सकता और कौनसे कुमार्गमें नहीं जा सकता! अभिप्राय यह है कि मद्यका सेवन करना सब दोषोंका स्थान है। इसी बातको दिखलानेवाली एक कथा यहां पर लिखी जाती है।

कोई एक ब्राह्मण बड़ा ही गुणवान था। वह गंगा नहानेके लिये चला, मार्गमें वह एक जंगलमें होकर जा रहा था कि इतनेमें हंसी मजाक करनेवाले और मद्यके मदसे उन्मत्त हुए

सामायिकः संध्यात्रयेऽपि भुवनत्रयस्वामिनं वंदमानो वक्ष्यमाणव्युत्सर्गतपसि कथितक्रमेण ।
द्विनिषण्णं यथाजातं द्वादशावर्तमप्यपि । चतुर्नति त्रिशुद्धं च कृतिकर्म प्रयोजयेत् ॥
अस्य सामायिकस्यानंतरोक्तशीलसप्तकांतर्गतं सामायिक व्रतं अतिक्रम्य शीलं भवतीति ।
प्रोषधोपवासः मासे चतुर्ष्वपि पर्वदिनेषु स्वकीयां शक्तिमनिगूह्य प्रोषधनियमं मन्यमानो भवतीति व्रतिकस्य यदुक्तं शीलं प्रोषधोपवास-

एक भीलने आकर उसे रोक लिया। भीलके साथ उसकी स्त्री भी थी। भीलने उस ब्राह्मणको रोक कर कहा कि तुम या तो मांस भक्षण करो, या मद्य सेवन करो (शराब पीओ) अथवा इस स्त्रीके साथ संसर्ग करो यदि इन तीनोंमेंसे तुम कोई भी काम न करोगे तो मैं तुम्हें मार डालूगा ब्राह्मण देवता उस भीलकी यह बात सुनकर बड़े विचारमें पड़ गये सोचने लगे कि मांस प्राणियोंका अंग है उसके भक्षण करनेसे बड़ा भारी पाप लगेगा और इस भीलनीके साथ संसर्ग करनेसे जातिका नाश हो जायगा। हां यह, मद्य केवल आटा पानी गुड़ और धायके फूल आदिसे बना है इसलिये यह निर्दोष है इसके पीनेमें कोई दोष नहीं है, यही समझ कर उसने वह मद्य पी डाला। जब वह वेहोश हुआ और उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो गई तब उसने अगम्य-गमन (उस भीलनीके साथ संसर्ग) भी किया अभक्ष्य भक्षण (मांसका भक्षण) भी किया। देखो मद्य पीनेवालोंके अपराधसे ही द्वीपायन मुनिको क्रोध हुआ था तथा उसी क्रोधसे द्वारावती नगरी सब जल गई थी और यादव लोग सब नष्ट हो गये थे। मत्तो हिनस्ति सर्वमित्यादि

अर्थात्—शराबके नशेमें मदोन्मत्त होकर यह जीव सब जीवोंकी हिंसा करता है, विवेक रहित होकर मिथ्या प्रलाप करता है और माताके साथ भी काम वासना प्रगट करता है, इसलिये मद्यका सेवन सब पापोंसे भरा हुआ है।

स्तदस्यव्रतमिति सचित्तव्रतो दयामूर्तिर्मूलफलशाखाकरीरकंदपुष्पबीजादीनि न भक्षयत्यस्योपभोगपरिभोगपरिमाणशीलव्रतातिचारो व्रतं भवतीति ।

रात्रिभक्तव्रतः रात्रौ स्त्रीणां भजनं रात्रिभक्तं तद्व्रतयति सेवत इति रात्रिव्रतातिचारो रात्रिभक्तव्रतः दिवाब्रह्मचारीस्यर्थः । ब्रह्मचारी शुक्रशोणित बीजं रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रसप्तधातुमयमनेकस्रोतोविलं मूत्रपुरीषभाजनं कृमिकुलाकुलं विविधव्याधिविधुरम- पायप्रायं कृमिभस्मविष्ठापर्यवसानमंगमित्यनंगाद्विरतो भवति ।

आरंभविनिवृत्तोऽसिमसिकृषिवाणिज्यप्रमुखादारंभात्प्राणातिपातहेतोर्विरतो भवति । परिग्रहविनिवृत्तः क्रोधादिकषायाणामार्त्तरौद्र-

अब आगे शेष प्रतिमाएं बतलाते हैं —सामायिक सवेरे दुपहर और शाम तीनों समय करना चाहिये और वह तीनों लोकोंके स्वामी भगवान जिनेंद्रदेवको नमस्कारकर आगे जो व्यु- त्सर्ग नामका तपश्चरण कहेंगे उसमें कहे हुए क्रमके अनुसार करना चाहिये । द्विनिषण्णं इत्यादि—

अर्थात् खडे होकर अथवा बैठकर इन दो ही आसनोंसे उत्पन्न हुए बच्चे के समान निर्विकार होकर चारो दिशाओंमें बारह आवर्त करना चाहिये । चारो दिशाओंमें चार नमस्कार करना चाहिये, मन वचन काय तीनोंको शुद्ध रखना चाहिये और इस तरह अपना कर्तव्य कर्म करना चाहिये ।

पहिले-जो सात शीलोंके अंतर्गत सामायिक कहा है वही सामायिक इस सामायिक प्रति- मा पालन करनेवाले श्रावकके व्रत हो जाता है और दूसरी व्रत प्रतिमा पालन करनेवालेके वही सामायिक शील रूपसे रहता है ।

प्रोषधोपवास प्रत्येक महीनेके चारों पर्वोंमें अपनी शक्तिको न छिपाकर तथा प्रोषधके सब नियमोंको मानकर करना चाहिये। व्रती श्रावकके जो प्रोषधोपवास शीलरूपसे रहता था वही

षपरो भवति ।

अनुमतिविनिवृत्त आहारादीनामारंभाणामनुमननाद्विनिवृत्तो भवति ।

उद्दिष्टविनिवृत्तः स्वोद्दिष्टपिंडोपधिशयनवसनादेर्विरतः सन्नेकशाटधरो भिक्षाशनः पाणिपात्रपुटेनोपविश्य भोजी रात्रिप्रतिमादितपः समुद्यत आतापनादियोगरहितो भवति ।

प्रोषधोपवास इस चौथी प्रतिमावालेके व्रतरूपसे रहता है ।

सचित्त विरत प्रतिमावाला दयाकी मूर्ति होता है और वह मूल, फलशाखा, करीरकंद, पुष्प, और बीज आदिकोंको कभी नहीं खाता है। उपभोग परिभोगपरिमाण शीलके जो अतिचार हैं उनका त्याग ही इस पांचवीं प्रतिमावालेके व्रत कहलाता है।

छट्ठी प्रतिमाका रात्रिभक्त व्रत नाम है। रात्रि में ही स्त्रियोंके सेवन करनेका व्रत लेना अर्थात् दिनमें ब्रह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा लेना रात्रिभक्त व्रत प्रतिमा है। रात्रिभोजनत्यागके अतिचार त्याग करना ही रात्रिभक्त व्रत है ।

सातवीं प्रतिमाका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है इस प्रतिमाका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी समझता है कि यह शरीर शुक्र शोणित से (पिताके वीर्य और माताके रुधिरसे) बना हुआ है, रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा और शुक्र (वीर्य) इन सातों धातुओं से भरा हुआ है अनेक इन्द्रिय ही इसके विल हैं। मल मूत्रका यह पात्र (वर्तन) है अनेक छोटे कीड़ों के समूहोंसे भरा हुआ है अनेक तरहके रोगोंसे व्याप्त है प्रायः नश्वर है अथवा नाश करनेवाला है और अंतमें या तो इसमें अनेक कीडे पड़ जांयगे जला दिया जायगा अथवा कोई खाकर विष्ठा बना देगा। इसप्रकार शरीरको समझकर वह कामदेवसे सदा विरक्त रहता है ।

अणुव्रतिमहाव्रतिनौ समितियुक्तौ संयमिनौ भवतः समिति विना विरतौ । तथा चोक्तं वर्गणाखंडस्य बंधनाधिकारे —

संजमविरइणं को भेदो, ससमिदिमहव्वयाणुव्वयाई संजमो, समदीहिं विणा महव्वयाणुव्वयाइं विरदी । इति ।

आद्यास्तु षट् जघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनु त्रयः । शेषौ द्वावुत्तमावुक्तौ जैनेषु जिनशासने ॥

असिमषिकृषिवाणिज्यादिभिर्गृहस्थानां हिंसासंभवेऽपि पक्षचर्यासाधकत्वैर्हिंसाऽभावः क्रियते । तत्राहिंसापरिणामत्वं पक्षः । धर्मार्थं देवतार्थं मैत्रसि–

आठवीं प्रतिमा आरंभत्याग है इस प्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक प्राणियोंकी हिंसा होनेके कारण असि मसि कृषि वाणिज्य आदि आरंभोंसे विरक्त रहता है अर्थात् उनका त्याग करदेता है।

नौवीं प्रतिमाका नाम परिग्रह त्याग है इसप्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक समझता है कि यह परिग्रह क्रोधादि कषायोंकी, आर्त रौद्र अशुभ ध्यानोंकी, हिंसा आदि पांचो पापोंकी और डर की जन्मभूमि है अर्थात् ये सब परिग्रहसे ही उत्पन्न होते हैं तथा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान इस परिग्रहसे दूर भाग जाते हैं यही समझकर वह दशप्रकारके वाह्य परिग्रहोंका त्याग करदेता है और सब परिग्रहसे अलग तथा विशुद्ध होकर संतोष धारण करनेमें तल्लीन हो जाता है।

दशवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमाका धारण करनेवाला श्रावक आहार आदि आरंभकार्योंमें सम्मति देनेका त्याग करदेता है।

ग्यारहवीं प्रतिमाका नाम उद्दिष्टत्याग प्रतिमा है इस प्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक अपने निमित्त बनाये हुए भोजन उपधि शय्या और वस्त्र आदिका त्याग करदेता है। केवल

द्रव्यर्थमौषधार्थमाहारार्थं स्वभोगाय च गृहमेधिनो हिंसां न कुर्वंति। हिंसासंभवे प्रायश्चित्तविधिना विशुद्धः मन परिग्रहपरित्यागकरणे-सति स्वगृहं धर्मं च वेश्याय समर्प्य यावद् गृहं परित्यजति तावदस्य चर्या भवति। सकलगुणसंपूर्णस्य शरीरकम्पनोच्छ्वासनोन्मीलनविधिं परिहरमाणस्य लोकाग्रमनसः शरीरपरित्याग. साधकत्वमेव पञ्चादिभिस्त्रिभिर्हिंसाद्य पदितं पापमपगतं भवति।

जैनागमे चत्वार आश्रमाः—उक्तं चोपासकाध्ययने।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः। इत्याश्रमास्तु जैनानां सप्तमांगाद्विनिःसृताः॥

एक चादर धारण करता है भिक्षावृत्तिसे भोजन करता है तथा बैठकर पाणिपात्रसे ही भोजन करता है। वह रात्रिप्रतिमा आदि तपश्चरण करनेमें तत्पर रहता है परन्तु आतापन आदि योगोंको धारण नहीं करता।

यदि अणुव्रतीऔर महाव्रती दोंनो ही समितियोंको पालन करें तो संयमी कहलाते है यदि ये दोनोंही समितियोंको पालन करें तो विरत अथवा व्रतीकहलाते हैं। यही बात वर्गणा-खडके वंदनाधिकारमें लिखी है—

संजमावरइण को भेदो ससमिदिमहव्वयाणुव्वयाई सजमो समदीहिं विणा महव्वयाणुव्वयाइं विरदी।

अर्थात्–संयम और विरति (अथवा व्रती) में क्या भेद है! जो समितियों के साथ साथ महाव्रत और अणुव्रतहो तो संयम समझना चाहिये। यदि समितियोंके विना ही महाव्रत और अणुव्रत हों तो विरति अथवा व्रत समझना चाहिये

जिनागम और जैनियोंमें इन ग्यारह प्रतिमाओं में से पहिलेकी छह प्रतिमा जघन्य मानी जाती हैं इनके बादकी तीन अर्थात् सातवीं आठवीं और नौवीं प्रतिमाएं मध्यम मानी जाती हैं और बाकीकी दशवीं ग्यारहवीं प्रतिमाएं उत्तम मानी जाती हैं।

तत्र ब्रह्मचारिणः पंचविधाः—उपनयावलंबादीक्षागूढनैष्ठिकभेदेन । तत्रोपनयब्रह्मचारिणो गणधरसूत्रधारिणः समभ्यस्तागमा गृहधर्मानुष्ठायिनो भवंति । अवलंबब्रह्मचारिणः क्षुल्लकरूपेणागममभ्यस्य परिगृहीतगृहावासा भवंति । अदीक्षाब्रह्मचारिणः वेषमंतरेणाभ्यस्तागमा गृहधर्मनिरता भवंति । गूढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यासा बंधुभिर्दुःसहपरीषहैरात्मना नृपतिभिर्वा निरस्तपरमेश्वररूपा गृहवासरता भवंति । नैष्ठिकब्रह्मचारिणः समाधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगाः गणधरसूत्रोपलक्षितोरोलिंगाः, शुक्लरक्तवसनखंडकोपीनलक्षितकटीलिंगाः स्नातका भिक्षावृत्तयो देवतार्चनपरा भवंति ।

यद्यपि असि मषि कृषि वाणिज्य आदि आरंभ कर्मोंसे गृहस्थोंके हिंसा होना संभव है तथापि पक्ष चर्या और साधकपना इन तीनोंसे हिंसाका निवारण किया जाता है । इनमेंसे सदा अहिंसारूप परिणाम करना पक्ष है गृहस्थी लोग धर्मकेलिये, किसी देवताकेलिये, किसी मंत्रको सिद्ध करनेके लिये औषधिके लिये आहारके लिये और अपने भोगोपभोगके लिये कभी हिंसा नहीं करते हैं । यदि किसी कारणसे हिंसा होगई हो तो विधिपूर्वक प्रायश्चित्त कर विशुद्धता धारण करते हैं । तथा परिग्रहका त्याग करनेके समय अपना घर और धर्म अपने वंशमें उत्पन्न हुए पुत्र आदिको समर्पणकर जबतक वे घरको परित्याग करते हैं तबतक उनके चर्या कहलाती है ।

इसीतरह जिसमें संपूर्ण गुण विद्यमान हैं, जो शरीरका कंपना, उच्छ्वासलेना नेत्रोंका खोलना आदि क्रियाओंका त्याग कर रहा है और जिसका चित्त लोकके ऊपर विराजमान सिद्धोंमें लगा हुआ है ऐसे समाधिमरण करनेवालेका शरीर परित्याग करना साधकपना कहलाता है । इसप्रकार पक्ष चर्या और साधकत्व इन तीनोंसे गृहस्थीके हिंसा आदिके इकट्ठे किये हुए पाप सब नष्ट हो जाते हैं ।

जैन शास्त्रोंमें चार आश्रम हैं । उपासकाध्ययनमें भी लिखा है—ब्रह्मचारी इत्यादि ।

गृहस्थस्येज्या, वार्ता, दत्तिः, स्वाध्यायः, संयमः, तप इत्यार्यषट्कर्माणि भवंति । तत्रार्हत्पूजेज्या, सा च नित्यमहश्चतुर्मुखं कल्पवृक्षो-ऽष्टाह्निक ऐन्द्रध्वज इति । तत्र नित्यमहो नित्यं, यथाशक्ति जिनगृहेभ्यो निजगृहाद् गंधपुष्पाक्षतादिनिवेदनं, चैत्यचैत्यालयं कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासनदानं मुनिजनपूजनं च भवति । चतुर्मुखं मुकुटबद्धैः क्रियमाणा पूजा सैव महामहः सर्वतोभद्र इति । कल्पवृक्षोर्थिनः प्रार्थितार्थैः संतर्प्य चक्रवर्तिभिः क्रियमाणो महः । अष्टान्हिकं प्रतीतं । ऐन्द्रध्वज इन्द्रादिभिः क्रियमाणः बलिस्नपनं सन्ध्यात्रयेपि जगत्त्रयस्वामिनः पूजाभिषेककरणं । पुनरप्येषा विकल्पा अन्येऽपिपूजाविशेषाः सन्तीति । वार्ताऽसिमसिकृषिवाणिज्यादिशिल्पकर्मभिर्विशुद्धवृत्त्याऽर्थोपार्जनमिति । दत्तिः दयापात्रसमसकलभेदाच्चतुर्विधा । तत्र दयादत्तिरनुकंपयाऽनुग्राह्येभ्यः प्राणिभ्यस्त्रि-

अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैनियोंके चार आश्रम सातवें उपासकाध्ययन अंगसे निकले हैं।

इनमें भेदसे ब्रह्मचारी पांच प्रकारके होते हैं उपनय, अवलंब, अदीक्षा, गूढ और नैष्ठिक। जो गणधर सूत्रको धारण कर अर्थात् मौंजीबंधनविधिके अनुसार यज्ञोपवीतको धारण कर उपासकाध्ययन आदि शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थ धर्मस्वीकार करते हैं उन्हें उपनय ब्रह्मचारी कहते हैं। जो क्षुल्लकका रूप धारणकर शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उन्हें अवलंब ब्रह्मचारी कहते हैं। जो विनाही ब्रह्मचारीका भेष धारण किये शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थधर्म स्वीकार करते है उन्हें अदीक्षा ब्रह्मचारी कहते हैं। जो कुमार अवस्थामें ही मुनि होकर जैनशास्त्रोंका अभ्यास करते हैं तथा पिता भाई आदि कुटुम्बियोंके आग्रहसे अथवा घोर परीषहोंके सहन न करनेसे किंवा राजाकी किसी विशेष आज्ञासे अथवा अपने आप ही जो परमेश्वर भगवान अरहंतदेवकी दिगंबर अवस्था छोड़कर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उन्हें गूढ ब्रह्मचारी कहते हैं। समाधि धारण करते समय शिखा

शुद्धिभिरभयदानं । पात्रदत्तिमहातपोघनेभ्यः प्रतिग्रहार्चनादि पूर्वकं निरवद्याहारदानं ज्ञानसंयमोपकरणादिदानं च । समदत्तिः स्वसमक्रियाय मित्राय निस्तारकोत्तमाय कन्याभूमिसुवर्णहस्त्यश्वरथरत्नादिदानं, स्वसमानाभावे मध्यमपात्रस्यापि „ दानं । सकलदत्तिरात्मीयस्य संततिस्थापनार्थं पुत्राय गोत्रजाय वा धर्मं धनं च समर्प्य प्रदानमन्वयदत्तिश्च सैव । स्वाध्यायस्तत्त्वज्ञानस्याध्ययनमध्यापनं स्मरणं च संयमः पंचाणुव्रतप्रवर्तनं । तपोऽनशनादिद्वादशविधानुष्ठानं ।

(चोटी) धारण करनेसे जिसके मस्तकका चिन्ह प्रगट हो रहा है यज्ञोपवीत धारण करनेसे जिसका उरोलिंग (वक्षस्थलका चिह्न) प्रगट हो रहा हैं सफेद अथवा लाल वस्त्रके टुकडेकी लंगोटी धारण करनेसे जिसकी कमरका चिह्न प्रगट हो रहा है जो सदा भिक्षा वृत्तिसे अपना निर्वाह करते हैं जो स्नातक वा व्रती हैं और जो सदा जिनपूजा आदि करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं।

इज्या, वार्ता, दत्ति,, स्वाध्याय, संयम और तप ये छह गृहस्थोंके आर्य कर्म कहलाते हैं। इनमें भी अरहंत भगवानकी पूजा करना इज्या कहलाती है, उस इज्याके नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, आष्टाह्निक, और ऐंद्रध्वज ये पांच भेद हैं। प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुसार अपने घर से गंध पुष्प अक्षत आदि ले जाकर जिनभवनके लये चढाना अथवा जिन भवनमें अरहंत देवकी पूजा करना, जिन भवन अथवा जिन प्रतिमाका कराना, तथा जिन प्रतिमा वा जिन भवनके लिये राज्यके नियमानुसार सनदपत्र लिखकर गांव खेत आदि समर्पण करना तथा मुनिलोगोंकी पूजा करना आदिको नित्यमह कहते हैं। मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे चतुर्मुख कहते हैं महामह और सर्वतोभद्र भी इसीके नामांतर हैं। समस्त याचकोंको उनकी इच्छानुसार धनसे संतुष्टकर जो चक्रवर्तीके द्वारा पूजा की जाती है उसे

कल्पवृक्ष कहते हैं। अष्टाह्निक पूजा प्रसिद्ध ही है अर्थात् नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें जो पूजा की जाती है उसे अष्टान्हिक कहते हैं। इंद्र प्रतींद्र आदिके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे ऐन्द्रध्वज कहते हैं इनके सिवाय वलि अर्थात् नैवेद्यसमर्पण स्नपन अर्थात् अभिषेक तीनो समय तीनोंलोकोंके स्वामी भगवान जिनेंद्र देव की पूजा करना अभिषेक करना आदि भेद तथा और भी पूजाके विशेष भेद बहुतसे होते हैं असि (तलवार आदि शस्त्र) मषि (स्याही, लिखनेका काम) कृषि (खेती) वाणिज्य (व्यापार) आदि शिल्प कर्मोंके द्वारा अपनी शुद्ध प्रवृत्ति रखकर धन उपार्जन करना वार्ता है। दान देनेको दत्ति कहते हैं वह दयादत्ति, पात्रदत्ति समदत्ति और सकलदत्तिके भेदसे चार प्रकार है जिनपर अनुग्रह करना आवश्यक है ऐसे दुखी प्राणियोंको दया पूर्वक मन वचन कायकी शुद्धतासे अभय दान देना दयादत्ति है। महा तपश्चरण करने वाले मुनियोंको प्रतिग्रह पूजन आदि नवधा भक्ति पूर्वक निर्दोष आहार देना तथा ज्ञान संयमके शास्त्र पीछी कमंडलु आदि उपकरण देना पात्रदान वा पात्रदत्ति है, अपने समान क्रियाओंको करनेवाले मित्रोंकेलिये उत्तम निस्तारक वा गृहस्थाचार्यकेलिये कन्या, भूमि, सुवर्ण, हाथी, घोड़ा, रथ, रत्न आदि देना, यदि अपने समान क्रिया करनेवाले न मिलें तो मध्यम पात्र केलिये ही कन्या आदि देना समदत्ति है, अपनी निजकी संतान सदा कायम रखनेके लिये पुत्रको अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए किसी पुरुष को अपना धन और धर्म समर्पण करदेना सकलदत्ति है अन्वयदत्ति भी इसी का नाम है। तत्त्वज्ञानका पढाना पढना स्मरण करना आदि स्वाध्याय है पांचो अणुव्रतोंमें अपनी प्रवृत्ति रखना संयम है और उपवास आदि बारह तरहका तपश्चरण करना तप है।

इत्यार्यषट्कर्म्मनिरता गृहस्था द्विविधा भवंति । जातिक्षत्रियास्तीर्थक्षत्रियाश्चेति । तत्र जातिक्षत्रियाः क्षत्रियब्राह्मणवैश्यशूद्रभेदाश्चतुर्विधाः। तीर्थक्षत्रियाः स्वजीवनविकल्पादनेकधा भिद्यन्ते ।

वानप्रस्था अपरिगृहीतजिनरूपा वस्त्रखंडधारिणो निरतिशयतपःसमुद्यता भवन्ति ।

भिक्षवो जिनरूपधारिणस्ते बहुधा भवंति । अनगारा यतयो मुनयः,ऋषयश्चेति । तत्रानगाराः सामान्यसाधव उच्यंते । यतय उपशमक्षपकश्रेण्यारूढा भण्यन्ते । मुनयोऽवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते । ऋषयः—ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधाः, राजब्रह्मदेवपरमभेदात् । तत्र राजर्षयो विक्रियाऽक्षीणर्द्धिप्राप्ता भवंति । ब्रह्मर्षयो बुद्ध्योषधिऋद्धियुक्ताः कीर्त्यन्ते । देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसंयुक्ताः कथ्यन्ते । परमर्षयः केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते ।

इस प्रकार आर्योंके जो छह कर्म हैं उनमें तत्पर रहनेवाले गृहस्थ कहलाते हैं और वे दो प्रकारके होते हैं जाति क्षत्रिय और तीर्थक्षत्रिय। क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य और शूद्रके भेदसे जातिक्षत्रिय चार प्रकारके हैं और अपनी जीविकाके भेदसे तीर्थ क्षत्रिय अनेक प्रकारके हैं । जिन्होंने भगवान अरहंत देवका दिगंबर रूप धारण नहीं किया है और जो खंडवस्त्रों को धारणकर निरतिशय तपश्चरण करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें वानप्रस्थ कहते हैं भगवान अरहंत देवकी दिगंबर अवस्थाको धारण करनेवाले भिक्षु कहलाते हैं उनके अनगार यति मुनि और ऋषिके भेदसे बहुतसे भेद होते हैं। साधारण साधुओंको अनगार कहते हैं। जो उपशमश्रेणी तथा क्षपक श्रेणीमें विराजमान हैं उन्हें यति कहते हैं,अवधि ज्ञानी मनःपर्यय और केवलज्ञानियोंको मुनि कहते हैं जिन्हें ऋद्धियां प्राप्त हो चुकी हैं उन्हें ऋषि कहते हैं राजर्षि ब्रह्मर्षि देवर्षि और परमर्षिके भेदसे ऋषि चार प्रकारके होते हैं जिन्हें विक्रिया ऋद्धि और अक्षीणऋद्धि प्राप्त हो चुकी है उन्हें राजर्षि कहते हैं बुद्धि और ओषधि ऋद्धिको धारण करनेवाले ब्रह्मर्षि हैं आकाशगामिनी ऋद्धिको धारण करनेवाले देवर्षि हैं और केवल ज्ञानी परमर्षि कहलाते हैं । लिखा भी है—देशप्रत्यक्ष इत्यादि।

अपि च-देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिःप्रोद्गतर्द्धि-रारूढश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः ।
राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाऽक्षीणशक्ति-प्राप्तो बुद्ध्योषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण ॥

उक्तैरुपासकैर्मारणान्तिकी सल्लेखना प्रीत्या सेव्या । स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां बलानामुच्छ्वासनिःश्वसस्य च कदलीघात स्यपाकच्युतिकारणवशात्संक्षयो मरणं, तच्च द्विविधं, नित्यमरणं तद्भवमरणं चेति । तत्र नित्यमरणं समये समये स्वायुरादीनां निवृत्तिः तद्भवमरणं भवांतरप्राप्तिरनन्तरोपश्लिष्टपूर्वभवविगमनं । अत्र पुनस्तद्भवमरणं ग्राह्यं,मरणान्तः प्रयोजनमस्या इति माराणांतिकी । बाह्यस्य का-

अर्थात्—यति मुनि ऋषि और अनगार ये चार मुख्य भेद हैं । सामान्य साधुओंको अनगार कहते हैं, जो उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हैं उनको यति कहते हैं अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियोंको मुनि कहते हैं और जिनको ऋद्धियां प्राप्त हुई हैं उन्हें ऋषि कहते हैं । ऋषियोंके चार भेद हैं राजर्षि ब्रह्मर्षि देवर्षि और परमर्षि,जिनको विक्रिया ऋद्धि और अक्षीणऋद्धि प्राप्त हुई है उनको राजर्षि कहते हैं,बुद्धि और ओषधि ऋद्धिको धारण करनेवाले ब्रह्मर्षि कहलाते हैं जिन्हें आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हुई है उन्हें देवर्षि कहते हैं और केवलज्ञानी सर्वज्ञदेवको परमर्षि कहते हैं ।

ऊपर जिनका वर्णन किया जा चुका है ऐसे श्रावकोंको मरण समयमें होनेवाली सल्लेखना बडे प्रेमसे सेवन करनी चाहिये । कदली घात होनेके कारण अथवा अपना पाक पूर्ण हो जाने के कारण अपने परिणामोंसे प्राप्त हुई आयुका, स्पर्शन आदि इंद्रियोंका, मन वचन काय बलोंका और श्वासोच्छ्वासका नाश होना मरण है । वह मरण दो प्रकारका है—एक नित्यमरण और दूसरा तद्भव मरण । प्रत्येक समयमें जो आयु कर्मके निषेक खिरते रहते हैं उसको नित्य-मरण कहते हैं तथा जिसमें पहिलेका भव नाश होकर अगले भवकी प्राप्ति हो उसे तद्भवमरण

यस्याभ्यंतराणां तत्कारणहापनया क्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि निःप्रतिक्रियायां धर्मार्थं तनुत्यजनं सल्लेखना ततो नित्यप्रार्थितसमाधिमरणे यथाशक्ति प्रयत्नं कृत्वा शीतोष्णाद्युपश्लेषे सति तपःस्थो यथा शीतोष्णादौ हर्षविषादं न करोति तथा सल्लेखनां कुर्वाणः शीतोष्णादौ हर्षविषादमकृत्वा स्नेहं संगवैरादिकं परिग्रहं च परित्यज्य विशुद्धचित्तः स्वजनपरिजने क्षन्तव्यं निःशल्यं च प्रियवचनैर्विधाय विगतमानकषायः कृतकारितानुमतमेनः सर्वमालोच्य गुरौ महाव्रतमामरणमारोप्यारतिदैन्यविषादभयकालुष्यादि-

कहते हैं। यहा मारणांतिकी सल्लेखनामें तद्भवमरण ग्रहण करना चाहिये। मरणांत ही जिसका प्रयोजन हो उसको मारणांतिकी कहते हैं। अनुक्रमसे उनके कारणोंको घटाते हुए वाह्य शरीरको और अंतरंग कषायोंको अच्छी तरह कृष करना घटाना सल्लेखना है। किसी उपसर्गके आजानेपर अथवा घोर दुर्भिक्ष पडनेपर अथवा जिसको कोई उपाय नहीं ऐसा बुढापा आजानेपर धर्मके लिये (अपना संचित धर्म बनाये रखनेके लिये) शरीरका त्याग करना सल्लेखना है गृहस्थको समाधिमरणके लिये सदा प्रार्थना करते रहना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार सदा उसकेलिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि समाधिमरणके समय शीत उष्ण आदि परीषह आजाय तो उस समय तपश्चरण में लीन हो जाना चाहिये और शीत उष्ण आदि में (ठंडी गरमीमें) कभी हर्ष विषाद नही करना चाहिये। इस प्रकार सल्लेखनाको धारण करते हुए गृहस्थको शीत उष्ण आदिमें हर्ष विषाद नही करना चाहिये। स्नेह संग परिग्रह और वैर आदिका परित्यागकर चित्तको अत्यंत शुद्ध रखना चाहिये, कुटुंबी परिवारके लोगोंको क्षमा कर देना चाहिये और प्रिय वचनों के द्वारा सबसे क्षमा कराकर सबको शल्य रहित कर देना चाहिये,मान कषायको दूर कर किये हुए कराये हुए और अनुमोदन किये हुए समस्त पापोंकी आलोचना करनी चाहिये तदनंतर गुरुके समीप (गुरुसे) मरण पर्यंत तकके लिये महाव्रत धारण

कमपहाय सत्त्वोत्साहमुदीर्य श्रुतामृतेन मनः प्रसाद्य क्रमेणाहारं परिहाय ततः स्निग्धपानं तदन्तरं खरपानं तदनु चोपवासं कृत्वा गुरोः पादमूले पंचनमस्कारमुच्चारयन्पंचपरमेष्ठिनां गुणान्स्मरन्सर्वयत्नेन तनुं त्यजेदियं सल्लेखना संयतस्यापि ।

अथ सल्लेखनाया मरणविशेषोत्पादनसमर्थाया असंक्लिष्टचित्तेनारभ्यायाः पंचातीचारा भवन्ति जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुरागः, सुखानुबन्ध, निदानं चेति । तत्र शरीरमिदमवश्यं हेयं जलबुद्बुदवदनित्यमस्यावस्थानं कथं स्यादित्यादरो जीविताशंसा ।

करना चाहिये और अरति, दीनता विषाद भय और कलुषता आदिको दूर कर देना चाहिये अपना बल और उत्साह प्रगट कर शास्त्ररूपी अमृतके द्वारा मनको प्रसन्न वा शुद्ध करना चाहिये और अनुक्रमसे आहारका त्यागकर तथा छाछ पीकर निर्वाह करना चाहिये। तदनंतर छाछका भी त्यागकर गर्म पानीपर रहना चाहिये और फिर गर्म जलका भी त्यागकर उपवास करना चाहिये। अंतिम समयमें गुरुके चरण कमलोंके समीप रहकर पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करना चाहिये पांचों परमेष्ठियोंके गुणोंका स्मरण करना चाहिये और सब तरहके यत्नोंसे शरीरका त्याग करना चाहिये। यह सल्लेखना संयमीके भी होती है।

विशेष मरणको उत्पन्न करनेवाली यह सल्लेखना यदि असंक्लेश परिणामोंसे भी आरंभ की जाय तो भी उसके जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध और निदान ये पांच अतिचार होते हैं। यह शरीर अवश्य ही त्याग करने योग्य है और जलके बुद्बुदेके समान अनित्य है इसलिये यह किस तरह ठहर सकेगा इस प्रकार शरीरके ठहरनेमें आदर रखना जीविताशंसा है। आशंसा, आकांक्षा, और अभिलाषा, इन सबका एक ही अर्थ है। भावार्थ —जीवित रहनेकी अभिलाषा वा इच्छा करनेको जीविताशंसा कहते हैं। रोगोंके उपद्रवोंसे व्याकुल हो कर प्राप्त हुए जीवनमें संक्लेशता धारण कर मरनेके लिये चित्तमें विचार करना (जल्दी मर-

उक्तै रेकादशोपासकैर्वंद्यमाणदशधर्माधारैश्च मनुष्यगतौ केवलज्ञानोपलक्षितजीवद्रव्यसहकारिकारणसंबंधप्रारंभस्यानंतानुपमभावस्याचिन्त्यविशेषविभूतिकारणस्य त्रैलोक्यविजयकरस्य तीर्थकरनामगोत्रकर्मणः कारणानि षोडशभावना भावयितव्या इति तद्यथा दर्शनविशुद्धता विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचारः, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः, संवेगः, शक्तितस्त्यागः शक्तितस्तपः, साधुसमाधिः, वैयावृत्यकरणं, अर्हद्भक्तिः, आचार्यभक्तिः, बहुश्रुतभक्तिः। प्रवचनभक्तिः, आवश्यकापरिहाणिः, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्यमिति । तत्र जिनोपदिष्टे नैर्ग्रंथ्ये,

आगे सोलह भावनाएं लिखते हैं—इस संसारमें तीर्थंकर नाम कर्म और गोत्रकर्म मनुष्य गतिमें उत्पन्न हुए केवल ज्ञानी जीवोंके सहकारी कारणोंके संबंधको प्रारंभ करनेवाला है अर्थात् तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होजाने से फिर केवल ज्ञान उत्पन्न होनेकी सामग्री अपने आप मिल जाती है उस कर्मका उदय ही सब सामग्री इकट्ठी कर देता है इसके सिवाय उस कर्मके उदय का प्रभाव अनंत और उपमारहित है, वह स्वयं जिसका चिंतवन भी नहीं किया जा सकता ऐसी विशेष विभूतिका कारण है और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला है, इसलिये ऊपर जिन ग्यारह प्रकार के श्रावकोंका वर्णन कर चुके हैं उन्हें आगे कहे हुए उत्तमक्षमा आदि दश धर्मों को धारणकर उस तीर्थंकर नाम कर्म और गोत्र कर्मकी कारणभूत सोलह भावनाओंका चिंतवन करना चाहिये। आगे उन्हीं सोलह भावनाओं को बतलाते हैं—दर्शनविशुद्धता, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ये सोलह भावनाएं हैं। भगवान अर्हंतदेवके कहे हुये निर्ग्रंथ रूप मोक्ष मार्गमें श्रद्धा प्रतीति वा विश्वास रखना सम्यग्दर्शन है। उसकी विशुद्धिके विना केवल सम्यग्दर्शन होने

आशंसाऽऽकांक्षणमभिलाष इत्यनर्थान्तरं । रोगोपद्रवाकुलतया प्राप्तजीवनसंक्लेशस्य मरणं प्रति चित्तप्रणिधानं मरणाशंसा । व्यसने सहायत्वमुत्सवे संभ्रम इत्येवमादि सुकृतं बाल्ये सह पांशुक्रीडनमित्येवमादीनामनुस्मरणं मित्रानुरागः । एवं मया भुक्तं शयितं क्रीडितमित्येवमादि प्रीतिविशेषं प्रति स्मृतिसमन्वाहारः सुखानुबन्धः । विषयसुखोत्कर्षाभिलाषभोगाकांक्षतया नियतं चित्तं दीयते तस्मिन् तेनेति वा निदानमिति ।

इति श्रीमच्चामुण्डरायप्रणीते भावनासंग्रहे चारित्रसारे सागारधर्मः समाप्तोऽयं ॥

जानेकी इच्छा करना) मरणाशंसा है मेरे मित्रोंने मेरे व्यसनोंमें इस प्रकार सहायता की थी मेरे उत्सवमें इस प्रकार उत्साह दिखलाया था तथा ऐसे ऐसे बहुतसे काम किये थे, बालकपनमें मेरे साथ रेतमें खेले थे इस प्रकार उनके कार्योंका वार वार स्मरण करना मित्रानुराग है । इस जन्म में मैंने इस प्रकार खाया है ऐसी ऐसी शय्याओं पर सोया हूं ऐसी ऐसी क्रीडा की है इस प्रकार जिन जिनमें विशेष प्रेम था उनका वार वार स्मरण करना सुखानुबंध है । विषय सुखोंकी अत्यन्त अभिलाषा होनेके कारण अथवा भोगोंकी आकांक्षा होनेके कारण उन्हीं भोगोपभोगोंमें चित्तका सदा लगा रहना अथवा उन्हीं भोगोपभोगोंके द्वारा चित्तमें सदा चिंतवन बना रहना निदान है । इसप्रकार सल्लेखनाके पांच अतिचार हैं ।

इसप्रकार श्रीचामुंडरायप्रणीत भावना संग्रहके अंतर्गत चारित्रसारमें सागारधर्मका निरूपण समाप्त हुआ ।

मोक्षवर्त्मनि रुचिः सम्यग्दर्शनं, विशुद्धि विना दर्शनमात्रादेव तीर्थंकरनामकर्मबंधो न भवति, त्रिमूढापोढाष्टमदादिरहितत्वात् उपलब्धनिजस्वरूपस्य सम्यग्दर्शनस्य प्रथमद्वितीयोपशमकवेदकक्षायिकान्यतमविशिष्टस्य ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रेषु तद्वत्सु च विनये, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगयुक्तत्वे, साधुभ्यः प्रासुकप्रदाने, द्वादशविधतपसि; साधूनां समाधिवैयावृत्यकरणे, अर्हत्सु व्रतशीलावश्यकसंपन्नाचार्येषु च बहुश्रुतेषु प्रवचने च भक्तौ, प्रवचनप्रभावने, प्रवचनवत्सलत्वे प्रवर्त्तनं विशुद्धता। एकाऽपि सा दर्शनविशुद्धता तीर्थंकरनामबंधस्य

मात्रसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध नहीं होता। वह विशुद्ध सम्यग्दर्शन चाहे प्रथमोपशमिक हो चाहे द्वितीयोपशमिक हो, चाहे क्षायोपशमिक हो और चाहे क्षायिक हो परंतु उसमें तीन मूढता और आठों मदोंसे रहित होनेके कारण अपने आत्माका निजस्वरूप प्रत्यक्ष होना चाहिये ऐसे विशुद्ध सम्यग्दर्शनसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होता है। आगे उसकी विशुद्धता बतलाते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तपश्चरण और चारित्र की विनय करनेमें अर्थात् इनको पालन करनेमें तथा इनको पालन करनेवाले मुनियोंकी विनय करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, अपना उपयोग निरंतर ज्ञानरूप होनेमें तथा संवेग धारण करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, साधुओंको प्रासुक आहार आदिके दान देनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, बारह प्रकारके तपश्चरण करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, साधुसमाधि और वैयावृत्य करनेमें प्रवृत्ति रखना, अरहन्तकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, व्रत शील और आवश्यकों को पालनकरनेवाले आचार्योंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, उपाध्यायोंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना और शास्त्रोंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, जिनमार्गकी प्रभावना और साधर्मियोंके साथ गाढ प्रेम करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना वह सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता कहलाती है। ऐसी सम्यग्दर्शन की विशुद्धता अकेली ही तीर्थंकर नाम कर्मके बंधका कारण होती है क्योंकि बाकीकी

कारणं भवति, शेषभावनानां तत्रैवान्तर्भावादिति दर्शनविशुद्धता व्याख्याता । सम्यग्दर्शनादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधकेषु गुर्वादिषु च स्वयोगवृत्त्या सत्कार आदरः कषायनोकषायनिवृत्तिर्वा विनयसम्पन्नता । अहिंसादिषु व्रतेषु तत्परिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः कायवाङ्मनसां शीलव्रतेष्वनतिचार इति । मत्यादिविकल्पं ज्ञानं जीवादिपदार्थस्वतत्त्वविषयं प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणमज्ञाननिवृत्त्यव्यवहितफलं हिताहितानुभयप्राप्तिपरिहारोपेक्षाव्यवहितफलं यत्तस्य भावनायां नित्ययुक्तताऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग इति । शारीरं मानसं च बहुविकल्पं प्रियविप्रयोगाप्रियसंयोगेप्सितालाभादिजनितं संसारदुःखं यदतिकष्टं ततो नित्यभीरुता संवेग इति । आहारो दत्तः पात्राय तस्मिन्नहनि तत्प्रीतिहेतुर्भवति, अभयदानमुपपादितमेकभवव्य-

पन्द्रह भावनाएं भी सब उसी एक दर्शन विशुद्धिमें ही शामिल हो जाती हैं । इस प्रकार दर्शन विशुद्धताका व्याख्यान किया अब आगे अनुक्रमसे शेष भावनाओं को कहते हैं।

अपनी योग्यताके अनुसार मोक्षके कारणरूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र का आदर सत्कार करना तथा इन सम्यग्दर्शन आदि मोक्षके कारणोंको पालन करनेवाले गुरु आदिकोंका अपनी योग्यताके अनुसार आदर सत्कार करना अथवा कषाय नोकषायोंका त्याग कर देना विनयसंपन्नता है । अहिंसा आदि व्रतोंमें तथा उन व्रतोंका पालन वा रक्षा करनेवाले शीलोंमें अथवा क्रोधादि कषायों के त्याग करनेमें मन वचन कायकी निर्दोष प्रवृति होना शीलव्रतेष्वनतीचार है। भावार्थ—शील और व्रतोंका अतिचार रहित निर्दोष पालन करना शीलव्रतेष्वनतिचार कहलाता है। मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवल आदिको ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीतिसे आत्मतत्त्वके विषयभूत जीवादि पदार्थों का ज्ञान होना अथवा ज्ञान होनेके बाद ही उनकी अज्ञानताका दूर होना उस ज्ञानका फल है अथवा हितकी प्राप्ति अहितका परिहार और

सननोदनकरं, सम्यग्ज्ञानदानं पुनरनेकभवशतसहस्रदुःखोत्तरणकारणमतस्तत्त्रिविधाहाराभयज्ञानदानभेदेन यथाविधि प्रतिपाद्यमानं त्याग इत्युच्यते। शरीरमिदं दुःखकारणमनित्यमशुचि नास्य यथेष्टं भोगविधिना परिपोषो युक्तः, अशुच्यपीदं गुणरत्नसंचयोपकारीति विचिन्त्य विनिवृत्तविषयसुखाभिषंगस्य कार्यं प्रत्येतद्भृतकमिव नियुंजानस्य यथाशक्तिमार्गाविरोधकाय क्लेशानुष्ठानं तप इति। यथा भाण्डागारे समुत्थिते दहने तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारित्वात्तथानेकव्रतसमृद्धस्य मुनिगणस्य तपसः कुतश्चित्प्रत्यूहे समुपस्थिते

जो हिताहित दोनोंसे रहित है उसकी उपेक्षा करनो यही उसे ज्ञानका तत्कालीन फल है ऐसे ज्ञानकी भावना करनेमें सदा लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। संसारके दुःख शारीरिक और मानसिक आदि के भेदसे अनेक तरहके होते हैं तथा अपने इष्ट जनों का वियोग हो जाना, अनिष्ट पदार्थोंका संयोग हो जाना और इच्छानुसार पदार्थोंका न मिलना आदि अनेक तरहसे उत्पन्न होते हैं इसके सिवाय वे इस जीवको अत्यंत कष्ट देनेवाले हैं इसलिये ऐसे संसारके दुःखोंसे सदा डरते रहना संवेग कहलाता है। पात्रके लिये दिया हुआ आहारदान केवल उसीदिन उसको संतुष्ट करनेका कारण होता है। तथा अभयदान देनेसे उसके एक भवके दुःख दूर होते हैं और सम्यग्ज्ञानका दान देना अनेक भवोंके सैकडों हजारों दुःखों से पार कर देना है इसलिये विधिपूर्वक आहारदान अभयदान और ज्ञानदान देना त्याग कहा जाता है। यह शरीर अनेक दुःखोंका कारण है तथा अनित्य और अपवित्र है इसलिये इसकी इच्छानुसार भोगोपभोगके द्वारा इसको पुष्ट करना ठीक नहीं है। यद्यपि यह अपवित्र है तथापि रत्नत्रयरूप गुणोंके संचय करनेमें कुछ उपकार अवश्य करता है यही समझकर जिसने विषय सुखोंका संबंध बिल्कुल छोड दिया है और जो इस शरीरको सेवकके समान अपने आत्मकल्याण करने रूप कार्यमें सदा लगाये रहता

तत्संधारणं साधुसमाधिरिति,गुणवतःसाधुजनस्य संनिहिते दुःखे निरवद्येन विधिना तदपहरणं बहुप्रकारं वैयाव्रत्यमिति । अर्हदाचार्येषु केवलश्रुतज्ञानदिव्यनयनेषु परहितकरप्रवृत्तिषु स्वपरसमयविस्तरनिश्चयज्ञेषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च श्रुतदेवतासंनिधिगुणयोगदुरासदे मोक्षपदप्रासादारोहणसुरचितसोपानभूते भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिस्त्रिधा कल्प्यत इति । षडावश्यकक्रियाः, सामायिकं,चतुर्विंशतिस्तवः, वंदनं, प्रतिक्रमणं प्रत्याख्यानं, कायोत्सर्गश्चेति । तत्र सामायिकं सर्वसावद्ययोगनिवृत्तिलक्षणं, चित्तस्यैकत्वेन ज्ञानेन प्रणिधानं वा

है ऐसे साधुका अपनी शक्तिके अनुमार मोक्षमार्गका विरोध न ,करनेवाला उपवासादिक द्वारा काय क्लेश सहन करना तप है। जिस प्रकार किसी भांडागारमें (चीजोंसे भरे हुए कोठेमें) अग्नि लग जाय तो उसे लोग बुझा देते हैं क्योंकि उस अग्निके बुझा देनेसे बहुतसा उपकार होता है उसी प्रकार अनेक व्रत आदि गुणों से सुशोभित ऐसे मुनियों के समूहके लिये अथवा किसी एक तपस्वीके लिये यदि किसीकारण से उनके व्रतादिकों में कोई विघ्न आजाय तो उसको दूर करना साधु समाधि है। अनेक गुणों को धारण करनेवाले साधुओं को कोई दुःख उपस्थित हो जाने पर निर्दोष विधिसे उस दुखको दूर करना तथा अनेक तरहसे सेवा चाकरी करना वैयाव्रत्य है। केवल ज्ञानरूपी दिव्य नेत्रों को धारण करने वाले अरहंतमें विशुद्ध भावों से प्रेम रखना अर्हद्भक्ति है। श्रुतज्ञानरूपी दिव्य नेत्रों को धारण करनेवाले आचार्योंमें विशुद्ध भावों से प्रेम रखना आचार्य भक्ति है। जिनकी प्रवृत्ति सदा दूसरों का हित करनेवाली है और जो अपना आगम तथा परके आगमोंको विस्तृत रीतिसे जाननेके कारण निश्चयनयसे कहे जाने योग्य वास्तविक तत्त्वोंके जानकार हैं ऐसे उपाध्यायोंमें विशुद्ध भावोंसे अनुराग वा प्रेम रखना उपाध्याय भक्ति है तथा मोक्षपदरूपी राज भवनके चढनेके लिये जो सीढियोंके समान बनाया गया है और श्रुत देवताके समीप रहनेवाले गुणोंके

शत्रुमित्रमणिपाषाणसुवर्णमृत्तिकाजीवितमरणलाभादिषु रागद्वेषाभावो वेति । चतुर्विंशतिस्तवस्तीर्थंकरपुण्यगुणानुकीर्त्तनमिति । वंदना त्रिशुद्धिद्वयासनश्चतुः शिरावनतिद्वादशावर्तना चेति, तत्प्रपंचस्तूत्तरत्र वक्ष्यते। प्रतिक्रमणमतीते दोषनिवर्त्तनमिति । प्रत्याख्यानमनागतदोषापोहनमिति । कायोत्सर्गः परमितकालविषयशरीरममत्वनिवृत्तिरिति । एतासां षण्णां क्रियाणां यथाकालं प्रवर्त्तनमनोत्सुक्यमावश्यकापरिहाणिरिति । ज्ञानतपो जिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावनेति । प्रकृष्टं वचनं प्रवचनं, प्रकृष्टस्य वा वचनं प्रवचनं सिद्धांतो द्वादशांगमित्यनर्थान्तरं, तत्र भवा देशमहाव्रतिनः, असंयतसम्यग्दृष्टयश्च प्रवचनमित्युच्यते, तेष्वनुराग आकांक्षा ममेदं

संयोगसे जो अत्यंत दुरासद वा कठिन [कठिनतासे जानने योग्य] है ऐसे शास्त्रोंमें विशुद्ध भावोंसे अनुराग वा प्रेम रखना प्रवचन भक्ति कहलाती है। यह चारो ही प्रकारकी भक्ति मन वचन काय तीनोंसे करनी चाहिये। इन तीनोंसे करनेके कारण वह तीन प्रकारकी कही जाती है। सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, बंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक क्रियाएं कहलाती हैं। पापरूप समस्त योगोंका त्याग करना अथवा एक ज्ञानके द्वारा चित्तको निश्चल रखना अथवा शत्रु, मित्र, मणि, पाषाण, सुवर्ण, मिट्टी, जीना, मरना और लाभ अलाभ आदिमें रागद्वेषका त्याग करना सामायिक है। चौवीस तीर्थंकरोंके पुण्यरूप गुणोंका कीर्तन करना चतुर्विंशतिस्तव है। मन वचन कायको शुद्ध रख कर खडे हो कर अथवा बैठकर चारो दिशाओंमें चार शिरोनति करना तथा वारह आवर्त करना आदि बंदना है। इस बंदना को आगे विस्तारके साथ लिखेंगे। अतीत दोषोंको दूर करना प्रतिक्रमण है और आगे होने वाले दोषोंका परित्याग करना प्रत्याख्यान है। परिमित समयके लिये शरीरसे ममत्व छोडना कायोत्सर्ग है। इन छहो क्रियाओंको अपने यथायोग्य समय पर करना किसी तरहका प्रमाद न करना आवश्यकापरिहाणि है। ज्ञान तपश्चरण और जिनपूजा आदि

भावः प्रवचनवत्सलत्वं । तेनैकेनापि तीर्थंकरनामकर्मबंधो भवति । कुतः पंचमहाव्रताद्यागमार्थविषयस्योत्कृष्टानुरागस्य दर्शनविशुद्ध्या-दिपंचदशत्वविनाभावात् । एवं षोडश भावनाः स्युः । एकैकस्या भावनायामविनाभाविन्य इतरपंचदश भावनाः तेन सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि वा तीर्थंकरनामकर्मास्रवकारणानि भवंति । असंयतसम्यग्दृष्टित अपूर्वकरणस्य पदे-षट् सप्त भागा यावत् ।

इति श्रीचामुण्डरायप्रणीते चारित्रसारे षोडशभावनावर्णनं समाप्तं ।

क्रियाओंके द्वारा धर्मको प्रकाशित करना मार्ग प्रभावना है। सबसे उत्तम वचनोंको प्रवचन कहते हैं। अथवा सब से उत्तम पुरुषके वचनोंको प्रवचन कहते हैं, सिद्धांत अथवा द्वादशांग आदि उसीके नामांतर हैं,उन सिद्धांत शास्त्रोंके अनुसार होनेवाले देशव्रती महाव्रती और असंयत सम्यग्दृष्टियोंको भी प्रवचन कहते हैं। उन सबमें अनुराग रखना, आकांक्षा रखना, उनमें ममत्वबुद्धि रखना प्रवचन वत्सलत्व कहलाता है। इस एक ही प्रवचन वत्सलत्वसे तीर्थंकर नामकर्मका बंध हो जाता है क्यों कि पंच महाव्रत आदि शास्त्रोंमें कहे हुए पदार्थोंमें जो उत्कृष्ट अनुराग है वह दर्शनविशुद्धि आदि पंद्रहों भावनाओंसे अविनाभावी है। भावार्थ–प्रवचनवत्सलत्वके साथ साथ दर्शनविशुद्धि आदि पंद्रह भावनाएं अवश्य रहती हैं इसका भी कारण यह है कि विना उन पंद्रह भावनाओं के प्रवचनवत्सलत्व हो ही नहीं सकता। इस तरह ये सोलह भावनाएं हैं। इनमें प्रत्येक भावना शेष पंद्रहों भावनाओंकी अविनाभाविनी है अर्थात् जहां एक भावना रहती है वहां वाकीकी पंद्रह भी अवश्य रहती हैं क्योंकि शेष पंद्रहोंके विना कोई भी एक नहीं हो सकती। इसलिये अच्छी तरह चिंतवन की हुई ये सोलह भावनाएं पृथक् २ अथवा सब मिलकर तीर्थंकर नाम कर्मके आस्रव होनेमें कारण होती हैं। असंयत सम्यग्दृष्टीसे लेकर अपूर्व करण गुणस्थानके छह सात भाग तक तीर्थंकर नाम कर्मका बंध हो सकता है।

इस प्रकार श्रीचामुंडरायप्रणीत चारित्रसारमें सोलह भावनाओंका वर्णन समाप्त हुआ।

अनगारधर्मवर्णनम् ।

इदानीमनगारधर्म उच्यते, स चोत्तमक्षमामार्दवाऽऽर्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यभेदेन दशविधः। उत्तमग्रहणं ख्यातिपूजादिनिवृत्त्यर्थं, तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते, उत्तममार्दवमित्यादि। मोक्षमार्गे प्रवर्त्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं दशविधधर्माख्यान ॥

आगे अनगार धर्मका वर्णन किया जाता है—

अब आगे अनगार धर्म अर्थात् मुनियोंके धर्मका वर्णन करते हैं। वह मुनियोंका धर्म उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यके भेदसे दश प्रकारका है। इसमें जो उत्तम शब्द है वह अपनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा आदिकी निवृत्ति केलिये है अर्थात् यदि अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये या प्रसिद्ध होनेके लिये कोई पुरुष क्षमा धारण करे तो वह उत्तम क्षमा नहीं है, अथवा वह मुनियोंके धर्ममें गिना जाने योग्य उत्तम क्षमा नहीं है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, और उत्तम ब्रह्मचर्य इस प्रकार उत्तम शब्द प्रत्येकके साथ लगाना चाहिये। जो पुरुष मोक्षमार्गमें अपनी प्रवृत्ति कर रहा है उसका प्रमाद दूर करने के लिये इन दशप्रकारके धर्मोंका निरूपण किया जाता है।

जो भिक्षु वा मुनि तपश्चरणको बढानेका कारण और शरीरको ठहरानेका निमित्तकारण ऐसे निर्दोष आहारको ढूंढनेके लिये दूसरेके घर जाते हैं उन्हें देखकर यदि कोई दुष्ट लोग उन्हें गाली दें, बुरे वचन कहें, उनका अपमान करें वा ताडन करें अथवा शरीरका नाश करने के लिये ही (जानसे मार डालनेके लिये ही) तैयार हों, ये सब तथा इनके सिवाय और भी

तपोबृंहणकारणशरीरस्थितिनिमित्तं निरवद्याहारान्वेषणार्थं परगृहाण्युपसर्पतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशनोत्प्रहसनाऽवज्ञाऽनुताडनशरीरव्यापादनादीनां क्रोधोत्पत्तिनिमित्तानां सन्निधाने कालुष्याभावः क्षमेत्युच्यते। उत्तमक्षमाया व्रतशीलपरिरक्षणमिहामुत्र दुःखाभिष्वंगः सर्वस्य जगतः सन्मानसत्कारलाभप्रसिद्धयादिश्च गुणस्तत्प्रतिपक्षस्य क्रोधस्य धर्मार्थकाममोक्षप्रणाशनं दोष इति विचिन्त्य दातव्य क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावाभावानुचिंतनात्परैः प्रयुक्तस्य क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावानुचिंतनात्तावद्विद्यंते मय्येते दोषाः किमत्रासौ

क्रोध उत्पन्न करनेके निमित्त कारण मिल जायं तो भी जो मुनि अपने हृदयमें किसी तरहका संक्लेश परिणाम नहीं करते वह उनकी क्षमा कहलाती है। व्रत और शीलोंकी रक्षा करना, इस लोक और परलोकके दुःख दूर होना तथा समस्त संसारसे सन्मान और सत्कारकी प्राप्ति होना और समस्त संसारमें प्रसिद्ध होना आदि उत्तम क्षमाके गुण हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका नाश होना आदि उस उत्तम क्षमाके प्रतिपक्षी क्रोधके दोष हैं यही समझकर क्षमा धारण करना चाहिये। तथा क्रोधके जो जो निमित्त कारण हैं उनका अपने आत्मामें भाव (अस्तित्व) और अभाव चिंतवनकर क्षमा धारण करना चाहिये। दूसरे दुष्ट लोग जो क्रोध होनेका निमित्त कारण बतलाते हैं वह यदि अपने आत्मामें हो तो उसके अस्तित्वका चिंतवन करना चाहिये अर्थात् यह जो कहरहा है वे सब दोष मुझमें विद्यमान हैं फिर यह मिथ्या थोडे ही कहता है यही विचारकर उसे क्षमा कर देना चाहिये। यदि उसके कहे हुए दोष अपने आत्मामें न हों तो उनके अभावका चिंतवन करना चाहिये अर्थात् यह जिन दोषोंको कह रहा है वे मेरे आत्मामें नहीं हैं यह केवल अपने अज्ञानसे ऐसा कहता है यही समझकर उसे क्षमा कर देना चाहिये। अथवा उसके स्वभावको बालकोंके स्वभावके समान चिंतवन करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि परोक्ष, प्रत्यक्ष, आक्रोशन, ताडन, मारण और

अपि च बालस्वभाव-
मिथ्या ब्रवीतीति चांतव्यं । अभावचिंतनादपि नैते मयि विद्यन्ते दोषा अज्ञानादसौ ब्रवीतीति क्षमा कार्या । अपि च बालस्वभाव-
चिन्तनं प्रत्यक्षपरोक्षाक्रोशनताडनमारणधर्मभ्रंशनानामुत्तरोत्तररक्षणार्थं, तद्यथा—परोक्षमाक्रोशति बाले क्षन्तव्यमेवं स्वभावा हि बाला:
भवन्ति, दिष्ट्या च स मां परोक्षमाक्रोशति न च प्रत्यक्षमेतदपि बालेष्विति लाभो मन्तव्य एव । प्रत्यक्षमाक्रोशति सोढव्यं, विद्यत
एतद्बालेषु दिष्ट्या च मां प्रत्यक्षमाक्रोशति, यन्न ताडयत्येतदपि बालेष्विति लाभ एव मंतव्य: । ताडयत्यपि मर्षितव्यं, दिष्ट्या

धर्मभ्रंशन की उत्तरोत्तर रक्षा तो होती है। इनकी उत्तरोत्तर रक्षा किस प्रकार होती है यही वात आगे दिखलाते हैं—यदि कोई बालक परोक्षमें गाली दे अथवा बुरे वचन कहे तो उसे क्षमा करते ही हैं क्योंकि बालकोंका ऐसा स्वभाव होता ही है। यह मनुष्य भी मेरे अशुभ कर्मके उदयसे परोक्षमें गाली देता है या बुरे बचन कहता है प्रत्यक्षमें तो कुछ नहीं कहता, बालक तो प्रत्यक्षमें भी गाली देते या बुरे वचन कहते हैं। इसने प्रत्यक्षमें कुछ नहीं कहा यही मेरे लिये बडा भारी लाभ है। इस प्रकार समझ कर क्षमा कर देना चाहिये। यदि वह प्रत्यक्ष में ही आकर गाली दे या बुरे वचन कहे तो भी यह समझ कर उसे सहन करना चाहिये ऐसा करना भी बालकोंका स्वभाव है। यह मेरे ही अशुभ कर्मके उदयसे प्रत्यक्षमें आकर मुझे गाली देता है बालक तो मारते भी हैं यह मुझे मारता नहीं, बडा लाभ है। ऐसा मान कर उसे क्षमा कर देना चाहिये। यदि वह ताडन भी करे मारे भी तो यह विचार करना चाहिये कि मेरे ही अशुभ कर्मके उदयसे यह मुझे मारता या ताडन करता है, मुझे जानसे तो नहीं मारता, बालक तो जानसे भी मारडाला करते हैं इसने मुझे जानसे नहीं मारा यही मेरे लिये बडा लाभ है (यही समझ कर उसे क्षमा कर देना चाहिये) यदि वह प्राण भी ले, जानसे भी मारे तो भी क्षमा ही धारण करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि मेरे अशुभ कर्मके उदयसे

च मां ताडयति न प्राणैर्वियोजयति एतदपि बालेष्विति लाभ एव मन्तव्य.। प्राणैर्वियोजयत्यपि तितिक्षा कर्तव्या, दिष्ट्या च मां प्राणैर्वियोजयति मदधीनाद्धर्मान्न भ्रंशयतीति। किंचान्यन्ममैवापराधोऽयं यत्पुराऽऽचरितं तन्महद्दुष्कर्म तत्फलमिदमाक्रोशवचनादिनिमित्तमात्रं परोऽयमत्रेति सोढव्यमिति।

उत्तमजातिकुलरूपविज्ञानैश्वर्यश्रुतजपतपोलाभवीर्यस्यापि तत्कृतमदावेशाभावात्परप्रयुक्तपरिभवनिमित्ताभिमानाभावो मार्दवं मानर्निर्हरणमवगन्तव्यम्। मार्दवोपेतं गुरवोऽनुगृह्णंति, साधवोऽपि साधु मन्यन्ते। ततश्च सम्यग्ज्ञानादीनां पात्रं भवति, अतः,

यह मेरे प्राण लेता है मेरे आधीन जो धर्म है उससे मुझे भ्रष्ट तो नहीं करता। इन सब बातोंके सिवा उस साधुको यह भी चिंतवन करना चहिये कि यह अपराध तो मेरा ही है पहिले जन्ममें मैंने ऐसे ऐसे बडे भारी पाप कर्म किये थे उन्हींका यह फल है। ये बुरे वचन अथवा ताडन आदि तो केवल निमित्तमात्र है। दुःख तो केवल अपने कर्मके उदयसे होता है यह मनुष्य तो मेरे आत्मासे पर है इसलिये यह तो दुख दे ही नहीं सकता यही समझ कर दुखों को सहन करना चाहिये और क्षमाधारण करना चाहिये।

उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम विज्ञान, उत्तम श्रुतज्ञान, उत्तम जप, उत्तम तप, उत्तम लाभ और उत्तम वीर्य आदिकी प्राप्ति होने पर भी उनसे उत्पन्न होनेवाले मदका आवेश न होनेसे दूसरेके द्वारा किये हुए तिरस्कार आदिका निमित्त मिलने पर भी अभिमान न करना नम्रतासे रहना मार्दव है इसीका दूसरा नाम माननिर्हरण (अभिमानको मर्दन करना दूर करना) है। जो मनुष्य मार्दव गुणको धारण करता है उस पर गुरु भी अनुग्रह करते हैं और साधु लोग भी उसे श्रेष्ठ मानते हैं तथा ऐसा होनेसे अर्थात् गुरुका अनुग्रह होनेसे और साधुओंके द्वारा श्रेष्ठ माने जानेसे वह मोक्षके कारणभूत सम्यग्ज्ञान

स्वर्गापवर्गफलावाप्तिर्मानमलिनमनसि व्रतशीलानि नावतिष्ठन्ते, साधवश्चैनं परित्यजन्ति, तन्मूलाः सर्वा विपत्तय इति ।

योगस्य कायवाङ्मनोलक्षणस्यावक्रताऽऽर्जवमित्युच्यते । ऋजुहृदयमधिवसन्तो गुणा, मायाभावं नाश्रयन्ते, मायाविनो न विश्वसिति लोकाः, गर्हिता च गतिर्भवतीति ।

प्रकर्षप्राप्तलोभनिवृत्तिः शौचमित्युच्यते । शुच्याचारमिहापि सन्मानयन्ति सर्वे, विश्रंभणादयश्च गुणास्तमधितिष्ठन्ति । लोभभावनाक्रान्तहृदये नावकाशं लभन्ते गुणाः स च लोभो जीविताऽऽरोग्येन्द्रियोपभोगविषयभेदाच्चतुर्विधः, स्वपरविषयभावात्स प्रत्येकं द्विधा

आदिका उत्तम पात्र बन जाता है और सम्यग्ज्ञानादिके उत्तम पात्र हो जानेसे उसे शीघ्र ही स्वर्ग और मोक्ष फलकी प्राप्ति हो जाती है। इसके विपरीत जिसका हृदय अभिमानसे मलिन है उस के व्रत शील आदि कभी नहीं ठहर सकते, साधुलोग भी उसे छोड देते हैं और संसार की समस्त विपत्तियां अभिमानके ही कारण उत्पन्न होती हैं। इसीलिये मार्दव धर्म धारण करना श्रेष्ठ है।

मन वचन काय इन तीनों योगोंको सरल रखना छल कपट न करना आर्जव कहलाता है। जिसका हृदय सरल है उसमें अनेक गुण आकर निवास करते हैं तथा जिसके हृदयमें छल कपट है उसमें एक भी गुण नहीं ठहर सकता, छल कपट करनेवालेका संसारमें कोई भी विश्वास नहीं करता और परलोकमें भी उसे निंद्य गतिमें जन्म लेना पडता है। इसलिये आर्जव धर्मका पालन करना सबसे उत्तम है ।

अत्यंत लोभका त्याग कर देना लोभकी प्रकर्षता न रखना शौच है । जिसके आचरण पवित्र हैं उसका इस लोकमें भी सब लोग आदर सत्कार करते हैं और विश्वास आदि समस्त गुण आकर उसमें निवास करते हैं । जिसके हृदयमें लोभकी भावना भरी रहती है, उसके हृदयमें किसी

भिद्यते । स्वजीवितलोभः, परजीवितलोभः, स्वारोग्यलोभः, परारोग्यलोभः, स्वेन्द्रियलोभः, परेन्द्रियलोभः, स्वोपभोगलोभः; परोपभोगलोभश्चेति, अतस्तन्निवृत्तिलक्षणं शौचं चतुर्विधमिति ।

सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुर्वचनं सत्यमित्युच्यते । सत्यमद्धाचो दशविधः, नामरूपस्थापनाप्रतीत्यसंवृतिसंयोजनाजनपददेशभावसमयसत्यभेदेन । तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यासत्यप्यर्थे यद् व्यवहारार्थं संज्ञाकरणं तन्नामसत्यं, इन्द्र इत्यादि । यदर्थासन्निधानेऽपि

भी-गुणको जगह नही मिलती। वह लोभ जीवित आरोग्य इंद्रिय और उपभोगके विषयोंके भेदसे चार प्रकारका है तथा स्वविषय और परविषयके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद होते हैं जैसे स्वजीवित लोभ-अपने जीवित रहनेका लोभ करना,परजीवितलोभ-पुत्र पौत्र आदि परके जीवित रहनेका लोभ करना,स्वारोग्यलोभ—अपने आरोग्य रहनेका लोभ करना,परारोग्यलोभ—दूसरेके आरोग्य रहनेका लाभ करना,स्वेंद्रियलोभ—अपनी इंद्रियोंके बनीरहनेका लोभ,परेंद्रियलोभ-दूसरेकी इंद्रियों के बनी रहनेका लोभ, स्वोपभोगलोभ—अपनी भोगोपभोग सामग्रीके बनी रहनेका लोभ, परोपभोगलोभ—दूमरेकी भोगोपभोग सामग्रीके बनी रहनेका लोभ। इस प्रकार चार प्रकारका लोभ है इसलिये उसका त्याग करने रूप शौच भी चारही प्रकारका कहा जाता है ।

श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये उत्तम वचन कहना सत्य है। वह सत्य नाम, रूप, स्थापना, प्रतीत्य, संवृति, सयोजना, जनपद, देश, भाव, और समय सत्यके भेदसे दश प्रकारका है। सचेतन वा अचेतन पदार्थका चाहे वह अर्थ न भी निकलता हो तो भी केवल व्यवहार चलानेके लिये जो किसीकी संज्ञा रक्खी जाती है उसको नामसत्य कहते हैं। जैसे किसी पुरुषका अथवा किसी अचेतन पदार्थका केवल व्यवहारमें पहिचाननेकेलिये कोई इंद्र नाम रखले तो वह नामसत्य कहलाता है। पदार्थके उपस्थित न रहनेपर भी केवल उसके रूपको देखकर उस पदार्थका नाम कहना

रूपमात्रेणोच्यते तद्रूपसत्यं, यथा चित्रपुरुषादिषु असत्यपि चैतन्ययोगादावर्थे पुरुष इत्यादि। असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थं स्थापितं द्यूताक्षसारिकानिक्षेपादिषु तत्स्थापनासत्यं, चंद्रप्रभप्रतिमा इति। सादनादीनौपशमिकादीन् भावान् प्रतीत्यसत्यं, दीर्घोयं पुरुषस्ताल इत्यादि यल्लोकसंवृत्या गीतं वचस्तत्संवृतिसत्यं, यथा पृथिव्याद्यनेककारणत्वेऽपि सति पंकजातं पंकजमित्यादि। धूपचूर्णवासनानुलेपनप्रघर्षादिषु पद्ममकरहंसमसर्वतोभद्रक्रौंचव्यूहादिषु वाऽचेतनेतरद्रव्याणां यथाभागविधानं संनिवेशाविर्भावक यद्वचस्तत्संयोजनासत्यं।

रूपसत्य है जैसे किसी पुरुषके बनाये हुए चित्रमें यद्यपि चैतन्यका संयोग नहीं है तथापि उसे पुरुष कहना रूपसत्य है। पदार्थके नहीं होते हुये भी किसी कार्यके लिये उसकी स्थापना करना स्थापनासत्य है जैसे चंद्रप्रभकी प्रतिमामें चंद्रप्रभकी स्थापना, करना सादि अथवा परंपरागत अनादि जो औपशमिकादि भाव हैं उनकी अपेक्षासे वचन कहना प्रतीत्यसत्य है। जैसे औदयिक भावोंसे उत्पन्न हुए किसी लंबे पुरुषको "यह पुरुष लंबा है" यह ताडका वृक्ष बहुत लंबा है आदि कहना लोकमें रूढ शब्दोंको कहना संवृत्तिसत्य है। जैसे कमल, पृथिवी आदि अनेक कारणोंसे उत्पन्न होता है तथापि उसे केवल कीचडसे उत्पन्न होनेके कारण पंकज कहना संवृतिसत्य है। सुगंधित धूप, चूर्ण वासना और उवटन, लेप आदि द्रव्योंमें पडनेवाली चीजोंका अलग अलग विभाग कहना तथा पद्मव्यूह, मकरव्यूह हंसव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह और क्रौंचकव्यूह आदिकी रचनाका अनुक्रम कहना संयोजनासत्य कहलाता है। आर्य अनार्य आदिके भेदसे जो बत्तीस देश हैं उनमें धर्म अर्थ काम मोक्षको बतलानेवाले अलग अलग शब्द वा वचनोंको कहना जनपद सत्य है जैसे किसी देशमें राजा कहते हैं किसी देशमें राणा कहते हैं। गांव, नगर, राज, गण, पाखंड, जाति तथा कुल आदिके धर्मोंका उपदेश करनेवाले उनका स्वरूप बतलानेवाले वचनों का देशसत्य कहते हैं जैसे जो बाडसे घिरा हो उसे गांव कहते हैं। अल्प ज्ञानियोंके द्रव्योंके यथार्थ

द्वात्रिंशज्जनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकं यद्वचस्तज्जनपदसत्यं, राजाराणकमित्यादि । ग्रामनगरराजगणपाखंडजातिकुलादिधर्माणामुपदेशकं यद्वचस्तद्देशसत्यं, ग्रामो वृत्याऽऽवृत्त, इत्यादि । छद्मस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य संयतासंयतस्य वा स्वगुणपरिपालनार्थं प्रासुकमिदमप्रासुकमित्यादि यद्वचस्तद्भावसत्यं । प्रतिनियतषट्द्रव्यपर्यायाणामागमगम्यानां याथात्म्याऽऽविष्करणं यद्वचस्तत्समयसत्यं, समयोत्तरवृद्ध्या वालो युवा पल्योपम इत्यादि । सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः सर्वगुणसम्पदः, अनृताभिभाषिणं बन्धवोऽप्यवमन्यन्ते, मित्राणि च विरक्तभावमुपयान्ति, विषाग्न्युदकादीन्यप्येनं न सहन्ते, जिह्वाच्छेदसर्वस्वहरणादिव्यसनभाग्भवतीति ।

संयमो द्विधा—उपेक्षाऽपहृतभेदेन । तत्र देशकालविधानज्ञस्य परानुपरोधेनोत्कृष्टकायस्य कायवाङ्मनःकर्मयोगानां कृतनिग्रहस्य

स्वरूपका दर्शन नहीं होता है तथापि संयमी मुनि अथवा संयतासंयत श्रावक अपने गुणोंका पालन करनेके लिये 'यह प्रासुक है' यह अप्रासुक है, इत्यादि जो वचन कहते हैं उन्हें भावसत्य कहते हैं। शास्त्रोंसे ही जानने योग्य ऐसे प्रतिनियत छह द्रव्य और उनकी पर्यायोंका यथार्थ स्वरूप प्रगट करना समयसत्य है। जैसे उत्तरोत्तर समयोंकी वृद्धि होनेसे वालक युवा होता है। इतनेको पल्योपम कहते हैं। इस तरह दश प्रकारका सत्य है। सत्य वचनोंमें सब तरहके गुण और संपदाएं भरी रहती हैं और झूठ बोलने वालेका अपने सगे भाई भी तिरस्कार करते हैं, मित्र भी उससे विरक्त हो जाते हैं। विष अग्नि और जल आदि जड पदार्थ भी मिथ्या भाषण करनेवालेको सहन नहीं कर सकते तथा जीभ का काटा जाना और समस्त धनका हरण हो जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं।

संयम दो प्रकारका है—एक उपेक्षा संयम और दूसरा अपहृत संयम। जो मुनि देश और कालके विधानोंके जानकार हैं अन्य किसीकी रोक टोक न होनेसे जिनका शरीर अति उत्तम है, जो मन वचन कायके तीनो योगोंका निग्रह अच्छी तरह करते हैं और तीनो गुप्तियोंका पालन

त्रिगुप्तिगुप्तस्य रागद्वेषानभिष्वङ्गलक्षण उपेक्षासंयमः । अपहृतसंयमस्य समितयः कथ्यन्ते, ईर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपो-त्सर्गाः समितयः । तत्रैकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्द्विद्विद्विचतुर्विकल्पचतुर्दशजीवस्थानादिविधा-नवेदिनो मुनेर्धर्मार्थं प्रयतमानस्य सवितर्युदिते चक्षुषो विषयग्रहणसामर्थ्यमुपजनयतः मनुष्यहस्त्यश्वशकटगोकुलादिचरणपातोपहताव-श्यायप्रालेयमार्गेऽनन्यमनसः शनैर्न्यस्तपादस्य संकुचितावयवस्योत्सृष्टपार्श्वदृष्टेर्युगमात्रपूर्वनिरीक्षणावहितलोचनस्य स्थित्वा दिशो विलोकयतः पृथिव्याद्यारंभाभावादीर्यासमितिरित्याख्यायते । हितमितासंदिग्धाभिधानं भाषासमितिः । मोक्षपदप्रापणप्रधानफलं हितं,

अच्छी तरह करते हैं, ऐसे मुनियोंके राग द्वेषका अभाव होना उपेक्षा संयम है । अपहृत संयमी मुनिको समितियोंका पालन करना चाहिये । आगे उन्हीं समितियोंको कहते हैं—ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पांच समिति हैं संक्षेपसे जीवोंके चौदह भेद हैं स्थूल एकेंद्रिय पर्याप्तक, स्थूल एकेंद्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेंद्रियअपर्याप्तक ये चार तो एकेंद्रियके भेद, द्वींद्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक ये दो दोइंद्रियके भेद, त्रींद्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक ये दो त्रींद्रिय के भेद, चौइंद्रिय पर्याप्तक अपर्याप्तक ये दो चौइंद्रियके भेद, पंचेन्द्रिय सैनी पर्याप्तक अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय असैनी पर्याप्तक पंचेन्द्रिय असैनी अपर्याप्तक ये चार पंचेन्द्रिय के भेद ये इस प्रकार चौदह भेद हैं और ये सब अपने अपने नामकर्मके विशेष उदयसे प्राप्त होते हैं । जो मुनि इन चौदह जीव स्थानोंके भेदों को अच्छी तरह जानते हैं, जो केवल धर्मके लिये ही गमन करते हैं सो भी सूर्यके उदय होजाने पर तथा जिनके नेत्रोंमें अपने विषय ग्रहण करने की सामर्थ्य है वे ही गमन करते हैं । मनुष्य, हाथी घोडे गाडियों गाय भैंस आदिके खुरोंसे जिसकी ठंडक निकल गई है ऐसे ठंडे मार्गमें उसीमें अपना चित्त लगाकर धीरे धीरे अपने चरण रखते हुये शरीरको संकुचित कर अगल बगलसे दृष्टि हटाकर केवल आगेकी चार हाथ जमीन पर अपनी

तद्द्विविधं, स्वहितं, परहितं चेति । मितमनर्थकबहुप्रलपनरहितं । स्फुटार्थं व्यक्ताक्षरं वाऽसंदिग्धत्वं, । तस्याः प्रपंचो, मिथ्याभिधानासूयाप्रियसंभेदाल्पसारशंकितसंभ्रांतसकषायपरिहाससयुक्तासभ्यशपननिष्ठुरधर्मविरोधिदेशकालविरोध्यतिसंस्तवादिवाग्दोषविरहिताभिधानं अनगारस्य मोक्षैकप्रयोजनस्य प्राणिदयातत्परस्य कायस्थित्यर्थं प्राणयात्रानिमित्तं तपोबृंहणार्थं च चर्यानिमित्तं पर्यटतः शीलगुणसंयमादिकं संरक्षतः संसारशरीरभोगनिर्वेदत्रयं भावयतो दृष्टवस्तुयाथात्म्यस्वरूपं चिन्तयतो देशकालसारथ्यादिविशिष्टमगर्हितमभ्यव-

दृष्टि डालते हुये चलते हैं यदि किसी दूसरी ओर या सामने भी अधिक दूरतक देखने की आवश्यकता होती है तो खडे होकर देखते हैं । उनके इस प्रकार चलनेमें पृथ्वी आदिका कोई आरंभ नहीं होता इसलिये उसे ईर्यासमिति कहते हैं । हित मित और संदेहरहित वचनोंको भाषा समिति कहते हैं । मोक्ष पदकी प्राप्ति रूप जो प्रधान वा मुख्य फल मिलता है उसको हित कहते हैं । वह दो प्रकारका है—एक अपना हित करना और दूसरा अन्य लोगोंका हित करना । अनर्थक वचन न कहना तथा बहुतसा बकवाद न करना मित है । जिसका अर्थ स्पष्ट हो अक्षर साफ हों और कोई तरहका संदेह न हो वह संदेहरहित कहलाता है । मिथ्या वचन कहना किसीको ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले वा अप्रिय (बुरे) लगने वाले वचन कहना किसीके चित्तमें अंतर डालनेवाले, जिनका सार बहुत संक्षेपसे कहा गया है, जिनके सुननेसे शंका उत्पन्न हो जाय, भ्रम उत्पन्न हो जाय ऐसे वचन कहना, कषाय, और हंसीमिले हुए वचन कहना । असभ्य सौगंध और कठोरतासे वचन कहना, धर्मविरोधी देशविरोधी और कालविरोधी वचन कहना तथा किसीकी अधिक स्तुति करना आदि दोषोंसे रहित वचन कहना भाषा समितिका विस्तार है । मोक्ष प्राप्त करना ही जिनका एक मुख्य प्रयोजन है जो प्राणियोंकी दया करनेमें ही सदा तत्पर रहते हैं शरीरकी स्थितिकेलिये वा प्राणोंकी यात्राके लिये अथवा तपश्चरणकी वृद्धिके लिये जो

हरणं नवकोटिपरिशुद्धमेषणासमितिः। षट्जीवनिकायस्योपद्रव उपद्रवणं, अंगच्छेदनादिव्यापारो विद्रावणं, संतापजननं परितापनं प्राणिप्राणव्यपरोपणमारंभः, एवमुपद्रवणविद्रावणपरितापनारंभक्रियया निष्पन्नमन्नं स्वेन कृतं परेण कारितं वाऽनुमनितं वाऽधःकर्म (जनितं) तत्सेविनोऽनशनादितपास्यभ्रावकाशादियोगा वीरासनादियोगविशेषाश्च भिन्नभाजनभरितामृतवत्प्रक्षरन्ति, ततश्च तदभक्ष्यमिव परिहरतो भिक्षोः परकृतप्रशस्तप्रासुकाऽऽहारग्रहयोपि षट्चत्वारिंशद्दोषा भवन्ति। तद्यथा—षोडशविधा उद्गमदोषाः, षोडशविधा

चर्याकेलिये (आहारके लिये) बिहार करते हैं शील गुण और संयमादिकी रक्षा करते हैं संसार शरीर और भोग इन तीनोंसे उत्पन्न हुए वैराग्यका सदा चिंतवन करते रहते है और जो देखे हुये पदार्थों के यथार्थ स्वरूपका बिचार करते हैं ऐसे परिग्रहरहित मुनि देश काल आदिकी सामग्री सहित तथा नौकोटिविशुद्धियों सहित जो निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं उसको एषणा समिति कहते हैं। षट्कायके (छह प्रकारके) जीव समूहोंके लिये उपद्रव होना उपद्रवण है, जीवोंके अंग छेद आदि व्यापारको विद्रावण कहते हैं, जीवोंको संताप (मानसिक वा अंतरंग पीडा) उत्पन्न होनेको परितापन कहते हैं। प्राणियोंके प्राण नाश होनेको आरंभ कहते हैं। इसप्रकार उपद्रवण, विद्रावण, परितापन, आरंभ क्रियाओंके द्वारा जो आहार तैयार किया गया हो, जो अपने हाथसे किया है, दूसरेसे कराया हो अथवा करते हुये की अनुमोदना की हो, अथवा जो नीच कर्मोंसे (नीच कर्मोंके द्वारा की हुई कमाईसे) बनाया गया हो ऐसे आहारको ग्रहण करनेवाले मुनियों के उपवास आदि तपश्चरण, अभ्रावकाश आदि योग और वीरासन आदि विशेष योग सब फूटे वर्तनमें भरे हुए अमृतके समान निकल जाते हैं नष्ट हो जाते हैं। इसलिये मुनिराज ऐसे आहारको अभक्ष्यके समान त्याग कर देते हैं और दूसरेके द्वारा किया हुआ, प्रशस्त (निर्दोष) और प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं इस प्रकार प्रासुक और निर्दोष आहार ग्रहण करते हुए भी

उत्पादनदोषाः, दशविधा एषणादोषाः संयोजनाप्रमाणांगारधूमदोषाश्चत्वारः, एतैर्दोषैः परिवर्जितमाहारग्रहणमेषणासमितिरिति ।

तथा चोक्तमपरग्रंथे—अद्धाकम्मुद्देसिय अज्झोवज्झेय पूदि मिस्सेय / ठविदे वलि पाहुडिय पादुक्कारेय कीदेय ॥

पामिच्छे परियट्टे अभिहडमुभिन्न मालमारोहे । अच्छिज्जे अखिसिद्धे उग्गमदोसो दु सोलसमो ॥

उनके छयालीस दोष होते हैं—सोलह प्रकारके उद्गमदोष, सोलह प्रकारके उत्पादन दोष, दश प्रकारके एषणा दोष और संयोजना, अप्रमाण, अंगार तथा धूम चार ये दोष इस प्रकार छयालीस दोष होते हैं। इन सब दोषोंको टालकर आहार ग्रहण करना एषणा समिति है। यही बात किसी दूसरे ग्रंथमें लिखी है—यथा—अद्धा कम्मुद्देसिय इत्यादि ।

इन गाथाओंमें सोलह उद्गम दोष बतलाये हैं जिन्हें टाल कर मुनि आहार लेते हैं। इन के सिवाय एक अधः कर्म दोष बतलाया है जो छयालीस दोषोंसे बाहर है और सबसे बडा है आगे उन्हींको अनुक्रमसे बतलाते हैं । जिस आहारके तैयार करनेमें गृहस्थके आश्रय रहने वाले पांचों पाप (चक्की, उखली, चूल, बुहारी और पानीमें त्रस जीवोंकी हिंसा) स्वयं करने पडे हों, अथवा निकृष्ट व्यापार किया गया हो वा छहों प्रकारके जीवोंके समूहकी हिंसा की गई हो ऐसे आहारको ग्रहण करना अधः कर्म दोष है यह दोष छयालीस दोषों से अलग है। खास मुनिके लिये तैयार किया हुआ भोजन देना उद्दिष्ट दोष है । मुनिको देख कर अधिक भोजन बनाना अध्यधि दोष है। प्रासुक आहारमें अप्रासुक वस्तु मिला देना अथवा अप्रासुक मिला हुआ आहार देना पूतिदोष है। असंयमियोंके साथ ही मुनियोंको आहार देना मिश्र दोष है।

अद्धाकम्म गृहस्थाश्रित पञ्चशूनोपेतं निकृष्टव्यापारं षट्जीवनिकायवधकरं षट्चत्वारिंशद्दोषवाह्यं उद्देसिय उद्देश्य देयं । अज्झोवज्झेय यति दृष्ट्वाऽविकपाकप्रवृत्तिः । पूदि अप्रासुकमिश्रिताहारः । मिस्सेय असंयतैः सह भोजनं । ठविदे पाकभाजनादन्यत्र निक्षिप्तं । बलि यक्षादिदत्तनैवेद्यशेषं, पाहुडिय कालं परावृत्त्य दत्तं । पादुकारेय संक्रमणप्रकाशनरूपं । कीदे गे-क्रीत्वा नीतं पामिच्छे उद्धारानीतं । परियट्टे परावृत्त्याऽऽनीतं । अभिहडं देशान्तरागतवस्तु । उब्भिभिन्न उद्भिन्नं बंधनापनयनं । मालारोहण मालामारुह्य दत्तं । अच्छिज्जे भीत्वा दत्तं अणिसिध्दे निःश्रेण्यादिकमवरुह्य दत्तं । एते षोडशोद्गमदोषाः भवन्ति ।

पकानेके वर्तनमें निकाल कर किसी दूसरी जगह रख देना और फिर वहांसे मुनियों को देना स्थापित दोष है । यश आदिके लिये चढाये हुए नैवेद्यमेंसे जो बाकी बच रहा है उसे मुनियों को देना बलि नामका दोष है । नियत किये हुए समयको बदल कर दूसरे समयमें भोजन देना प्राभृत दोष है । भोजनके पात्रों को एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें ले जाकर भोजन देना प्रादुष्कार दोष है । खरीद कर लाया हुआ भोजन देना क्रीत दोष है । उधार मांगकर लाया हुआ भोजन देना प्रामृष्य (वा ऋण) दोष है । किसी एक भोजनके बदले दूसरा भोजन लाकर देना परावर्तिक दोष है । किसी दूसरे देशसे लाया हुआ भोजन देना अभिहृत दोष है । उघाड कर अथवा उघाडा हुआ भोजन देना उद्भिन्न दोष है । साधुओंको सीढी चढाकर भोजन देना मालारोहण दोष है । किसीसे डरकर आहार देना अच्छेद्य दोष है । साधुओंको सीढी द्वारा नीची जमीन पर उतारकर भोजन देना अनिसृष्ट दोष है । इस प्रकार ये सोलह उद्गम दोष कहलाते हैं ।

—⋙✻⋘—

धादीदूदणिमित्ते आजीवे वणिवगे तहेव तिगिंच्छे। कोधी माणी मायी लोभी य हवन्ति दस एदे ॥
पुव्वी पच्छा संथुदि विज्जा मंतेय चुण्ण जोगे। उप्पादणा य दोसा सोलसमे मूलकम्मे य ॥

धादी धात्रिका। दूद लेखादिनेता। निमित्तं निमित्तज्ञानं। आजीवे जीविका। वणिवगे दातुरनुकूलवचनं। तिगिंछे वैद्यकशास्त्रं। कोधी। मानी। मायावी। लोभी। पुव्वी दानग्रहणात्पूर्वस्तुतिः। पच्छा दानं गृहीत्वा पश्चात्स्तवनं। विज्जा आकाशगमनादि। मंतेय मंत्रसर्पादिविषापहारः, चुण्णजोगेय तनुसंस्कारहेतुसुगंधिद्रव्यरजः। मूलकम्मेय वशीकरणं। एते षोडशोत्पादनदोषा भवन्ति।

कोइ साधु किसीके यहां जाकर बच्चोंके संभालने आदिका उपदेश देकर आहार ग्रहण करे तो उसका वह धात्री दोष गिना जाता है। यदि कोई साधु किसी दूसरे गांवसे किसी के संबंधीके समाचार सुनावे या पत्रादि लाकर दे और फिर भोजन करे तो दूत नामका दोष है। निमित्तोंके द्वारा कुछ आगे का पिछला हाल बतलाकर आहार करे तो निमित्त दोष है। अपनी जीविकाकी उत्तमता बतलाकर आहार करना आजीवक दोष है दाताके अनुकूल वचन कहकर आहार लेना वनीपक दोष है। वैद्यक शास्त्रके अनुसार चिकित्साका उपदेश देकर आहार लेना चिकित्सा दोष है। क्रोध दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना क्रोध दोष है। अभिमान दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना मान दोष है। माया वा छलकपट कर आहार उत्पन्न कराना माया दोष है और लोभ दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना लोभ दोष है। आहार ग्रहण करनेके पहिले उसकी स्तुति करना पूर्व स्तुति दोष है। आहार ग्रहण करनेके पीछे स्तुति करना पश्चात्स्तुति दोष है। आकाशगमन आदिकी विद्या देकर आहार उत्पन्न कराना विद्या दोष है। सर्प आदिके विषके दूर करने का मंत्र देकर आहार उत्पन्न कराना मंत्रोत्पादन दोष है। शरीरके संस्कारके कारण ऐसे सुगंधित द्रव्योंके चूर्णका उपदेश देकर आहार उत्पन्न कराना

संकिश सन्दिह्यमानं । मक्खिदा तैलाद्यभ्यक्तं । णिक्खित्तदा अप्रासुकोपरिस्थापितं । पिहिय सचित्तादिपरिस्थापितं । साहरणा झटिति महणं । दायग सदोपदाता । उम्मिस्से अप्रासुकमिश्रं । अपरिणद अविध्वस्तं । लित्ता खटिकादिलिप्तं छोडिद त्यक्त्वाऽऽदिभोजनं । एते दशैषणादोषाः ।

संयोयणा स्वादनिमित्तं शीतोष्णभक्तपानादिमिश्रणं । अप्पमाणं मात्राधिक्यं । इंगाल सगृध्दिभोजनं, धूम निंदयन् भुंक्ते । एतेऽप्येषणादोषा भवन्ति ।

एतैः षट्चत्वारिंशद्दोषैः परिवर्जितैषणासमितिर्भवति ।

चूर्णयोग वा चूर्णोत्पादन दोष है। वशीकरणका उपदेश देकर आहार उत्पन्न कराना मूलकर्म दोष है। ये सोलह उत्पादन दोष कहलाते हैं।

जिस भोजनमें किसी तरहका संदेह उत्पन्न हो जाय उसको ग्रहण करना शंकित दोष है। यदि दाताके हाथ पैर वा वर्तनोंमें तैल घी आदिका चिकनापन लगा हो तो म्रक्षित दोष है। अप्रासुकके ऊपर रक्खे हुये आहारको ग्रहण करना निक्षिप्त दोष है। सचित्त से ढके हुए आहारको ग्रहण करना पिहित दोष है। यदि दाता वर्तन वस्त्र आदिको शीघ्रताके साथ खींच ले और तो भी साधु आहार ग्रहण करे तो साहरण दोष है। यदि दातामें कोई दोष हो और फिर भी साधु आहार ग्रहण कर ले तो दायक दोष है। अप्रासुक मिला हुआ आहार ग्रहण करना उन्मिश्र दोष है। जिस जल आदिकमें कोई परिणमन न हुआ हो, अविध्वस्त हो उसे ग्रहण करना अपरिणत दोष है। यदि हाथ वा वर्तनमें खडी आदि अप्रासुक पदार्थ लगा हो और उसीसे दिया हुआ आहार ग्रहण करे तो लिप्त दोष है छोडा वा गिरा हुआ आहार ग्रहण करना परित्यक्त दोष है। ये दश आहारके दोष कहलाते हैं।

अपने स्वादकेलिये ठंडा और गर्म अन्न पानी आदि मिलाना संयोजना दोष है।

नैःसंगिकीं चर्यामातिष्ठमानस्य पात्रग्रहणे सति तत्संरक्षणादिकृतो दोषः प्रसज्यते । कपालमन्यद् वा भाजनमादाय पर्यटतो भिक्षो-दैन्यमासज्यते । गृहिजनानीतमपि भाजनं न सर्वत्र सुलभं तत्प्रक्षालनादिविधौ च दुःपरिहारः पापलेपः । स्वभाजनेन देशान्तरं नीत्वा भोजने चाशानुबन्धनं स्यात् स्वपूर्वविशिष्टभाजनाधिकगुणासंभवाच्च, न केनचिद् भुंजानस्य दैन्यं स्यात् ततो निःसंगस्य निष्परिग्रहस्य

मात्रासे अधिक आहार लेना अप्रमाण दोष है। अत्यंत लपटताके साथ आहार ग्रहण करना अंगार दोष है। भोजनकी निंदा करते हुए आहार ग्रहण करना धूम्र दोष है। ये चार भी एषणा वा आहारके दोष हैं। इन ऊपर कहे हुये छयालीस दोषों से रहित एषणा समिति होती है।

जिस मुनिने सबतरहके परिग्रहों का त्याग कर दिया है और निःसंग अवस्था धारण की है। वह यदि भोजनकेलिए पात्र (वर्तन) रक्खे तो उसकी रक्षा करना आदि अनेक दोष आते हैं। यदि वह मुनि कपाल वा अन्य कोई वर्तन लेकर भिक्षाकेलिये फिरेगा तो उसमें दीनता का दोष आवेगा। कदाचित् यह कहा जाय कि भोजनके समय गृहस्थ लोग कोई भी वर्तन लाकर देदें उसमें उसे भोजन कर लेना चाहिये सोभी ठीक नहीं है क्योंकि इसप्रकार सब जगह वर्तन नहीं मिल सकते, दूसरे उसका मांजने धोने आदिमें पाप लगेगा ही और उस पाप को वह किसी भी तरह बचा नहीं सकेगा। यदि वह अपना वर्तन लेकर किसी दूसरे देशमें जायगा तो उसको भोजनमें आशा लगी ही रहेगी तथा अपने पहिलेके विशेष वर्तनमें अधिक गुणकी संभावना होनेसे मोह उत्पन्न होता ही रहेगा।

यदि किसीके यहां आहारका योग न मिला तो उसे दीनता धारण करनी पडेगी इसलिये जो मुनि संग और परिग्रह रहित है उसको पाणिपुट (करपात्र-दोनो हाथोकी हथेली) रूप वर्तनके सिवाय और किसी वर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। अतएव जो मुनि अपने

भिक्षोः स्वकं ...नान्यद्विशिष्टमस्ति तस्मात्स्वायत्तेन पाणिपुटेन निराबाधे देशे निरालंबचतुरंगुलान्तरसमपादाभ्यां स्थित्वा परीक्ष्य भुञ्जानस्य निभृतस्य तद्गतदोषाभावः। धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रमृज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणसमितिः। स्थावराणां जंगमानां च जीवानामविरोधेनांगमलनिर्हरणं शरीरस्य च स्थापनमुत्सर्गसमितिः। एवं गमनभाषणाभ्यवहरणग्रहणनिक्षेपोत्सर्गलक्षणपंचसमितिविधानेऽप्रमत्तानां तत्प्रणालिकाप्रसूतकर्माऽभावान्निभृतानां संवरः सिद्धयति।

स्वाधीन ऐसे करपात्रमें ही भोजन करते हैं तथा जिसमें कोई किसी तरह की बाधा न आवे ऐसे स्थान वा देशमें ही भोजन करते हैं। विना किसीके सहारे दोनो पैरोंमें चार अंगुलका अन्तर रखते हुए खडे होकर तथा परीक्षाकर आहार लेते हैं, उन्हीके आहार संबंधी दोषोंका अभाव हो सकता है। इस प्रकार निर्दोष आहार लेना एषणा समिति है। जो पदार्थ धर्मके विरोधी नहीं हैं जिनके उठाने रखनेमें किसीको रोक टोक नहीं है और जो ज्ञान चारित्र आदिके साधन हैं ऐसे शास्त्र कमंडलु आदि पदार्थोंको देखकर तथा शोध कर उठाना रखना और अपनी सव प्रवृत्ति ऐसी ही करना जिसमें किसी जीवको बाधा न होसके उसको आदान निक्षेपण समिति कहते हैं। जिसमें स्थावर और जंगम (त्रस) जीवोंको किसी तरहका विरोध न आवे किसीको बाधा न आवे इस प्रकार अपने शरीर के मलमूत्र दूर करना अथवा अपने शरीर को स्थापन करना (बैठना उठना) उत्सर्ग समिति है। इस प्रकार गमन (ईर्या समिति) भाषण (भाषा समिति) अभ्यवहरण (एषणा समिति) ग्रहणनिक्षेप (आदान निक्षेपण) और उत्सर्ग ये पांच समितियां हैं इन पांचों समितियोंके पालनेमें अप्रमत्त मुनियोंके मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा कर्म नहीं आते इसलिये उन मुनियोंको सहज ही संवर हो जाता है।

इस प्रकार ईर्या आदि समितियोंको पालन करनेवाले मुनियोंको उन समितियोंकी

एषणीयमिमित्यादिषु वर्तमानस्य मुनेस्तत्प्रपालनार्थं प्राणीन्द्रियपरिहारोऽपहृतसंयमः एकेन्द्रियादिप्राणिपीडापरिहारः प्राणसंयमः। इन्द्रियादिष्वर्थेषु रागानभिष्वंग इन्द्रियसंयमः। स चापहृतसंयमस्त्रिविधः, उत्कृष्टो मध्यमो जघन्यश्चेति ॥तत्र प्रासुकवसत्याहार मात्रबाह्यसाधनस्य स्वाधीनेतरज्ञानचरणकरणस्य बाह्यजन्तूपनिपाते आत्मानं ततोऽपहृत्य जीवान् परिपालयत उत्कृष्टः। मृदुना प्रमृज्य जन्तून्परिहरतो मध्यमः, उपकरणान्तरेच्छया जघन्यः।

रक्षा करनेके लिये प्राणिपरिहार और इंद्रिय परिहार नामका अपहृत संयम धारण करना चाहिये। एकेंद्रिय आदि जीवोंकी पीडा दूर करना, उनको पीडा देनेका त्याग करना, प्राणिसंयम है तथा इंद्रियोंके विषयभूत पदार्थोंमें राग नही करना इंद्रिय संयम है। इस प्रकारका यह अपहृत संयम उत्कृष्ट मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन तरहका है, जो मुनि वसतिका और आहार इन दोनों बाह्य साधनोंको प्रासुक ग्रहण करते हैं तथा स्वाधीन वा पराधीन दोनों प्रकार के ज्ञान चारित्रको पालन करते हैं ऐसे मुनि बाहरके छोटे बडे कीडे मकोडे आदि जीवोंके मिलने पर उस देश वा स्थानसे अपने आत्माको हटाकर (अपने आप हटकर) उन जीवोंकी रक्षा करते हैं उसको उत्कृष्ट संयम कहते हैं। तथा जो मुनि ऐसे जीवोंके मिलनेपर पीछी आदि कोमल उपकरणसे देख शोधकर उन जीवोंको हटादेते हैं वह मध्यम संयम है और जो कोमल उपकरणके सिवाय किसीभी अन्य उपकरणसे उन जीवोंको हटानेकी इच्छा करते हैं उसे जघन्य संयम कहते हैं।

उस अपहृत संयमको पालन करनेके लिये—उसकी रक्षा करनेके लिये आठ शुद्धियोंका उपदेश दिया गया है। आगे उन्हीं शुद्धियोंको बतलाते हैं—भावशुद्धि कायशुद्धि विनयशुद्धि ईर्यापथशुद्धि भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापना शुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि ये आठ शुद्धियां हैं।

तस्याप्रहृतसंयमस्य प्रतिपालनार्थं शुद्ध्यष्टकोपदेशः। तद्यथा-अष्टौ शुद्धयः। भावशुद्धिः, कायशुद्धिः, विनयशुद्धिः, ईर्यापथशुद्धिः, भिक्षाशुद्धिः, प्रतिष्ठापनाशुद्धिः, शयनासनशुद्धिः, वाक्यशुद्धिश्चेति। तत्र भावशुद्धिः, कर्मक्षयोपशमजनिता मोक्षमार्गरुच्याहितप्रसादा रागाद्युपप्लवरहिता, तस्यां सत्यामाचारः प्रकाशते परिशुद्धभित्तिगतचित्रकर्मवत्।

कायशुद्धिर्निरावरणा निरस्तसंस्कारा यथाजातमलधारिणी निराकृतांगविकारा सर्वत्र प्रयत्नवृत्तिः प्रशममूर्तिमिव प्रदर्शयन्तीतस्यां सत्यां न स्वतोऽन्यस्य भयमुपजायते नाप्यन्यतः स्वस्य। विनयशुद्धिरर्हदादिषु परमगुरुषु यथाऽर्हपूजाप्रवणा ज्ञानादिषु च यथाविधिभक्तियुक्ता गुरोः सर्वत्रानुकूलवृत्तिः प्रश्नस्वाध्यायवाचनकथाविज्ञापनादिषु प्रतिपत्तिकुशला देशकालभावावबोधनिपुणाऽऽचार्यानुमतचारिणी तन्मूलाः सर्वसंपदः सैव भूषा पुरुषस्य सैव नौः संसारसमुद्रोत्तरणे। ईर्यापथशुद्धिर्नानाविधजीवस्थानां योनीनामाश्रयाणामेव बोधा-

कर्मोंके क्षयोपशम होनेके कारण जो मोक्ष मार्गमें रुचि वा श्रद्धा होती है और उस श्रद्धा—के कारण जो आत्मामें प्रसन्नता वा स्वच्छता निर्मलता होती है जो कि राग द्वेष आदि सब उपद्रवोंसे रहित होती है उसको भाव शुद्धि कहते हैं। जिस प्रकार दीवाल शुद्ध होनेसे ही उस पर बनाया हुआ चित्र प्रकाशित होता है उसी प्रकार उस भाव शुद्धिके होनेसे ही आचार वा चारित्र प्रकाशित होता है। जिसके शरीरपर कोई आवरण वा वस्त्रादिक नहीं है जिसके संस्कार सब त्याग दिये गये हैं, जिसके अंगोंके विकार छोड दिये गये हैं, जिसकी प्रवृत्ति सब जगह बडे प्रयत्नसे की जाती है जो शांतमूर्तिके समान दिखाई पडता है और जो उत्पन्न हुये के समान है ऐसे शरीर को धारण करना काय-शुद्धि है। ऐसी काय शुद्धिके होनेपर न तो अपनेसे किसी दूसरे को भय होता है। और न किसी दूसरेसे अपने को भय होता है अरहंत आदि पांचों परमेष्ठियोंकी यथायोग्य पूजा और विनय करना, ज्ञानादिक की विनय करना अर्थात् विधि और भक्ति पूर्वक सब कार्योंमें सब जगह गुरुके अनुकूल प्रवृत्ति रखना, प्रश्न स्वाध्याय वाचना और कथा कहना आदि कार्योंके करनेमें कुशलता रखना देशका ज्ञान, समयका ज्ञान

उज्जनितप्रयत्नपरिहृतजन्तुपीडा ज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशनिरीक्षितदेशगामिनी द्रुतविलम्बितसंभ्रांतविस्मितलीलाविकारा दिग्दोषविरहितगमना तस्यां सत्यां संयमः प्रतिष्ठितो भवति विभव इव सुनीतौ भिक्षाशुद्धिः परीक्षितोभयप्रचारा प्रमृष्टपूर्वापरस्वांगदेशविधाना ऽऽचारसूत्रोक्तकालदेशप्रकृतिप्रतिपत्तिकुशला लाभालाभमानावमानसमानमनोवृत्तिः गीतनृत्तप्रसूतिकामृतकसुरापण्यांगनापापकर्मदीनानाथदानशालायजन-

और भावके ज्ञानमें निपुणता रखना तथा सदा आचार्य की आज्ञानुसार चलना विनयशुद्धि है। यह विनय शुद्धि ही सब तरह की संपदाओंकी मुल कारण है, यही पुरुषके लिये आभूषण है और यही संसाररूपी महासागरसे पार करदेनेके लिये नाव है।

अनेक प्रकारके जीवोंके स्थान जीवोंकी योनियां और जीवोंके आधारभूत आश्रयोंका ज्ञान होनेसे जिसमें जीवोंकी पीडा दूर करनेका प्रयत्न किया जा रहा है और ज्ञान सूर्य तथा अपनी इन्द्रियोंके प्रकाशसे सब जगह देखकर गमन किया जाता है तथा जल्दी, धीरे, संभ्रम करना, आश्चर्य करना, लीला विकार और दिशाओंका अवलोकन आदि दोषोंसे रहित जो गमन किया जाता है उसको ईर्यापथशुद्धि कहते हैं। जिसप्रकार सुनीति पूर्वक चलनेमें विभव ठहरता है उसीप्रकार ईर्यापथशुद्धिके रहते हुए ही संयम ठहरता है। आगे भिक्षा शुद्धि कहते हैं—जिसमें बाह्य अंतरंग दोनों प्रवृतियोंकी परीक्षा कीगई है, जिसमें दाताके शरीरकी शुद्धि तथा देशकी शुद्धि आदि सब विधियें की गई हैं, आचारसूत्रोंमें कहे हुए काल देश और प्रकृतिके अनुसार जिसमें नवधा भक्तिकी कुशलता रक्खी गई है, भिक्षाके मिलने न मिलनेमें तथा मान और अपमान होनेमें जिसमें अपने मनकी प्रवृत्ति समान रक्खी गई है, जिस भिक्षामें गीत नृत्य होनेवाले घर, जिसमें प्रसूति हुई हो अथवा कोई मरगया हो, जिसमें शराब बेची जाती हो, जो वेश्याका घर हो, अथवा जिसमें और कोई पापकर्म होता हो, जो दीन

सार

विवाहादिमंगलगेहपरिवर्जनपरा चन्द्रगतिरिव हीनाधिकगृहविशिष्टोपस्थाना लोकगर्हितकुलपरिवर्जनोपलक्षिता दीनवृत्तिविगमा प्रासुका-ऽऽहारगवेषणाप्रणिधानाऽऽगमविहितनिरवद्याशनपरिप्राप्तप्राणयात्राफला तत्प्रतिबद्धा हि चरणसंपद्गुणा संसदिव साधुजनसेवानिबंधना सा लाभालाभयोः सविरसयोश्च सममन्तोपवद्भिर्भिक्षेति भाष्यते। भिक्षाशुद्धिपरस्य मुनेरशनं पंचविधं भवति, गोचाराक्षम्रक्षणोदराग्निप्रशमनभ्रमराहारश्वभ्रपूरणनामभेदेन यथा सलीलसालंकारयुवतिभिरुपनीयमानघासे गौर्न तदंगगतसौन्दर्यनिरीक्षणपरस्तृणमेवाऽत्ति

का घर हो, अनाथका घर हो, जो दानशाला हो, यज्ञादि करनेका घर हो अथवा जिसमें विवाह आदि मंगलकार्य हों ऐसे घर छोड दिये जाते हों, चन्द्रमाकी गतिके समान जिसमें छोटे बड़े सब घरोंमें प्रवेश करना पडता हो, जो कुल वा घर लोक में निंदित गिने जाते हैं वे जिसमें छोड दिये जाते हों जिसमें अपनी दीनवृत्ति धारण न करनी पडती हो, और उदासीनता पूर्वक प्रासुक आहार ही ढूंढा जाता हो और शास्त्रोंमें कहे हुए निर्दोष भोजनके द्वारा प्राणोंकी यात्रा करना ही जिसका फल समझा जाता हो वह लाभ अलाभ (भोजनका मिलना न मिलना इन दोनोंमें) तथा सरस और विरस (रससहित वा नीरस) में समान संतोष रखनेवाले मुनियोंकी भिक्षा कहलाती है। ऐसी भिक्षासे ही चारित्र रूपी संपदा और गुण ठहर सकते हैं और ऐसी भिक्षा ही संपदाके समान साधु लोगोंकी सेवा करनेका कारण होती है। ऐसी भिक्षाकी शुद्धि रखना भिक्षाशुद्धि कहलाती है।

भिक्षा शुद्धिमें सदा तत्पर रहनेवाले मुनियोंका आहार पांच प्रकारका है और गोचार अक्षम्रक्षण, उदराग्निप्रशमन, भ्रमराहार, श्वभ्र पूरण ये उसके नाम हैं जिसप्रकार गायको यदि कोई युवती लीलापूर्वक आभूषण पहिनकर घास डालनेको आवे तो भी गाय उस युवतीकी सुन्दरता नहीं देखती किंतु घास खानेपर ही अपना लक्ष्य रखती है तथा जिस प्रकार वह गाय अनेक देशकी

यथा वा तृणोलपं नानादेशोत्थं यथालाभमभ्यवहरति, न योजनासंपदमपेक्षते तथा भिक्षुरपि भिक्षापरिवेषकजनमृदुललिततनुरूपवेषाभिलाषादिलोकननिरुत्सुकः शुष्कद्रवाहारयोजनाविशेषं चानवेक्षमाणो यथाऽऽगतमश्नातीति गोरिव चारो 'गोचार' इति व्यपदिश्यते तथा गवेषणेति च। यथा शकटीं रत्नभारपूर्णां येन केनचित्स्नेहेनाक्तिलेपं कृत्वाऽभिलषितदेशान्तरं वणिगुपनयति तथा मुनिरपि गुणरत्नभरितां तनुशकटीमनवद्यभिक्षाऽऽयुरक्षम्रक्षणेनाभिप्रेतसमाधिपत्तनं प्रापयतीति 'अक्षम्रक्षण' मिति च नाम रूढं। यथा भांडागारे समुत्थितमनलं शुचिनाऽशुचिना वा वारिणा प्रशमयति गृही तथा यथालब्धेन यतिरप्युदराग्निं सरसेन विरसेन वाऽऽहारेण प्रशमयतीत्युदराग्निप्रशमनमिति च निरुच्यते। दातृजनबाधया विना कुशलो मुनिर्भ्रमरवदाहरतीति भ्रमराहार इत्यपि परिभाष्यते। येन केन-

घास लता अदिको खाती है और जैसी मिलती है जितनी मिलती है उसे ही खाती है वह किस तरह डाली गई है किसने डाली है आदि बातोंपर कुछ ध्यान नहीं रखता उसी प्रकार वह मुनि भी भिक्षा देनेवाले पुरुषों की कोमलता, सुन्दरता, सुन्दरताके अनुसार वेष और अभिलाषा आदिके देखनेमें कभी इच्छा नहीं रखते और न सूखा पतला आदि आहार की विशेष योजना को देखते हैं और जो सामने आजाता है उसे ही खालेते हैं इसलिए गायके समान चरनेको-भोजन करनेको गोचार कहते हैं। मुनि लोग गोचारके समानही आहार ढूंढा करते हैं। जिस प्रकार कोई वैश्य रत्नों से भरी हुई गाडीको घी तेल आदि किसी तरहकी चिकनाहट लगा कर धुरी पहियोंको ठीककर अपने लेजाने योग्य स्थानपर पहुंचाता है उसीप्रकार मुनिराज भी गुणरूपी रत्नों से भरी हुई इस शरीररूपी गाडीको निर्दोष भिक्षारूपी चिकनाहट लगाकर आयुरूपी धुरी पहियोको ठीककर अपने पहुंचने योग्य समाधिरूपी नगरमें पहुंचाते हैं उसको अक्षम्रक्षण कहते हैं यह रूढीसे रक्खा हुआ नाम है। जिस प्रकार किसी भांडागार में (कोठारमें) आग लग जाय तो गृहस्थ उसे पवित्र जलसे अथवा अपवित्र जलसे

निरूढत्वेन श्वभ्रपूरणवदुदरगर्तमनगारः पूरयति स्वादुनेतरेण वेति श्वभ्रपूरणमिति च निगद्यते । प्रतिष्ठापनशुद्धिपरः संयतो नखरोमसिंघाणकनिष्ठीवनशुक्रोच्चारप्रस्रवणशोधने देहपरित्यागे च विदितदेशकालो जन्तूपरोधमंतरेण यत्नं कुर्यात् प्रयतते । संयतेन शयनासनशुद्धिपरेण स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौण्डशाकुनिकादिपापजनावासा वर्ज्याः शृंगारविकारभूषणोज्ज्वलवेषवेश्याक्रीडाभिरामगीतनृत्तवादित्राकुलप्रदेशा विकृतांगगुह्यदर्शनकाष्ठमयालेख्यहास्योपभोगमहोत्सववाहनदमनायुधव्यायामभूमयश्च रागकारणानीन्द्रियगोचरा मद्यमानशोचकोपसंक्लेशस्थानादयश्च परिहर्तव्याः, अकृत्रिमा गिरिगुहातरुकोटरादयः कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा

बुझाता है उसी प्रकार मुनिराज भी सरस अथवा नीरस जैसा कुछ आहार मिल जाता है उसी से अपने पेटकी अग्निको शांत कर लेते हैं इसको उदराग्निप्रशमन कहते हैं। जिस प्रकार भ्रमर किसी भी फूलको बाधा न देता हुआ रस ग्रहण करता है उसी प्रकार मुनिराजभी किसी भी दाताको बाधा न पहुंचाते हुए आहार ग्रहण करते हैं इसलिये उनके आहारको भ्रमराहार कहते हैं। जिस प्रकार किसी गड्ढेको अच्छी बुरी मिट्टीसे भरकर पूरा कर देते हैं उसी प्रकार मुनिराज भी स्वादिष्ट अथवा वेस्वाद किसी तरहके भी आहारसे अपने पेट रूपी गड्ढेको भर लेते हैं उसको श्वभ्रपूरण कहते हैं इसप्रकार भिक्षा शुद्धि निरूपण की । इसीप्रकार प्रतिष्ठापन शुद्धिमें तत्पर रहनेवाले मुनियोंको अपने नाखून केश, नाकका मल, थूक, बीर्य, मल, मूत्र आदिके शुद्ध करनेमें अथवा शरीरका परित्याग करनेमें देश और काल दोनोंको अच्छी तरह समझकर जीवोंको किसी तरहकी रुकावट किये विनाही प्रयत्न करते हुए अपना वर्ताव करना चाहिये। यथा शयनासन शुद्धिमें तत्पर रहनेवाले मुनियोंको स्त्रियोंका निवास स्थान, क्षुद्रजीव, चोर, जुआरी, मद्य पीनेवाले और पक्षी पकड कर अपनी जीविका करनेवाले आदि पापीलोगों का निवास स्थान छोड देना चाहिये जहांपर विकृत अंगोंके तथा गुह्य चीजोंके काठ वा रंगके

अनात्मोद्देशनिर्वर्तिता निरारंभाः सेव्याः । तत्र संयतस्य त्रिविधो निवासः, स्थानमासनं, शयनं चेति । पादौ चतुरंगुलान्तरे प्रस्थाप्या-ऽधस्तिर्यगूर्ध्वं ऽन्यतममुखो भूत्वा यत्राऽऽत्मभावो यथात्मबलवीर्यसदृशः कर्मक्षयप्रयोजनोऽसंक्लिष्टमतिस्तिष्ठेत्, अथ न शक्नुयान्नि-ष्प्रतिज्ञातः पर्यंकादिभिरासनैरासीत, यद्य परिमितकालयोगः खिन्नो वैकपार्श्व वाहूपधानसंवृनागादिभिरल्पकालं श्रमपरिहारार्थं शयीत । वाक्यशुद्धिः पृथिवीकायिकाद्यारंभप्रेरणरहिता युद्धकामकर्कशसंभिन्नालापपैशून्यपरुषनिष्ठुरादिपरपीडाकरप्रयोगनिरुत्सुका स्त्रीभक्तराष्ट्रा-

चित्र बने हों, जो हंसी करने की भोगोपभोग सेवन करनेकी कोई बडा उत्पन्न करनेकी, सवारीके घोडा आदि जानवरोंके दमन करनेकी, शस्त्र रखनेकी और व्यायाम करनेकी जगह हो, जहांपर इन्द्रियों से दिखाई न देनेवाले भी राग उत्पन्न करने वाले साधन हों, तथा जो मद, अभिमान, शोक, कोप और संक्लेश के स्थान हों वे सब छोड देने चाहिये। जो अपने निमित्तसे बनाए नहीं गए हैं और जिनके बनने बनानेमें अपनी ओरसे किसी तरहका आरंभ नहीं हुआ है ऐसे स्वाभाविक रीतिसे (अकृत्रिम) बने हुए पर्वतकी गुफाएं वा वृक्षों के कोटर आदि तथा बनवाये हुए सूने मकान (वसतिका) आदि अथवा जिनमें निवास करना छोड दिया गया है अथवा छुडा दिया गया है ऐसे मोचितावास आदि स्थानों में रहना चाहिये।

मुनियोंका निवास तीन प्रकार का होता है, स्थान—खडे होना, आसन—बैठना और शयन—सोना मुनियोंको दोनो पैरोंमें चार अंगुलका अंतर रखकर ऊपरकी ओर मुह करके, नीचे की ओर मुह करके किसी एक ओर मुह करके अथवा इच्छानुसार जहां अपने आत्माके परिणाम लगते हों उधर चाहे जिधरको मुह करके विना किसी तरहके संक्लेश परिणामोके इस प्रकार खडे होना चाहिये जिसमें अपने आत्माके बल और वीर्यके समान कर्मोंका क्षय बराबर होता रहे। यदि इस प्रकार खडे होने की शक्ति न रहे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो विना किसी प्रतिज्ञाके

वनिपालाSSश्रित्रकथाविमुखा अनशीलदेशनादिप्रदानफला स्वपरहितमितमधुरमनोहरा परमवैराग्यहेतुभूता परिहृतपरात्मनिन्दाप्रशंसा संयतस्य योग्या तदधिष्ठाना हि सर्वसंपद इति ।

इति शुद्धिप्रकरणं ।

पर्यंक आदिमेंसे कोईसा भी आसन लगाकर बैठ जाना चाहिये । यदि समय परिमित न हो तो किसीएक करवट से अपनी बाहोंका तकिया लगाकर शरीरको संकुचित कर समेट कर केवल परिश्रम दूर करनेके लिये थोडी देर तक सो लेना चाहिये । यह सब शयनासनशुद्धि कहलाती है । मुनि लोगोके मुंहसे जो वचन निकलते हैं उनमें पृथ्वी काय आदि जीवोको हिंसा रूप आरंभको प्रेरणा नहीं होती उनमें युद्धको प्रेरणा, कामकी प्रेरणा नहीं होती व कठोर नहीं होते दूसरोंके गुप्त विषयोंको प्रकट करने वाले अथवा निंदा करने वाले नहीं होते व कठिन निष्ठुर आदि दूसरेको पीडा पहुचाने वाले नहीं होते । स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा और राजकथा इन चारों विकथाओसे रहित होते हैं, व्रत शीलोंका पालन करना कराना वा उपदेश देना ही उन वचनोका मुख्य फल होता है । इनके सिवाय उनके वचन अपने आत्माका (उन मुनियोका) हित करनेवाले होते हैं, अन्य समस्त जीवोंको हित करनेवाले होते हैं परिमित होते हैं मधुर होते हैं मनोहर होते हैं और परम वैराग्यको उत्पन्न करनेवाले होते हैं उनमें न तो दूसरोकी निंदा होती है और न अपनी प्रशंसा रहती है। इस प्रकारके मुनियोंके योग्य ही उनके वचन निकलते हैं ऐसेही वचनोका निकालना वाक्यशुद्धि कही जाती है । ऐसी वाक्य शुद्धिके होने से समस्त संपदाएं अपने आप प्राप्त हो जाती हैं ।

इसप्रकार यह शुद्धियोंका प्रकरण समाप्त हुआ

अथ—संयमभेदाः साक्षान्मोक्षप्राप्तिकारणान्युच्यन्ते । सामायिकं, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धिः, सूक्ष्मसाम्परायः, यथाख्यातचारित्रमिति ।

तत्र सामायिकमवस्थानं सर्वसावद्ययोगस्याभेदेन प्रत्याख्यानमवलंब्य प्रवृत्तमथवाऽवधृतकालमनवधृतकालं सामायिकमित्याख्यायते । त्रसस्थावरजन्तुदेशकालप्रादुर्भावतिरोधाप्रत्यक्षत्वात् प्रमादवशादभ्युपगतनिरवद्यक्रियाप्रबंधप्रलोपे सति तदुपात्तस्य कर्मणः सम्यक् प्रतिक्रिया छेदोपस्थापनाऽथवा सावद्यकर्मणो हिंसादिभेदेन विकल्पान्निवृत्तिश्छेदोपस्थापना । प्राणिवधान्निवृत्तिः परिहारस्तेन विशुद्धिर्यस्मिंस्तत्परिहारविशुद्धिचारित्रं तत्पुनस्त्रिंशद्वर्षजातस्य संवत्सरपृथक्त्वं तीर्थंकरपादमूलमेविनः प्रत्याख्याननामधेयपूर्वार्णवपारंगतस्य

अब आगे संयमके ऐसे भेदोंको कहते हैं जो मोक्षके साक्षात् कारण हैं सामायिक छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात चारित्र । ये संयमके साक्षात् मोक्ष प्राप्त करानेवाले भेद हैं ।

समयके अनुसार करने योग्य अवस्थानको सामायिक कहते हैं अर्थात् अभेद रूपसे (पूर्ण रूपसे) समस्त पापरूप योगोंका त्यागकर उसीके अनुसार (जिसमें किसीतरहका पापरूप योग न होने पावे) किसी नियत समयतक अथवा अनियत समयतक अपनी प्रवृत्ति रखना सामायिक कहलाता है । त्रस और स्थावर जीवोंके देश तथा कालके निरोध होनेका प्रत्यक्ष न होनेके कारण अथवा उसके प्रगट होनेके प्रत्यक्ष न होनेके कारण अथवा कोई प्रमाद हो जानेके कारण यदि करनेयोग्य क्रिया निर्दोष न की गई हो उसको निर्दोष रीतिसे करनेका प्रयत्न न किया गया हो तो उस की हुई क्रियाकी अच्छीतरह प्रतिक्रिया करना—उसको शुद्ध करनेका उपाय करना या उस दोषके बदले दंड लेना छेदोपस्थापना है । अथवा हिंसा आदिके भेदसे सावद्य कर्म (पापसहित योगों द्वारा की हुई क्रियाएं) अनेक प्रकारके होते हैं उनको विकल्प रूपसे त्याग

जन्तुनिरोधप्रादुर्भावकालपरिणामजन्मयोनिदेशद्रव्यस्वभावविधानज्ञस्य प्रमादरहितस्य महावीर्यस्य परमनिर्जरस्यातिदुष्करचर्यानुष्ठायिनस्तिस्रः सन्ध्या वर्जयित्वा द्विगव्यूतिगामिनः सम्पद्यते नान्यस्य । सूक्ष्मस्थूलप्राणिवधपरिहारप्रवृत्तत्वादनुपहतोत्साहस्याखंडितक्रियाविशेषस्य सम्यग्दर्शनज्ञानमहामारुतसंधुक्षितप्रशस्ताध्यवसायाग्निशिखोपश्लिष्टकर्मेन्धनस्य ध्यानविशेषविशिखीकृतकषायविषांकुरस्यापचयाभिमुखस्तोकमोहबीजस्य तत एव परिप्राप्तान्वर्थसूक्ष्मसाम्परायशुद्धसंयतस्य, सूक्ष्मसाम्परायचारित्रं । चारित्रमोहस्य

करना (पूर्णरूपसे त्याग न कर) उसके थोडे या बहुत अंशोका त्याग करना, छेदोपस्थापना है। जिसमें प्राणियोंकी हिंसासे अलग रहना पडे किसी भी तरह प्राणियों की हिंसा न हो सके उस को परिहार कहते हैं। जिस चारित्रमें उस परिहार के द्वारा विशुद्धि रक्खी जाय उसको परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। जिसकी अवस्था कमसे कम तीस वर्षकी हो जो कमसे कम तीन वर्ष या इससे कुछ अधिक समयतक किसी तीर्थंकरके चरण कमलोकी सेवा करता रहा हो चौदह पूर्वोंमेंसे प्रत्याख्यान नामके पूर्वरूप महासागरका पारगंत हो अर्थात् जो ग्यारह अंग और पूर्वोंका पाठी हो जीवोंके निरोध होने और प्रकट होने आदिके समय परिणाम जन्म योनि देश द्रव्य और स्वभाव आदिके विधानोका अच्छा जानकार हो जो प्रमादो से सर्वथा रहित हो महा वीर्यशाली महाशक्तिमान हो जो कर्मोंकी परम निर्जरा करनेवाला अत्यंत कठिन कठिन तपश्चरणोंको करनेवाला और सामायिकके तीनो समयोको छोडकर शेष समयमें प्रतिदिन दो कोस गमन करनेवाला हो उसीके यह परिहार विशुद्धि चारित्र होता है। ऐसे मुनिके सिवाय अन्य किसी के यह परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं हो सकता। सूक्ष्म औरस्थूल जीवोंकी हिंसाके त्याग करने में सदा प्रवृत्ति वा दत्तचित्त होनेसे जिसका उत्साह वरावर बढता जा रहा है, जो अपनी विशेष क्रियाओंको अखंडित रीतिसे पूर्णरीतिसे पालन कर रहा है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूपी

निरवशेषस्योपशमात्क्षयाद्वात्मस्वभावावस्थोपेक्षालक्षणमथाख्यातचारित्रं, अथ शब्दस्यानन्तरस्यार्थवृत्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोपशमाऽनंतरमाविर्भवतीत्यथाख्यातं अथवा यथाऽऽत्मस्वभावावस्थितस्तथैवाऽऽख्यातत्वाद्यथाख्यातमिति।

ततो यथाख्यातचारित्रात्सकलकर्मसमाप्तिर्भवति। सामायिकादीनामानुपूर्व्या वचनमुत्तरोत्तरगुणप्रकर्षख्यापनार्थम्। तद्यथा—सामायिकछेदोपस्थापनासंयमस्य जघन्यविशुद्धिरल्पा ततः परिहारविशुद्धिचारित्रस्य जघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा तस्यैवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्त-

महा वायुके द्वारा फूकी हुई, बढाई हुई वा तेज की हुई प्रशंसनीय ध्यानरूपी (शुक्लध्यानरूपि) अग्निकी शिखामें जिसका बहुतसा कर्मरूपी ईंधन आपडा हो, जिसने अपने विशेष ध्यानसे कषायरूपी विषका अंकुर नष्ट करदिया हो जिसका बचा हुआ थोडासा मोहनीय कर्मका बीज भी अपचय होनेके सन्मुख हो, और इसीलिये सूक्ष्मसांपराय ऐसा सार्थक नाम होनेसे जिसका संयम अत्यंत शुद्ध है ऐसे मुनिके सूक्ष्मसांपराय नामका चारित्र होता है। समस्त चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम होनेसे अथवा क्षय होनेसे आत्मस्वभावकी अवस्था प्रगट होनेरूप अथवा उपेक्षा लक्षणरूप जो चारित्र प्रगट होता है उसे अथाख्यात वा यथाख्यात चारित्र कहते हैं। अथ शब्दका अनंतर अर्थ है इसलिये जो समस्त मोहनीय कर्मके क्षय अथवा उपशम होनेके अनंतर जो प्रगट हो उसे अथाख्यात कहते हैं अथवा इसका दूसरा नाम यथाख्यात भी है। आत्माका जैसा स्वभाव है वैसा ही जिसका स्वरूप कहा गया हो उसे यथाख्यात कहते हैं इसी यथाख्यात चारित्रसे समस्त कर्मोंका नाश होता है। इन सामायिक आदि पांचों चारित्रोंका अनुक्रम उनके उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकता दिखलानेकेलिये कहा गया है।

भावार्थ—सामायिकसे छेदोपस्थापनामें अधिक गुण हैं, छेदोपस्थापनासे परिहार विशुद्धिमें अधिक गुण हैं परिहार विशुद्धिसे सूक्ष्मसांपरायमें और सूक्ष्मसांपरायसे यथाख्यातमें अधिक

गुणा ततः सामायिकछेदोपस्थापनासंयमोत्कृष्टविशुद्धिरनन्तगुणा ततः सूक्ष्मसाम्परायचारित्रस्य जघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा तस्यैवोत्कृष्ट विशुद्धिरनन्तगुणा ततो यथाख्यातचारित्रविशुद्धिः सपूर्णा प्रकर्षाप्रकर्षविरहिताऽनन्तगुणा । एवमेते पञ्च चारित्रोपयोगाः शब्दविषयत्वेन संख्येयभेदाः । बुद्धयध्यवसानभेदादसंख्येया अर्थादनन्तभेदाश्च भवंति । तदेतच्चारित्रं सर्वास्रवनिरोधकारणत्वात्परमसंवरहेतुरित्यवसेयं ।

गुण हैं इसी बातको आगे दिखलाते हैं । सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्रकी जघन्य विशुद्धि थोडी है उससे परिहार विशुद्धि चारित्रकी जघन्य विशुद्धि अनंतगुनी है तथा परिहारविशुद्धि चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धि उसकी जघन्य विशुद्धिसे भी अनंत गुनी है । सामायिक छेदोपस्थापना चारित्रकी उत्कृष्टविशुद्धि परिहार विशुद्धि चारित्रकी उत्कृष्टविशुद्धि से भी अनंत गुनी है । इस सामायिक छेदोपस्थापनाकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे भी सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी जघन्य विशुद्धि अनंत गुणी है और इसी सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धि उसकी जघन्य विशुद्धिसे भी अनंत गुणी है । इस सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे भी यथाख्यात चारित्रकी जघन्य उत्कृष्ट रहित संपूर्ण विशुद्धि अनंत गुणी है । इसप्रकार उपयोगरूपसे यह चारित्र पांच प्रकारका है, शब्दका विषयभूत होनेसे इस के संख्यात भेद होते हैं, बुद्धिके विषयभूत होनेसे असंख्यात भेद होते हैं, और अर्थके विषयभूत होनेसे अनंत भेद होते हैं । इस पांचों ही प्रकारके चारित्रसे सबतरहके आस्रवका निरोध होता है इसलिये यह सब तरहका चारित्र परम संवरका कारण है ऐसा समझना चाहिये ।

अथवा व्रतोंको धारण करना, समितियोंको पालन करना, कषयोंका निग्रह करना, दंडोंका त्याग करना और इंद्रियोंको जीतना संयम है । हिंसाका त्याग करना, अनृत वा झूठका त्याग करना, चोरीका त्याग करना, अब्रह्मका त्याग करना और परिग्रहका त्याग करना ये पांच

अथ वा व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदंडत्यागेन्द्रियजयः संयमः। तत्र हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहविरतिरिति पंचधा व्रतं। तत्रेन्द्रियकषायनिग्रहमकृत्वा प्रमत्त इव यः प्रवर्त्तते स प्रमत्तः। पंचेन्द्रियमनोवाक्कायबलोच्छ्वासनिःश्वासायुष्काणि प्राणाः। एकेन्द्रियादयः प्राणिनः प्रमत्तपरिणामयोगात्प्राणिप्राणव्यपरोपणं हिंसा। सा च संरंभसमारंभारंभैस्त्रिभिः कायवाङ्मनःकर्मयोगैस्त्रिभिः कृतकारितानुमतैस्त्रिभिः क्रोधादिकषायैश्चतुर्भिर्भिद्यते। तत्र प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादतः प्रयत्नावेशः संरंभः। साध्यायाः क्रियायाः साधनानां समाहारः समारंभः। आद्यो क्रमः प्रक्रम आरंभ इति। औदारिकशरीरनामकर्मोदयवशात्पुद्गलैश्चीयते इति कायः।

व्रत कहलाते हैं। जो इंद्रिय और कषायोंको निग्रह न करके प्रमत्तके समान अपनी प्रवृत्ति करता है उसको प्रमत्त कहते हैं। पांचों इंद्रियां, मन वचन काय ये तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण कहलाते हैं और इन प्राणोंको धारण करनेवाले एकेंद्रिय आदि जीव प्राणी कहलाते हैं अपने प्रमत्तरूप परिणामोंके निमित्तसे प्राणियोंके प्राणोंका व्यपरोपण वा घात करना हिंसा है, और वह संरंभ समारंभ आरंभ इन तीनके द्वारा, मन वचन कायकी क्रियारूप तीनों योगोके द्वारा, कृत कारित अनुमत [करना कराना और करनेको भला मानना] इन तीनोंके द्वारा और क्रोध मान माया लोभ इन चारो कषायोंके द्वारा अनेक तरहकी होजाती है। प्रमादके कारण जीवोंकी हिंसा करने आदि कार्य करनेके लिये प्रयत्न करनेका आवेश वा इच्छा होना संरंभ है। जिस कामके करनेका विचार किया है, उसकी कारण सामग्री इकट्ठी करना समारंभ है। सबसे पहिले उस कामको प्रारंभ करना आरंभ है। औदारिक शरीर नाम कर्मके उदय होनेके कारण पुद्गलोके द्वारा जो इकट्ठा किया जाय बनाया जाय उसको काय वा शरीर कहते हैं। वाक् अर्थात् वचन दो प्रकारके हैं— एक भाव वचन दूसरे द्रव्य वचन। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे तथा अंगोपांग नाम

वाग् द्विविधा, भाववाग्, द्रव्यवागिति । तत्र भाववाग्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी । तदभावे तद्वृत्त्यभावात्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । मनश्च द्विविधं, भावमनो द्रव्यमनश्चेति । तत्र भावमनो लब्ध्युपयोगाभ्यां लक्ष्यते पुद्गलावलंबनत्वात्पौद्गलिकं । द्रव्यमनश्च ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला वीर्यविशेषावर्जनसमर्था मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकमिति । स्वातन्त्र्यविशिष्टेनात्मना यः प्रादुर्भावितं तत्कृतं, । परस्य प्रयोगमपेक्ष्य सिद्धिमापद्यमानं कारितं । प्रयोजकस्य मनसाऽभ्युपगमनमनुमतमिति । आत्मनः सम्यक्त्वसंयमासंयमसंयमयथाख्यातचारित्र

कर्मके लाभ का निमित्त मिलनेसे भाववचनोंकी प्राप्ति होती है इसलिये भाववचन भी पौद्गलिक हैं इतनी पौद्गलिक सामग्री मिले विना भाववचन हो नहीं सकते इसलिये भी भाववचन पौद्गलिक हैं। उस भाववचनकी सामर्थ्य प्राप्त होनेसे क्रियावान् आत्माके द्वारा प्रेरणा किये हुये जो पुद्गल वचन रूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य वचन कहते हैं तथा वे पुद्गलोंके ही बनते हैं इसलिये पौद्गलिक ही कहलाते हैं। मन भी दो प्रकारका है एक भावमन और दूसरा द्रव्य-मन। भावमनकी प्राप्ति लब्धि और उपयोगके द्वारा होती है तथा लब्धि और उपयोग ये दोनों ही पुद्गलोंके आलंबनसे ही होते हैं इसलिये भावमन भी पौद्गलिक ही गिना जाता है।

ज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमका लाभ होनेके कारण प्राप्त होनेवाले गुणदोषोंका विचार करना स्मरण करना आदि कार्योंके सन्मुख ऐसे आत्माका अनुग्रह करनेवाले, और विशेष शक्ति प्रगट करनेकी जिनमें सामर्थ्य है ऐसे जो पुद्गल मनरूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य मन कहते हैं। द्रव्यमन पुद्गलोंसे ही बनता है इसलिये वह भी पौद्गलिक ही कहलाता है। स्वतंत्रता पूर्वक आत्माके द्वारा जो स्वयं किया जाता है उसे कृत कहते हैं

कषन्तीति कषायाः। अथ वा कृषन्ति फलवत्कुर्वन्ति कर्मबीजमिति कषायाः। संरंभसमारंभारंभाणामधस्तात् योगान् कृतकारितानुमतानि क्रोधमानमायालोभाश्च क्रमेण व्यवस्थाप्य संरंभं निरुध्यांकसंचारे कृते षट् त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति। एवं समारंभे आरंभे च प्रत्येकं षट्त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति। सर्वे संपिंडिताः अष्टोत्तरशतसंख्याका भवन्ति।।

एवं कायादियोगान्कृतकारितानुमतानि क्रोधादिकषायांश्चैकैकं निरुध्यांकसंचारः कर्त्तव्यः।

दूसरेके प्रयोगको अपेक्षा रखकर जो कार्य सिद्ध किया गया हो अर्थात् दूसरेसे कराया गया हो उसे कारित कहते हैं। काम करनेवालेको मनसे भला मानना अनुमत कहलाता है। आत्मा के सम्यग्दर्शन, संयमासंयम, संयम और यथाख्यात चारित्र गुणोंका जो घात करे उन्हें कषाय कहते हैं। अथवा कर्मरूप बीजको जो फलशाली बनादेवें (जिनके कारण कर्म अपना फल दे सकें) उनको कषाय कहते हैं। कषाय क्रोध मान माया लोभ ये चार हैं। संरंभ समारंभ और आरंभ इन तीनोंके नीचे मन वचन काय इन तीनोंको, कृत कारित अनुमत इन तीनोंको और क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंको अनुक्रमसे रखना चाहिये। इसतरह रखनेसे तथा उनका अंक संचार करनेसे संरंभ छत्तीस तरहका होता है। इसीप्रकार समारंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है और आरंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है ये सब मिलकर एकसौ आठ भेद होते हैं।

इसीप्रकार मन वचन काय तीनों योग, कृत, कारित अनुमोदना और क्रोधादिक कषाय इन सबको एक एकके साथ कहकर अंक संचार करना चाहिये।

क्रोध कृत काय संरंभ, मान कृत काय संरंभ, मायाकृतकाय संरंभ, लोभ कृत काय संरंभ, क्रोध कारित काय संरंभ, मान कारित काय संरंभ, माया कारित काय संरंभ, लोभ कारित

संख्यातासंख्यातानंतभवसंसारावस्थानमनन्तानुबन्धिनां कषायाणां, षण्मासावस्थानमप्रत्याख्यानानां, पक्षावस्थानं प्रत्याख्यानानां अन्तर्मुहूर्तावस्थानं संज्वलनानां । एवंविधषोडशकषायभेदात् द्वात्रिंशदुत्तरचतुःशतत्रिकरणा भवन्ति ।

अप्रतिपीड्याः सूक्ष्मजीवाः, बादरजीवानां गत्यादिमार्गणागुणस्थानकुलयोन्यायुष्यादिकं ज्ञात्वा गमनस्थानशयनासनादिषु स्वयं न हननं, परैर्वा न घातनं, अन्येषामपि हिंसतां नानुमोदनं हिंसाविरतिः। अहिंसाव्रतं स्वर्गापवर्गफलप्रापणहेतुस्तत्प्रतिपालननिमित्तं

काय संरंभ, क्रोधानुमत काय संरंभ, मानानुमत काय संरंभ, मायानुमतकाय संरंभ, लोभानुमत काय संरंभ यह बारह प्रकारका संरंभ हुआ इसी प्रकार बारह प्रकारका बचन संरंभ और बारह प्रकारका मन संरंभ समझना चाहिये। इस तरह छत्तीस प्रकारका संरंभ, छत्तीस प्रकारका समारंभ और छत्तीस ही प्रकारका आरंभ समझना चाहिये इस तरह सब एकसौ आठ भेद होते हैं।

अनंतानुबंधी कषायका अवस्थान वा संस्कार संख्यात असंख्यात वा अनंत भव संसार तक रहता है, अप्रत्याख्यानावरण कषायका अवस्थान छह महीने तक रहता है, प्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार पंद्रह दिन तक रहता है और संज्वलन कषायका संस्कार अंतर्मुहूर्त तक रहता है इस प्रकार कषायोंके सोलह भेद भी होते हैं और कषायोंके सोलह भेद होनेसे संरंभादिकके चारसौ बत्तीस भेद हो जाते हैं।

सूक्ष्म जीवोंको तो किसी तरह पीडा हो ही नहीं सकती है केवल बादर जीवोंको पीडा हो सकती है इसलिये उन बादर जीवोंकी गति आदि मार्गणाएं, गुणस्थान, कुल, योनि और आयुष्य आदि जानकर गमन करने खडे होने शयन करने और बैठने आदि कार्योंमें न तो स्वयं उन जीवोंकी हिंसा करना, न किसी दूसरोंसे उनका घात कराना और न हिंसा करते हुए

श्रेयांसि भवन्ति। अहिंसकः पुरुषो निजजनवद्विश्वास्यः पूज्यश्च भवति । हिंसको हि नित्योद्वेजनीयः सततोऽनुबद्धवैरश्चैव च वधबन्धपरिक्लेशादीन् परिलभते, प्रेत्य चाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति हिंसाया व्युपरमः श्रेयान्। परमार्थग्रहणेच्छयाऽहिंसाव्रत-स्थैर्यार्थं पंच भावना भवन्ति ।

वाग्गुप्तिः, मनोगुप्तिः, ईर्यासमितिः, आदाननिक्षेपणसमितिः, आलोकितपानभोजनमिति ।

अन्य लोगों का अनुमोदन करना हिंसाविरति वा हिंसाका त्याग अथवा अहिंसा व्रत कहलाता है। यह अहिंसा व्रत स्वर्ग और मोक्षफल प्राप्त होनेका कारण है। इस अहिंसा व्रतका पालन करनेकेलिये ही बाकीके सब व्रत धारण किये जाते हैं। अहिंसा व्रतका धारण करनेवाला अहिंसक पुरुष अपने पिताके समान विश्वास करने योग्य और पूज्य माना जाता है हिंसक पुरुष सदा ललकार और फटकार पाता रहता है और सदा दूसरोंके साथ वैर विरोध बांधता रहता है। हिंसक पुरुष इस लोकमें भी बध बंधन आदिके अनेक क्लेश भोगता है और परलोकमें भी नीच गति पाकर निंदनीय होता है इसलिये हिंसाका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है। परमार्थ रीतिसे ग्रहण करनेकी इच्छासे इस अहिंसा व्रतको स्थिर करनेके लिये वाग्गुप्ति मनोगुप्ति ईर्यासमिति आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित पान भोजन ये पांच भावनाएं कही गई हैं।

जो पदार्थ है उसको छिपानेके लिये और जो नहीं है उसको प्रगट करनेकेलिये जो वचन कहे जाते हैं उसीको अनृत वा मिथ्या वचन कहते हैं। आत्मा नहीं है परलोक नहीं है इत्यादि वचन पदार्थोंके अस्तित्वको छिपानेवाले हैं। आत्मा श्यामाक जातिके चांवलके बराबर है, अथवा अंगूठेके पर्वके समान है अथवा समस्त संसारमें व्याप्त है और निष्क्रिय है इत्यादि वचन

पारमार्थिकस्य भूतनिह्नवेऽभूतोद्भावने च यदभिधानं तदेवानृतं स्यात्, भूतनिह्नवे नास्त्यात्मा नास्ति परलोक इत्यादि। अभूतोद्भावने च श्यामाकतंदुलमात्र आत्मांगुष्ठपर्वमात्रः सर्वगतो निष्क्रिय इत्यादि। यद्विद्यमानार्थविषयं प्राणिपीडाकारणं तत्सत्यमप्यसत्यमेतद्विपरीतं यच्च प्राणिपीडाकरं तदनृतं कृतात्कारितादनुमोदिताद्वाऽनृताद्विरतिः सत्यव्रतं तदभ्युदयनिःश्रेयसकारणं। सत्यवादिनं सन्मानयति लोकः सर्वेषु कार्येषु प्रमाणं भवति, अनृतवाद्यश्रद्धेयो भवति इहैव जिह्वाच्छेदनादीन् प्रतिलभते, मिथ्याभ्याख्यानदुः-

जो पदार्थ नहीं है उसीको प्रगट करनेवाले हैं। विद्यमान पदार्थोंको विद्यमान कहनेवाले वचन भी यदि प्राणियोंको पीडा करने वाले हों तो वे सत्य होकर भी असत्य ही माने जाते हैं। जो वचन विपरीत हों तथा प्राणियोंको पीडा देने वाले हों वे सब अनृत कहलाते हैं। कृत कारित अनुमोदनासे अनृत वा असत्यका त्याग कर देना सत्यव्रत है। यह सत्यव्रत भी अभ्युदय और मोक्षका कारण है। सत्यवादीका (सच बोलनेवालेका) सब लोग सन्मान करते हैं और समस्त कार्योंमें वह प्रमाण माना जाता है। झूठ बोलनेवाले पर किसीकी श्रद्धा नहीं होती इस लोकमें भी जीभ काटी जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं तथा झूठ बोलकर जिन लोगोंको दुःख दिया है और इसीलिये जिनके साथ वैर बंध गया है ऐसे लोगोंके द्वारा वह अनेक तरहके संकटोंमें डाला जाता है। परलोकमें भी उसे अशुभ गति मिलती है तथा वह निंदनीय होता है इसलिये असत्य वचनोंका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है। क्रोध प्रत्याख्यान अर्थात् क्रोध त्याग करदेनेकी भावना रखना, लोभ प्रत्याख्यान अर्थात् लोभका त्याग कर देनेकी भावना रखना, भीरुत्व प्रत्याख्यान अर्थात् डरका त्यागदेनेकी भावना रखना, हास्य—प्रत्याख्यान अर्थात् हंसीको त्याग देनेकी भावना रखना और अनुवीची भाषण ये पांच सत्य व्रतको दृढ़ करनेकी भावनाएं हैं। विचार कर भाषण करना अथवा अनुकूलता पूर्वक भाषण करना अनु-

श्चितेभ्यश्च वद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति, प्रेत्य चाऽशुभां गतिं, निंदितश्च भवतीत्यनृतवचनाद्व्युपरमः श्रेयान्। सत्यव्रत-दृढीकरणार्थं पंचभावना भवंति ।

क्रोधप्रत्याख्यानं, लोभप्रत्याख्यानं, भीरुत्वप्रत्याख्यानं, हास्यप्रत्याख्यानं, अनुवीचिभाषणं चेति । अनुवीचिभाषणमनुलोमभाषणमित्यर्थः, विचार्य भाषणमनुवीचिभाषणं ।

अदत्ताऽऽदानं स्तेयं । ग्रामारामशून्यागारवीथ्यादिषु निपतितमणिकनकवस्त्रादिवस्तुनो ग्रहणमदत्तादानं । कृतकारितादिभिस्तस्माद्विरतिरस्तेयव्रतं । तद्गीर्वाणनिर्वाणप्रदं । अस्तेयव्रतिनो वहिश्चरप्राणेष्वर्थेष्वपि विश्वसिति लोकः परद्रव्यहरणासक्तमतिः सर्वस्योद्वे-

वीची भाषण कहलाता है ।

अदत्तादान अर्थात् विना दी हुई वस्तु को लेना वा ग्रहण करना चोरी है। किसी गांवमें किसी वगीचेमें, किसी सूने मकान अथवा गलीमेंपडे हुए मणि सोना वस्त्र आदि पदार्थोंका ग्रहण करलेना उठालेना अदत्तादान है। कृत कारित अनुमोदनासे ऐसे अदत्तादानका त्याग करना अस्तेय व्रत अथवा अचौर्यव्रत है। यही अचौर्यव्रत स्वर्ग और मोक्षकी संपदा देनेवाला है। अचौर्यव्रत धारण करनेवालेका वाह्य प्राण रूप धन रखनेमें भी सव लोग विश्वास करलेते हैं। जिसकी बुद्धि दूसरेके धन हरण करनेमें आसक्त रहती है उसे सवलोग दंड और फटकार दिया करते हैं इस लोकमें मारना, पीटना, जानसे मार डालना, बांधना हाथ पैर कान नाक ऊपरका ओठ आदि अंगोंका काटलेना, भेदना शूलीपर चढ़ाना, आरेसे चीरना, कारागार में (जेलमें) वंद करना और उसका सब धन लूट लेना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं। परलोकमें उसे अशुभगति प्राप्त होती है और वह निंदनीय होता है और तो क्या ऐसे चोर के संसर्ग मात्रसे शिष्ट पुरुष भी (भले सभ्य पुरुष) संशयमें पड जाते हैं अर्थात् लोग उनपर भी संदेह करने लगते हैं इसलिये चोरीका त्याग करदेना ही संसारका तथा आत्माका कल्याण करनेवाला है।

जनीयो भवति, इहैव चाभिघातवधबन्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदनभेदनशूलारोहणक्रकचपाटनकारागारविनिवेशनसर्वस्वहरणादीन्प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं, कुत्सितश्च भवति, सत्संसर्गतः शिष्टोऽपि संशयमवाप्नोति, अदत्तादानव्रतस्थिरीकरणार्थं भावनाः पंच भवंति ।

शून्यागारगिरिगुहातरुप्रकोटरादिष्वावासः, परकीयेषु मोचितेष्वावासः, परेषां मनुष्यव्यन्तरादीनामुपरोधाकरणं, आचारसूत्रमार्गेण भैक्ष्यशुद्धिः, ममेदं तवेदमिति लक्षणो विसंवादः, न विसंवादोऽविसंवादः, सधर्मिभिरविसंवाद इति ।

इस अचौर्य व्रतको स्थिर करनेकेलिये नीचे लिखी हुई पांच भावनाएं हैं—पर्वतोंकी गुफाएं तथा वृक्षोंके कोटर आदि सूने मकानोंमे निवास करनेकी भावना रखना, दूसरेके द्वारा छोडे हुए स्थानोंमें निवास करनेकी भावना रखना, अन्य मनुष्य व्यंतर आदिको रोक टोक न करनेकी भावना रखना, आचार सूत्रोंमें कही हुइ विधिके अनुसार भिक्षाकी शुद्धता रखनेको भावना रखना; और साधर्मियोंके साथ यह तेरा है यह मेरा है आदि विसंवाद न करना।

मैथुन करनेको अब्रह्म कहते हैं। अपने अपने वेद कर्मके उदयसे वेदनासे (कामकी वेदनासे) पीडित हुए स्त्री पुरुष जो कुछ कर्म करते हैं उसको मैथुन कहते हैं अथवा चारित्र मोहनीय कर्मके तीव्र उदयसे जिसके तीव्र राग भाव प्रगट हुआ है ऐसा एक पुरुष भी यदि हस्तादिकसे संघट्टन किया करे तो वह भी मैथुन कहलाता है। जिसमें अहिंसा आदि गुणोंकी वृद्धि होती हो उसे ब्रह्म कहते हैं और ब्रह्म वा ब्रह्मचर्यका पालन न करना ही अब्रह्म है। तिर्यंच मनुष्य देव और अचेतनके भेदसे स्त्रियां चार तरहकी होती हैं इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंमें माता बहिन और पुत्री की भावना रखकर मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनाके द्वारा होनेवाले नौ प्रकार के भेदोंमे उस अब्रह्मका त्याग करदेना ब्रह्मचर्य नामका चौथा व्रत है। यह ब्रह्मचर्य

मैथुनमब्रह्म, स्त्रीपुंसोर्वेदोदये वेदनापीडितयोर्यत्कर्म तन्मैथुनमथवैकस्याऽपि चारित्रमोहोदयोद्रक्तरागस्य हस्तादिसंघटनेऽपि मैथुनमिति । अहिंसादिगुणबृंहणाद् ब्रह्म, न ब्रह्म अब्रह्म । तिर्यग्मनुष्यदेवाऽचेतनभेदाच्चतुर्विधस्त्रीभ्यो मातृसुताभगिनीभावनया मनोवाक्कायप्रत्येककृतकारितानुमोदितभेदेन नवविधाद्विरतिश्चतुर्थव्रतं । तदेव स्वर्गमोक्षसाधनं ब्रह्मचारिणं भूमिस्थमपि साक्षाद्देव इव मन्यते लोकः असंयतोपि तद्व्रतो मानार्हो भवति, तस्मिन्प्रतिष्ठिताः सर्वे, गुणाः, विद्यादेवताश्च परिगृहीतब्रह्मव्रतस्य किंकरभाव-

व्रत भी स्वर्ग मोक्षका साधन है । यदि कोई ब्रह्मचारी जमीन पर भी बैठा हो तो भी संसार उसे साक्षात् देवके समान हो मानता है। यदि ब्रह्मचारी असंयमी भी हो तो भी उसका आदर सत्कार और मान प्रतिष्ठा होती है। इस ब्रह्मचर्य व्रतमें ही समस्त गुण शामिल हैं। जिसने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है उसीके सब विद्या देवता आकर स्वयं सेवक होकर काम करते हैं। जिस प्रकार मदके विकारसे उन्मत्त चित्तवाला जंगली हाथी हथिनीके द्वारा ठगा जाकर परवश हो जाता है और बध बंधन आदिके अनेक क्लेशोंका अनुभव करता है उसी प्रकार अब्रह्मचारी भी मदके विकार से उन्मत्त चित्त होकर परवश हो जाता है और फिर बध बंधन आदिके अनेक क्लेश सहन करता है। मोहसे तिरस्कृत होकर कार्य अकार्यका कुछ विचार नहीं कर सकता और न वह किसी भी श्रेष्ठ कार्यका संपादन कर सकता है। परस्त्रियोंका आलिंगन अथवा उन के साथ समागम करनेकी लालसा रखनेवाले पुरुषके साथ हर किसीका वैर विरोध हो जाता है और फिर उन वैर विरोध करनेवालोंके द्वारा लिंगच्छेदन, बध बंधन और समस्त धनका हरा जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं। परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होती है और वह तृणके समान लघु वा क्षुद्र गिना जाता है। इसलिये स्त्रीमात्रका त्याग कर देना ही आत्मा का कल्याण करनेवाला ह।

मुपयांति। अब्रह्मचारी मदविभ्रमोन्मथितचित्तो वनगज इव वासितार्थचितो विवशो वधबंधपरिक्लेशादीननुभवति, मोहाभिभूतत्वा
कार्याकार्यानभिज्ञो न किंचित्कुशलमाचरति, परांगनालिंगनसंगकृतरतिश्चेहैव वैरानुबंधिनो लिंगच्छेदनवधबन्धनसर्वस्वहरणादीनपायान्
प्राप्नोति, प्रेत्य चाशुभां गतिमश्नुते, तृणवल्लघुश्च भवतीत्यतः स्त्रीविरतिरात्महिता। ब्रह्मचर्यव्रतनिश्चलीकरणार्थं पंच भावना भवंति।

स्त्रीरागकथाश्रवणवर्जनं, तन्मनोहरांगनिरीक्षणविरहः, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोहः, वृष्येष्टरसानुभवनिरासः, स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति।

मूर्च्छा परिग्रहः, बाह्याभ्यन्तरोपाधिसंरक्षणादिव्यापृतिर्मूर्च्छा। क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानशयनासनकुप्यभांडानि,
दशविधश्चेतनाचेतनभेदलक्षणो बाह्यपरिग्रहः मिथ्यात्वक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सावेदरागद्वेषचतुर्दशभेदोऽभ्यन्तर-

इस ब्रह्मचर्य व्रतको निश्चल करनेके लिये स्त्रीरागकथा श्रवण त्याग, (स्त्रियोंकी रागरूप-कथा सुननेका त्याग) तन्मनोहरांगनिरीक्षणविरह अर्थात् स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोह अर्थात् पहिले उपभोग की हुई स्त्रियोंके स्मरण करनेका त्याग करना, वृष्येष्टरसानुभवनिरास अर्थात् पौष्टिक और इष्ट रसके अनुभव करनेका त्याग करना, और स्वशरीरसंस्कारवर्जन अर्थात् अपने शरीरके संस्कार करनेका त्याग करना ये पांच भावनाएं हैं।

मूर्छाको परिग्रह कहते हैं वाह्य और अभ्यंतर परिग्रहकी रक्षा करना उपार्जन करना आदि कार्योंमें प्रवृत्त होनेको मूर्छा कहते हैं। क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद (दास दासी) चतुष्पद (चौपाये) सवारी, सोने बैठनेकी पलंग कुरसी आदि चीजें, कुप्य (वस्त्रादि) और भांड (वर्तन आदि) दश प्रकारका वाह्य परिग्रह है, और वह भी चेतन अचेतनके भेदसे दो प्रकार का है। मिथ्यात्व क्रोध, मान, माया, लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा, वेद, (स्त्री लिंग नपुंसक लिंग पुंलिंग) राग और द्वेष यह चौदह प्रकारका अभ्यंतर परिग्रह है। इन दोनों

परिग्रहः। एतस्मान्मनसः कृतकारितानुमोदितेन वचसः कृतकारितानुमोदितेन कायस्य कृतकारितानुमोदितेन च विरतिरपरिग्रहलक्षणं व्रतं। तदेव सर्वमोक्षैकसाधनं सर्वेषां गुणानामलंकरणं, निष्परिग्रहव्रतिनं सर्वेऽपि सन्मानयन्ति, स सर्वैश्च समभिवन्दनीयः संपूजनीयश्च भवति, तस्य नामग्रहणेऽपि बद्धांजलिर्भवति लोकः। परिग्रहवान् यथा शकुनिगृहीतमांसखंडोऽन्येषां तदर्थिनां पतत्रिणामभिभवनीयः, तथा तस्करादीनामभिभवनीयो मार्यश्च भवति, परिग्रहार्जननिमित्तं निजाभिजनविद्यावृत्तं विहाय केचन जडधियो

प्रकारके परिग्रहोंका मनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, वचनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, और कायके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे इन नौ तरहसे त्याग कर देना परिग्रह त्याग व्रत है। यह परिग्रह त्याग व्रत ही स्वर्ग और मोक्षका साधन है तथा समस्त गुणोंको सुशोभित करनेवाला है। परिग्रह त्याग व्रतको धारण करनेवाले पुरुषका सभी लोग सन्मान करते हैं सभी लोग बंदना करते हैं, और सभी लोग पूजा करते हैं ऐसे पुरुषके नाम लेनेमात्र से ही उसकेलिये सब लोग अपने अपने हाथ जोड़ लेते हैं। जिस प्रकार किसी पक्षीके पास मांसका टुकडा हो तो उस मांसको चाहनेवाले अन्य पक्षी उसे त्रास देते हैं उसी प्रकार चोर आदि धनार्थी लोग भी अधिक परिग्रहवालेको त्रास देते हैं तथा मार डालते हैं। परिग्रहको इकट्ठा करनेके लिये अपने कुटुंबी, विद्या और चारित्रको छोडकर कितने ही मूर्ख लोग नीचता धारण करलेते हैं। जिस प्रकार ईंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार परिग्रहसे किसी को भी तृप्ति नहीं होती। लोभके वशीभूत होकर वह कार्य अकार्य आदि किसीका विचार नहीं कर सकता। परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होता है और यह लोभी है इस प्रकार वह निंदनीय गिना जाता है। इस लिये जो नीच वृत्तिसे उपार्जन किया जाय और जो अनित्य तथा दुःखका कारण है ऐसे

नीचतामुपगच्छन्ति, न चाऽस्य तृप्तिर्भवतीन्धनैरिवाऽग्नेर्लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति, प्रेत्य चाशुभां गतिमास्कन्दति, लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति नीचवृत्त्याऽसमुपार्जनीयमनित्यं दुःखकारणं परिग्रहं परित्यज्याकिंचन्यवृत्त्या नित्यमनंतसुखसाधनं मोक्षमार्गमुपार्जयन्त्यात्महितैषिणः । आकिंचन्यव्रतदृढिमार्थं पंच भावना भवन्ति ।

पंचानां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु रागवर्जनमनिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु द्वेषवर्जनमिति ।

एवमहिंसादिव्रतानां लक्षणं फलं गुणं तदभावे दोषभावनां च ज्ञात्वा यथा ममाप्रियं वधबन्धपरिपीडनं तथा सर्वसत्त्वानां, यथा मम मिथ्याख्यानकटुकपरुषादीनि वचांसि शृण्वतोतितीव्रं दुःखमभूतपूर्वमुत्पद्यते तथा सर्वजीवानां । यथा ममेष्टे द्रव्यवियोगे

परिग्रहको छोडकर आत्माका हित करनेवाले लोगोंको निष्परिग्रहवृत्ति धारण कर नित्य और अनंत सुखका साधन ऐसा मोक्षका मार्ग सदा उपार्जन करना चाहिये। इस आकिंचन्य व्रतको स्थिर करनेके लिये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और कर्ण इन पांचों इंद्रियोंके इष्ट विषय प्राप्त होने पर उसमें राग नहीं करना और अनिष्ट पदार्थोंके प्राप्त होनेपर द्वेष नहीं करना ये पांच भावनाएं हैं।

इस प्रकार अहिंसा आदि व्रतोंका लक्षण फल और गुणोंको समझकर तथा व्रतोंके अभाव में दोषोंकी प्राप्ति समझकर विचार करना चाहिये कि जिस प्रकार वध बंधन और पीडन मुझे अप्रिय हैं उसी प्रकार सब जीवोंको अप्रिय हैं जिस प्रकार मिथ्या वचन कटुक और कठोर वचन सुननेसे मुझे अभूतपूर्व और अत्यंत तीव्र दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार मेरे इष्ट पदार्थोंका वियोग होनेपर मुझे दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार किसी दूसरेके द्वारा मेरी स्त्रीका तिरस्कार होने पर मेरे हृदयमें अत्यंततीव्र पीडा होती है उसी प्रकार सब जीवोंको होती है। जिस प्रकार मुझे परिग्रहोंकी प्राप्ति न होने

मनुभूतमपूर्वमुपजायते तथा सर्वभूतानां। यथा मम कान्ताजनपरिभवे परकृते सति मानसी पीडाऽतितीव्रा जायते तथा सर्वप्राणिनां। यथा च मम परिग्रहेष्वप्राप्तेषु कांक्षोद्भवं प्राप्तेषु रक्षाजनितं विनष्टेषु शोकसमुत्थं दुःखमतितीव्रतरं भवति तथा च सर्वदेहिनां, अतो न हिनस्मि, नानृतं वदामि, नादत्तमाददे, नांगनां स्पृशामि, न परिग्रहमुपाददे इत्येवं प्रमत्तपरिणामयोगजनितं हिंसादिकं विहाया-प्रमत्तपरिणामादहिंसादिव्रतधारणे यत्नः कर्त्तव्यः।

समितिपालनं पूर्वमुक्तं। चतुर्विधकषायनिग्रहश्चोत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचेषु प्रतिपादितः।

दंडस्त्रिविधः, मनोवाक्कायभेदेन। तत्र रागद्वेषमोहविकल्पात्मा मानसो दंडस्त्रिविधः, तत्र रागः प्रेमहास्यरतिमायालोभाः। द्वेषः क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्साः। मोहो मिथ्यात्वत्रिवेदसहिताः प्रेमहास्यादयः। अनृतोपघातपैशून्यपरुषाभिशंसनपरितापहिंसनभेदा-

पर उनकी इच्छाजन्य अत्यंत तीव्र दुःख होता है उनकी प्राप्ति होनेपर रक्षा करनेका अत्यंत दुःख होता है और उनके नष्ट होने पर शोक उत्पन्न होनेका सबसे अधिक तीव्र दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवों के होता है। इसलिये मैं न तो किसी जीवकी हिंसा करूंगा, न झूठ बोलूंगा, न चोरी करूंगा, न स्त्रीका स्पर्श करूंगा और न परिग्रह ग्रहण करूंगा इसप्रकार प्रमत्त परिणामोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हिंसा आदि कार्योंको छोडकर अप्रमत्त परिणामों से होनेवाले अहिंसा आदि व्रतो के धारण करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

समितियों के पालन करनेका विधान पहिले कहा जा चुका है और चारो प्रकारके कषायों का निग्रह करना उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव और शौचमें प्रतिपादन कर चुके हैं।

मन वचन कायके भेदसे दंड तीन प्रकारका है और उसमें भी राग द्वेष मोहके भेदसे मानसिकदंड भी तीन प्रकारका है। प्रेम हास्य रति माया और लोभको राग कहते हैं, क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्साको द्वेष कहते हैं तथा मिथ्यात्व स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद प्रेम और हास्यादिक सब मोह कहलाता है। झूठ बोलना, वचनसे कहकर किसीके ज्ञानका घात करना,

कायदंडः सप्तविधः। प्राणिवधचौर्यमैथुनपरिग्रहाऽऽरंभताडनोग्रवेषविकल्पात्कायदंडोऽपि च सप्तविधः। गुप्तात्मना प्रयतमानेन दंडत्यागो त्रिविधः।

विषयाटवीषु स्वच्छन्दप्रधावमानेन्द्रियगजानां ज्ञानवैराग्योपवासाद्यंकुशाकर्षणेन वशीकरणमिन्द्रियजयः स चास्रवानुप्रेक्षायां वक्ष्यते।

संयमो ह्यात्महितस्तमनुतिष्ठन्निहैव पूज्यते। परत्र किमत्र वाच्यं। असंयतः प्राणिवधविषयमार्गेषु नित्यं प्रवृत्तो मूर्तिमदशुभकर्मैवायमिति साधुजनविनिन्दितो दुष्कर्म संचिनुते।

चुगली खाना, कठोर वचन कहना, अपनी प्रशंसा करना, संताप उत्पन्न करनेवाले वचन कहना और हिंसाके वचन कहना यह सात तरहका वचन दंड कहलाता है। प्राणियोंका बध करना, चोरी करना, मैथुन करना, परिग्रह रखना, आरंभ करना, ताडन करना, और उग्र वेष (भयानक) धारण करना इस तरह काय दंड भी सात प्रकारका कहलाता है। अपने आत्माको गुप्त रखनेके लिये पापोंसे छिपाने वा बचानेके लिये सदा प्रयत्न करनेवाले मुनियोंको इन तीनों प्रकारके दंडोंका त्याग कर देना चाहिये।

विषयरूपी वनमें स्वतंत्र रीतिसे दौडनेवाले इंद्रियरूपी हाथियोंको ज्ञान वैराग्य उपवास आदि अंकुशोंसे खींचकर वश करना इंद्रियविजय कहलाता है। इस इंद्रियविजयका विस्तार आस्रवानुप्रेक्षामें कहेंगे।

यह निश्चय है कि संयम धारण करना आत्माका हित करनेवाला है इसलिये जो संयमको धारण करता है वह इस लोकमें भी पूज्य गिना जाता है फिर भला परलोकको तो बात ही क्या है? वहां तो पूज्य होता ही है।

असंयमी पुरुष प्राणियोंकी हिंसा करना, विषय सेवन करना आदि कुमार्गोंमें ही सदा प्रवृत्त रहा करता है वह मूर्तिमान् साक्षात् अशुभ कर्म ही जान पडता है और इसीलिये सज्जनोंके

संयमिनो नैर्ग्रन्थ्यधारिणः पंचविधाः। पुलाकाः, वकुशाः, कुशीला, निर्ग्रन्थाः, स्नातकाश्चेति। तत्रोत्तरगुणभावनोपेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्कदाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवतोऽविशुद्धपुलाकसादृश्यात् पुलाका इत्युच्यन्ते। नैर्ग्रन्थ्यमुपस्थिता अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषणानुवर्त्तिनो वृद्धियशःकामाः शातगौरवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्च छेदशवलयुक्ताः वकुशाः। शवलपर्यायवाची वकुशशब्द इति। कुशीला द्विविधाः प्रतिसेवनाकुशीलाः, कषायकुशीलाश्चेति तत्राविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णमूलोत्तरगुणाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिनः प्रति-

द्वारा निंद्य गिना जाता है और अनेक दुष्कर्मोंको (पापरूप कर्मोंको) संचित करता रहता है।

निर्ग्रंथ (परिग्रह रहित) अवस्थाको धारण करनेवाले संयमी पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रंथ और स्नातकके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। जिसप्रकार पुलाक (छिलका सहित चावल) विल्कुल शुद्ध नहीं हो सकता उसीप्रकार जो विल्कुल शुद्ध न हों अर्थात् जिनके मनमें उत्तर गुणोंके धारण करनेकी भावना विल्कुल न हो और व्रतोंमें भी किसी जगह किसीसमय पूर्णता प्राप्त न कर सकें ऐसे मुनियोंको पुलाक मुनि कहते हैं। जिन्होंने निर्ग्रन्थ अवस्था धारण की है तथा जिनके व्रत अखंडित वा पूर्ण हैं परन्तु जो शरीर और उपकरणोंकी सुन्दरताका अनुराग रखते हैं (प्रभावनाके लिए) अपने यशकी वृद्धि चाहते हैं, परिवार अर्थात् अपने संघसे कभी अलग रहना नही चाहते इसलिये परिवारसे (संघसे) उत्पन्न हुए हर्षरूपी छेदसे जो चित्र वर्णता (चित्रलाचरण) धारण करते हैं और जो अच्छी तरह रहने वा सुन्दरतामें ही अपना गौरव समझते हैं उन्हें वकुश कहते हैं। शवल अर्थात् चित्रविचित्र वा अनेक रंगवालेको ही वकुश कहते हैं। भावार्थ—जो रागसहित चारित्र धारण करे उसे वकुश कहते हैं।

कुशील दो प्रकारके होते हैं—एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरे कषाय कुशील। जो परिग्रहोंसे अलग नहीं हुए हैं अर्थात् कमंडलु पीछी संघ गुरु आदिसे जिन्होंने अपना मोह नहीं छोड़ा है,

सेवनाकुशीला ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादि सेवनवदिति । वशीकृतान्यकषायोदयाः संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीला इति । यथोदके दंडराजि-राशेव विलयमुपयाति तथाऽनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रंथा इति ज्ञानावरणादिघातिकर्म-क्षयादाविर्भूतकेवलज्ञानाद्यतिशयविभूतयः सयोगिशीलेशिनो नवलब्ध्यास्पदाः केवलिनः स्नातका इति । एते प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यमचारित्रभेदे सत्यपि नैगमनयापेक्षया पंचापि निर्ग्रन्था इत्युच्यंते । यथा षोडशत्रयोदशदशवर्णिकादिषु सुवर्णशब्दोऽविशिष्टो वर्त्तते तथा निर्ग्रन्थ शब्दोऽपि । सम्यग्दर्शनं निर्ग्रन्थरूपं च भूषावेषायुधरहितं तत्सामान्ययोगात्सर्वेषु पुलाकादिषु निर्ग्रन्थशब्दो युक्तः ।

जिनके मूलगुण और उत्तरगुण दोनों ही परिपूर्ण हैं परंतु किसी तरह जो उत्तरगुणों की विराधना कर डालते हैं उनको प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। प्रतिसेवना कुशील मुनि गर्मियोंके दिनोंमें जंघाप्रक्षालन आदि कर लेते हैं यही उनकी उत्तरगुणों की विराधना है। जिनके अन्य सब कषायों का उदय वश हो गया है केवल संज्वलन कषायका उदय बाकी है उनको कषाय-कुशील कहते हैं। जिसप्रकार पानीमें लकडीकी रेखा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है उसीप्रकार जिनके कर्मोंका उदय व्यक्त वा प्रकट नहीं है और एक मुहूर्तके बाद ही जिन्हें केवल ज्ञान प्रगट होनेवाला है उनको निर्ग्रंथ कहते हैं। ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंके नाश होनेसे जिनके केवलज्ञान आदि अतिशय और विभूतियां प्रगट हो गई हैं जो सयोग केवली नामक तेरहवे गुणस्थानके स्वामी हैं और क्षायिक नौ लब्धियोंको धारण करते हैं ऐसे केवलज्ञानियोंको स्नातक कहते हैं। यद्यपि इनमें किसीके उत्तम चारित्र है किसीके मध्यम है और किसीके जघन्य है इसप्रकार इनके चारित्रमें भेद है तथापि नैगम नयकी अपेक्षासे पांचों ही निर्ग्रंथ कहे जाते हैं। जिसप्रकार सोलह ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है और तेरह तथा दश ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है उसीप्रकार निर्ग्रन्थ शब्द भी समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन

लिंग,लेश्या,उपपाद:,स्थानानीति विकल्पतः पुलाकादयः साध्याः तत्र संयमे पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीलाः द्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवन्ति । कषायकुशीलाः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययोश्च भवन्ति निर्ग्रन्था स्नातकाश्चैकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे भवन्तीति । श्रुते पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः कषायकुशीलाः निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु,वकुशकुशीलनिर्ग्रन्थानां श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः, स्नातका अपगतश्रुताः केवलिनः ।

और आभूषण,वेष (वस्त्र) तथा शस्त्रोंसे रहित निर्ग्रन्थपना ये दोनों ही साधारण रीतिसे सब मुनियोंमें रहते हैं इसलिये पुलाक आदि सब तरहके मुनियोंमें निर्ग्रन्थ शब्द चरितार्थ होता है।

उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकता और चारित्रकी विशेषता धारण करनेवाले पुलाकादि निर्ग्रन्थोंका संयम आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा व्याख्यान करना चाहिये। यही वात आगे दिखलाते हैं। संयम, श्रुत; प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठों भेदोंके द्वारा पुलाकादिकोंको सिद्ध करना चाहिये और वह इस तरह, संयमके द्वारा—पुलाक वकुश और प्रतिसेवना कुशील ये सदा सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमोंमें रहते हैं। कषायकुशील सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमोंमे रहते हैं। निग्रंथ और स्नातक एक ही यथाख्यात संयममें रहते हैं । श्रुतके द्वारा—पुलाक वकुश और प्रतिसेवनाकुशीलके उत्कृष्ट श्रुतज्ञान अभिन्नाक्षर दश पूर्वतक होता है। कषाय कुशील और निग्रंथोंके चौदह पूर्व तक होता है। जघन्य श्रुतज्ञान पुलाकके आचारवस्तुतक होता है। (आचारवस्तु आचारांगका एक भाग है) वकुश कुशील और निर्ग्रन्थोंके जघन्य श्रुतज्ञान अष्ट प्रवचनमातृका तक होता है। (आचारांगमें एक अधिकार पांच समिति और

प्रतिसेवनायां पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । वकुशो द्विविधः,उपकरणवकुशः शरीरवकुशश्चेति तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तो बहुविशेषोपयुक्तोपकरणाकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणवकुशो भवति,शरीरसंस्कारसेवी शरीरवकुशः प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगुणेषु कांचिद्विराधनां प्रतिसेवते। कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानां प्रतिसेवना नास्ति । तीर्थे—सर्वेषां तीर्थकराणां तीर्थेषु भवन्ति। लिंगे, द्रव्यभावभेदाल्लिंग द्विविधं,

तीन गुप्तिके व्याख्यान करनेका है उस अधिकार तक को अष्ट प्रवचनमातृका कहते हैं) स्नातकोंके कोई श्रुतज्ञान नहीं होता क्योंकि वे केवली होते हैं। प्रतिसेवनाके द्वारा—प्रतिसेवना विराधनाको कहते हैं। पुलाक मुनिके पांचों मूलगुण (महाव्रत) और रात्रिभोजन त्याग इन छह व्रतोंमें से दूसरेकी जबर्दस्तिसे किसी एकमें विराधना होती है। वकुश दो प्रकारके हैं एक उपकरण वकुश और दूसरे शरीर वकुश। जिसके चित्तमें पीछी, कमंडलु बंधन आदि धर्मोपकरणकी अभिलाषा रहती है जो अनेक तरहके चित्रविचित्र परिग्रहोंको (पीछी कमंडलु पुस्तक बंधन आदि परिग्रहोंको) धारण करता है विशेष उपयोगी बहुतसे उपकरणों की आकांक्षा रखता है और उनके संस्कारसे विराधना करता है ऐसे मुनिको उपकरण वकुश कहते हैं। शरीर के संस्कारों की सेवा करनेवाला मुनि शरीर वकुश कहलाता है। प्रतिसेवना कुशील नामका मुनि मूलगुणोंकी विराधना तो नहीं करता किन्तु उत्तरगुणोंकी कुछ विराधना करता है। कषायकुशील, निर्ग्रंथ और स्नातकोंके विराधना नहीं होती। तीर्थके द्वारा—ये सब तरहके मुनि समस्त तीर्थकरोंके तीर्थोंमें होते हैं। लिंग दो प्रकारका है एक भाव लिंग

१—त्याग की वस्तुको कारण पाकर ग्रहण कर लेना और फिर तत्काल ही सावधान होकर उसका त्याग कर देना प्रतिसेवना वा विराधना कहलाती है।

भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंचाऽपि निर्ग्रन्था लिंगिनो भवन्ति, द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः। लेश्यायां पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवन्ति बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि, कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धस्य चतस्र उत्तराः, सूक्ष्मसांपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति, अयोगिनः शैलेशितां प्रतिपन्ना अलेश्याः। उपपादे, पुलाकस्योत्कृष्ट उपपादोऽष्टादशसागरोपमोत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे, बकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयोः, कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपस्थितिषु

और दूसरा द्रव्य लिंग। भावलिंगकी अपेक्षासे पांचो प्रकारके सब ही मुनि निर्ग्रंथ लिंगको धारण करते हैं तथा द्रव्यलिंगकी अपेक्षासे (१) सबका अलग २ विभाग कर लेना चाहिए।

लेश्याके द्वारा—पुलाकके पीत पद्म शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं। वकुश और प्रतिसेवना कुशीलके छहों लेश्याएं होती हैं। कषायकुशील और परिहारविशुद्धिवालेके कापोत पीत पद्म और शुक्ल ५ चारों लेश्याएं होती हैं। सूक्ष्मसांपराय निर्ग्रन्थ और स्नातकके एक शुक्ल ही लेश्या होती है। मोक्षरूपी पर्वतके स्वामीपनेको प्राप्त हुए अयोगकेवली लेश्यारहित होते हैं अर्थात् उनके कोई लेश्या नही होती। उपपादके द्वारा—पुलाक मुनिका उत्कृष्ट उपपाद अठारह सागरकी उत्कृष्ट आयुवाले देवोंमें सहस्रार स्वर्गतक होता है। भावार्थ—पुलाक मुनि शरीर छोडकर अधिकसे अधिक सहस्रार स्वर्गतक उत्पन्न हो सकता है। वकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि बाईस सागरकी आयु पाकर आरण और अच्युत स्वर्गतक उत्पन्न हो सकते हैं। कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ जातिके मुनि तेतीस सागरकी आयु पाकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न

१—द्रव्य लिङ्गकी अपेक्षासे—कोई आहार करता है, कोई उपवास करता है, कोई उपदेश करता है, कोई अध्ययन करता है, कोई तीर्थ विहार करता है, कोई अनेक आसनोंसे ध्यान करता है, किसीके दोष लगता है, किसीके नही लगता, कोई प्रायश्चित्त लेता है, कोई आचार्य है, कोई निर्यापक है, कोई केवली है इत्यादि बाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा अनेक तरहसे लिङ्ग भेद होता है।

सर्वार्थसिद्धौ च, सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु, स्नातकस्य निर्वाणमिति । स्थानेऽसंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति । तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशीलयोस्तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतः, ततः पुलाको व्युच्छिद्यते । कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि गच्छत्येकाकी ततः कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलवकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति, ततो वकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत ऊर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते, सोऽसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते,

हो सकते हैं। इन सबका जघन्य उपपाद दो सागरकी आयु लिये हुए सौधर्म स्वर्ग है अर्थात्
ये मुनि कमसे कम दो सागरकी आयु पाकर सौधर्म स्वर्गमें तो उत्पन्न होते ही हैं। स्नातक
मुक्त ही होता है।

स्थानके द्वारा कषायोंके निमित्तसे संयमके असंख्यात स्थान होते हैं उनमें से सबसे जघन्य लब्धिस्थान पुलाक और कषाय कुशीलके होते हैं वे दोनों ही असंख्यात स्थानतक तो साथ साथ रहते हैं परंतु फिर पुलाक अलग हो जाता है उसके बाद कषाय कुशील असंख्यात स्थान तक अकेला हो जाता है। उसके बाद कषायकुशील, प्रतिसेवना कुशील और वकुश असंख्यात स्थानतक साथ साथ जाते हैं फिर वकुश वहीं रह जाता है उसके बाद असंख्यात स्थानतक जाकर प्रतिसेवना कुशील ठहर जाता है उससे आगे भी असंख्यात स्थान जाकर कषाय कुशील रह जाता है। इसके बाद अकषाय स्थान हैं उन्हें निर्ग्रंथ प्राप्त करता है। वह भी असंख्यात स्थान जाकर अलग हो जाता है उसके बाद एक स्थान ऊपर जाकर स्नातक मुक्त होता है। इन सबके उत्तरोत्तर संयमकी प्राप्ति अनंतगुनी होती है।

इसप्रकार संयमका वर्णन किया।

अत ऊर्ध्वमेकस्थानं गत्वा स्नातका निर्वाणं प्राप्नुवन्तीत्यथवा क्रमलब्धानन्तगुणा भवन्ति । अथ परीषहजयप्रकरणं प्रस्तौति ।

संयतेन तपस्विना दर्शनचारित्ररक्षणार्थं परिषोढव्याः परीषहाः । उक्तं हि—

परिषोढव्या नित्यं दर्शनचारित्ररक्षणे निरतैः । संयमतपोविशेषास्तदेकदेशाः परीषहाख्याः स्युः ॥

इत्युक्तवान्संयमतपसोर्मध्ये परीषहा उच्यन्ते । कर्मागमद्वाराणि संवृण्वंतो जैनेन्द्रान्मार्गान्मा च्योष्महीति पूर्वमेव परीषहाग्निजयन्तो जितपरीषहाः संतस्तैरनभिभूयमानाः प्रधानसंवरमाश्रित्याप्रतिबंधेन क्षपकश्रेण्यारोहणसामर्थ्यं प्रतिपद्यन्ते । अभिन्नोत्साहाः

अब आगे परीषहजय प्रकरणको कहते हैं—

संयमी तपस्वीको सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की रक्षा करनेकेलिये परिषहोंको सहन करना चाहिए । लिखा भी है—परिषोढव्या इत्यादि । दर्शन और चारित्रकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहनेवाले मुनियोंको सदा परिषहोंको सहन करना चाहिये । क्योंकि ये परीषहें संयम और तप दोनोंका ही विशेषरूप हैं तथा उन्हीं दोनोंका एक देश हैं ।

इसप्रकार शास्त्रोमें लिखा है और इसलिये इस ग्रंथमें ये परिषहें संयम और तप दोनोंके मध्यमें कही गई हैं । जो साधु कर्मोंके आनेके मार्गको बंद कर देते हैं तथा "मैं श्रीजिनेंद्रदेवके कहे हुए मार्गसे कभी च्युत न होऊं" इसलिये जो पहलेसे ही परिषहोंको जीतते रहते हैं इसतरह परिषहोंको जीतकर जो कभी परिषहोंसे तिरस्कृत नहीं होते और मुख्य संवरका आश्रय लेकर विना किसी रुकावटके क्षपकश्रेणी चढनेकी सामर्थ्य प्राप्त करते हैं । जिसप्रकार पक्षी अपने पंखोंपर लगी हुई धूलको झाडकर ऊपरको उड जाते हैं उसीप्रकार जिनका उत्साह सदा पूर्ण रहता है और जो समस्त सांपराय आस्रवको नाश करनेकी शक्ति रखते हैं ऐसे मुनिराज अपने ज्ञान और ध्यानरूपी कुल्हाडीसे जड काट कर कर्मोंको गिरा देते हैं—नष्ट

अकक्षमापराधिकप्रध्वंसनशक्यो ज्ञानध्यानपरशुच्छिन्नमूलानि कर्माणि विधूय अस्फोटितपक्षरेणव इव पतत्रिणा ऊर्ध्वं व्रजतीत्येवमर्थं परिषोढव्याः परीषहाः।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानीति क्षुधादयो द्वाविंशतिपरीषहाः। त एते बाह्याभ्यंतरद्रव्यपरिणामाः शारीरमानसप्रकृष्टपीडाहेतवस्तद्विजये विदुषा संयतेन तपस्विना मोक्षार्थिना प्रयत्नः कार्यः। तद्यथा–निवृत्तसंस्कारविशेषस्य शरीरमात्रोपकरणस्यन्तुष्टस्य तपसंयमविलोपं परिहरतः कृतकारिता-

कर डालते हैं और फिर मुक्त होकर ऊपरको गमन कर जाते हैं इसीके लिये (मुक्त होनेके लिए) परिषहोंका सहन करना आवश्यक है।

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, बध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये बाईस परिषहें कही जाती हैं। ये परिषहें बाह्य और अभ्यंतर द्रव्योंके परिणामोंसे प्रगट होती हैं तथा शरीर और मनको सबसे कठिन पीडा देती हैं इसलिये इनका विजय करनेके लिये विद्वान और मोक्षकी इच्छा करनेवाले संयमी तपस्वीको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। वह प्रयत्न किस प्रकार करना चाहिये यही आगे बतलाते हैं—

जिन्होंने शरीरके विशेष संस्कार सब छोड दिये हैं जो केवल शरीर मात्रको ही धर्मका उपकरण मानकर उसीसे संतुष्ट रहते हैं, जो तप और संयमके विघ्नोंको सब तरहसे दूर करते रहते हैं। कृत, कारित, अनुमत, संकल्पित, उद्दिष्ट, संक्लिष्ट, क्रियागत, प्रत्यादत्त, पूर्वकर्म, पश्चात्कर्म इन दश प्रकारके दोषोंमेंसे कोई भी दोष लग जानेसे जो उसी समय आहारका त्याग कर देते हैं तथा, जो देश काल और देशकी व्यवस्थाकी भी अपेक्षा रखते हैं उनके उपवास,

नुमतसकाल्पतादिष्टसाक्लिष्टक्रयागतप्रत्याद्दत्तपूर्वकमपश्चात्कर्मदशविधदोषविप्रमुक्त षणस्य देशकालजनपदव्यवस्थापन्नस्यानशनाध्वरोगतपः स्वाध्यायश्रमवेलातिक्रमावमोदर्यासद्वेद्योदयादिभ्यो नानाऽऽहारेन्धनोपरमे जठरांत्रदाहिनीमारुतांदोलिताऽग्निशिखेव समंताच्छरीरेन्द्रियहृदयसंक्षोभकरी क्षुदुत्पद्यते । तस्याः प्रतीकारं त्रिप्रकारमकाले संयमविरोधिभिर्वा द्रव्यैः स्वयमकुर्वतोऽन्येन क्रियमाणमसेवमानस्य मनसा वाऽनभिसंदधतो दुस्तरेयं वेदना महांश्च कालो दीर्घमह इति विषादमनापद्यमानस्य त्वगस्थिसिरावितानमात्रकलेवरस्यापि

मार्गका परिश्रम, रोगका परिश्रम, तपश्चरणका परिश्रम, स्वाध्यायका परिश्रम, आहारके समयका उल्लंघन हो जाना, अवमोदय अर्थात् कम भोजन करना, और असाता वेदनीय कर्मका उदय इन सब कारणोंके द्वारा अनेक आहाररूपी इंधनों से वंचित रह जानेपर (कितने ही दिनतक आहार न मिलनेपर) पेटकी आंतों की दाहिनी ओरकी वायुके आंदोलनसे बढी हुई अग्निकी शिखाके समान चारो ओरसे शरीर, इंद्रिय, और हृदयको क्षोभ उत्पन्न करनेवाली क्षुधा उत्पन्न होती है उस क्षुधाका प्रतीकार मन वचन काय तीनों से असमयमें संयमकी विराधना करनेवाले द्रव्यों से न तो वे स्वयं करते हैं न करनेवाले अन्य किसीको करने देते हैं और न मनमें कभी भी उस क्षुधाका प्रतीकार करनेके लिए विचार करते हैं। यह क्षुधाकी वेदना वा भूखका दुःख बडा ही कठिन है, समय बहुत बडा है और अभी दिन बहुत बाकी है इसप्रकार का विषाद वा खेद भी कभी नहीं करते, शरीरमें केवल चमडा, हड्डी, और नसों का जालमात्र रह जानेपर भी आवश्यक कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं। क्षुधाके कारण जिन्हें अनेक अनर्थ प्राप्त हुए हैं ऐसे जेलखाने वा हिरासतमें रोके हुए मनुष्य अथवा पिंजडों में पडे हुए पशु पक्षी आदि भूखसे पीडित रहनेवाले और परतंत्र रहनेवालों के दुःखों का सदा विचार करते रहते हैं ऐसे ज्ञानी मुनिराज शांत परिणामरूपी घडेमें भरे हुए धैर्यरूपी जलसे क्षुधारूपी अग्निको शांत

सतः आवश्यकक्रियादिषु नित्योद्यतस्य क्षुद्वशप्राप्तानर्थावारकबंधस्थमनुष्यपंजरगततिर्यक्प्राणिनः क्षुदभ्यर्दितान्परतंत्रानपेक्षमाणस्य ज्ञानिनो धृत्यंभसा समकुंभधारितेन क्षुदग्निं शमयतस्तत्कृतपीडां प्रत्यविगणनं क्षुज्जय इत्युच्यते ॥

जलस्नानावगाहनपरिषेकत्यागिनः पतत्त्रिवदनियतासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्षविरुद्धाहारग्रैष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथि पिपासां प्रत्यनाद्रियमाणप्रतीकारमनसो निदाघे पटुतपन किरणसंतापिनोष्यटव्यामासन्नेष्वपि ह्रदेष्वप्कायजीव-

करते रहते हैं और इस तरह उस क्षुधासे उत्पन्न हुई पीडाको बिल्कुल नहीं जानते उसको क्षुधा विजय अथवा क्षुधा परीषहका जीतना कहते हैं।

जो मुनिराज पानीसे स्नान करना, पानीमें अवगाहन करना, वा पानीका छिडकना आदि बातोंके त्यागी हैं, पक्षियों के समान न तो जिनका कोई आसन ही निश्चित है और न कोई स्थान ही निश्चित है भोजनमें अधिक लवण खा लेनेसे, चिकने रूखे अथवा और किसी तरहके विरुद्ध आहारका संयोग मिल जानेसे वा गर्मी धूप पित्तज्वर उपवास आदि अनेक कारणोंके द्वारा जो शरीर और इंद्रियों को अत्यंत त्रास देनेवाली प्यास लगती है उसके प्रतीकार करनेका विचार वे कभी मनमें भी नहीं लाते, गर्मीका समय है, सूर्यकी तेज किरणें जला रही हैं, वनमें सरोवर भी पास है तो भी जलकायिक जीवों के बचाव करनेकी इच्छासे कभी जल ग्रहण नहीं करते जल सींचनेके विना मुरझाई हुई लताके समान मुरझाई हुई वा ग्लानि करने योग्य बुरी दशाको प्राप्त हुई शरीररूपी लकडीको कुछ भी न गिनते हुए तपश्चरणके पालन करनेमें ही तत्पर रहते हैं भिक्षा करनेके समय भी किसी इशारे वा आकारसे योग्य पानीको पीनेके लिये भी प्रेरणा नहीं करते और परम धैर्यरूपी घडेमें भरे हुए शीतल सुगंधित प्रतिज्ञा रूपी जलसे जो प्यासरूपी अग्निकी शिखाको बुझाते हैं उनके संयममें तत्पर रहनेवाला पिपासाविजय

परिहारेच्छया जलमनाददानस्य सलिलसेकविवेकम्लानां लतामिव ग्लानमुपागतां गात्रयष्टिमवगणय्य तपःपरिपालनपरस्य भिक्षाकालेऽपींगिताकारादिभिर्योग्यमपि पानं पातुं परमचोदयतः परमधैर्यकुंभधारितशीतलसुगन्धिप्रतिज्ञातोयेन विध्यापयतस्तृष्णाग्निशिखां संयमपरत्वं पिपासासहनमित्यवसीयते।

परित्यक्तवाससः पक्षिवदनवधारिताऽऽलयस्य शरीरमात्राधिकरणस्य शिशिरवसंतजलदागमादिकालवशाद् वृक्षमूले पथि गुहादिषु पतितप्रालेयतुषारलवव्यतिकरशिशिरपवनाभ्याहतमूर्त्तेस्तत्प्रतिक्रियासमर्थद्रव्यान्तराग्न्याद्यनभिसंधानान्नारकदुःसहशीतवेदनाऽनु-

अथवा पिपासा परिषहका सहन करना कहलाता है।

जिन्होंने वस्त्रमात्रका त्याग करदिया है पक्षियोंके समान जिनका कोई स्थाननिश्चित नहीं है जाडे गर्मी और वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे चौहटे तथा गुफा आदिकोंमें रहनेसे जाडेके दिनोंमें जो बहुतसा वर्फ वा ओस पडती है, तथा बहुतसे ओले बरसते हैं उनकी ठंडी वायुसे जिनका शरीर अत्यंत ठंडा हो रहा है उस ठंडकको दूर करनेका सामर्थ्य रखनेवाले अग्नि आदि अन्य द्रव्योंकी भरपूर अनिच्छा होनेसे नारकियोंकी शीत वेदनाके घोर दुःखोंका स्मरण करनेसे तथा उस ठंडकको दूर करनेका उपाय करनेमें परमार्थके बिगडनेका भय होनेसे, विद्या मंत्र औषध पत्ते, छाल, चमडा, तृण आदि पदार्थोंके संबंधसे जिनका चित्त बिल्कुल हट गया है जो शरीर को बिल्कुल दूसरा (आत्मासे भिन्न) मानते हैं, जिन्होंने एक प्रकारका अटल धैर्य रूपी वस्त्र ही ओढ रक्खा है मुनि होनेके पहिले जो ऐसे भीतरी घरोंमे रहते थे जिनमें चारो ओर धूप जल रही थी, पुष्पोंके ढेर लग रहे थे, दीपकका प्रकाश हो रहा था और नवयौवन उत्तम स्त्रियोंके उष्ण स्तन नितंब और भुजाओंके मध्य भागमें रहनेसे शीत दूर ही से भागरहा था ऐसे घरोंमें सुरतसुखका आनंद लेते हुए निवास करते थे परंतु अब उस अनुभूत सुखमें भी कुछ

स्मरणात् तत्प्रतिचिकीर्षायां परमार्थविलोपभयाद्विद्यामंत्रौषधपर्णवल्कलत्वक्तृणाजिनादिसंबंधात् व्यावृत्तमनसः परकीयमिव देहं
मन्यमानस्य धृतिविशेषप्रावरणस्य गर्भागारेषु धूपप्रवेकपुष्पप्रकरप्रकल्पितप्रदीपप्रभेषु वरांगनानवयौवनोष्मघनस्तननितंबभुजान्तरत-
जितशीतेषु निवासः सुरतसुखाकरमनुभूतमसारत्वावबोधादस्मरतो विषादविरहितस्य संयमपरिपालनं शीतक्षमेति भाष्यते
प्रत्यग्रेण पटीयसा भास्करकिरणसमूहेन सन्तापितशरीरस्य तृष्णानशनपित्तरोगघर्मश्रमप्रादुर्भूततैक्ष्ण्यस्य खेदशोषदाहाऽभ्यर्दि-
तस्य जलभवनजलावगाहनानुलेपपरिषेकार्द्रावनितलोत्पलदलकदलीपत्रोत्क्षेपमारुतजलतूलिकाचन्दनद्रवचन्द्रपादकमलकल्हारमुक्ताहारा-

सार न होनेसे कभी उसका स्मरण तक नहीं करते हैं तथा इस प्रकारकी शीत वेदनाको
सहन करते हुए भी कभी विषाद नहीं करते हैं और इस तरह संयमका परिपालन पूर्ण रीतिसे
करते हैं उसको शीतविजय अथवा शीत परिषहका सहन करना कहते हैं।

अत्यंत उष्ण और बहुत तेज सूर्यकी तेज किरणोंसे जिनका शरीर सब संतप्त हो गया
हैं, प्यास, उपवास, पित्त, रोग, धूप, परिश्रम आदि कारणोंसे जिनके शरीरमें उष्णता प्रगट हो
रही है जो खेद शोष और दाहसे मर्दित हो रहे हैं, मुनि होनेके पहिले जो जलभवनमें रहते थे,
जलमें अवगाहन करते थे, शरीरपर ठंडा लेप लगाते थे, शरीरको गुलाबजल आदिसे छिडकते
थे, जमीनपर छिडका कर बैठते थे, कमलोंके दल, केलोंके पत्ते बिछाते थे, ऊपरसे वायु झलते
थे, जलकी बावडीमें क्रीडा करते थे, चंदनका लेप करते थे, चंद्रमाकी चांदनीमें बैठते थे, कमल
कमोदनी, और मोतियोंके हार पहिनते थे, इत्यादि बहुतसे शीतल पदार्थों को काममें लाते
थे परंतु अब भोगे हुए पदार्थोंसे भी जिन्होंने अपना चित्त बिल्कुल हटा लिया है, जो सदा यही
विचार करते रहते हैं कि मैंने परवश होकर अनेकवार अत्यंत तीव्र उष्णवेदनाएं सहन की परंतु

दिपूर्वाद्भूतशीलद्रव्यप्रार्थनाऽपेतचेतस उष्णवेदनाति तीव्रा बहुकृतः परवशादवाप्ता इदं पुनस्तपो मम] कर्मनाशकारणमिति तद्विरोधिनीं क्रियां प्रत्यनादराच्चारित्ररक्षणमुष्णसहनमिति समाम्नायते ।

प्रत्याख्यानशरीराच्छादनस्य कस्यचिदप्रतिबद्धचेतसः परकृतायतनगुहागह्वरादिषु रात्रौ दिवा वा दंशमशकमक्षिकाविशुक्युतिकाम-कुणपीटपिपीलिकावृश्चिकादिभिस्तीक्ष्णपातैर्भक्ष्यमाणस्यातितीव्रवेदनोऽपि तदाकल्पयतो मनसः स्वकर्मविपाकमनुचिन्तयतो विद्यामन्त्रौष-धादिभिस्तन्निवृत्तिं प्रति निरुत्सुकस्याऽऽशरीरपतनादपि निजात्मनः परत्र तदर्थं प्रति वर्त्तमानस्य मदांधगंधसिंधुरस्य रिपुजन-प्रेरितविविधशस्त्रप्रतिघातादपराङ्मुखस्य निष्प्रत्यूहविजयोपलम्भनमिव कर्मारातिनिपुणतापराभवं प्रति प्रयतनं दंशमशकादिबाधा-

आप स्वयं इस वेदनाको सहन करना तो मेरा तपश्चरण है जो कि कर्मोंके नाश करनेका कारण है इसी लिये जो उष्णताको दूर करनेवाली क्रियाओंके प्रति कभी आदर भाव नहीं करते और इस तरह अपने चारित्रकी रक्षा पूर्ण रीतिसे करते हैं इसको उष्णविजय अथवा उष्ण परिषहको जीतना वा सहन करना कहते हैं ॥४॥

जिन्होंने सब तरहके शरीरके आच्छादनोंको त्याग करदिया है, जिनका हृदय किसी एक जगह बंधा हुआ नहीं है, दूसरोंके बनाये हुए वसतिका, गुफा, कोटर, आदि स्थानोंमें रहनेसे रात्रि वा दिनमें डांस, मच्छर, मक्खी, पिस्सू, मधुमक्खी, खटमल कीडे, चींटी और विच्छू आदि तीक्ष्ण जानवर जिन्हें काट रहे हैं और अत्यंत तीव्र वेदना दे रहे हैं तथापि जिनका हृदय कभी व्यथित वा खिन्न नहीं होता, जो सदा अपने कर्मोंके उदयका चिंतवन करते रहते हैं, विद्या मंत्र औषधि आदिके द्वारा उन जानवरोंको जो कभी दूर करनेकी इच्छा नहीं करते शरीरका नाश होने तक भी जो अपने आत्मामें ही निश्चल रहते हैं जिस प्रकार जो दूसरेके

सहनमप्रतीकारमित्याख्यायते । दंशमशकमात्रमहणमुपलक्षणार्थं, तेन दंशमशकादिपरितापकारणस्य सर्वस्यैवेदमुपलक्षणं, यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामिति ।

गुप्तिसमित्याविरोधपरिग्रहनिवृत्ति परिपूर्णब्रह्मचर्यमप्रार्थितमोक्षसाधनं चारित्रानुष्ठानं यथाजातरूपमसंस्कृतमविकारं मिथ्यादर्शनाविष्टविद्विष्टं परममांगल्यं नाग्न्यमभ्युपगतस्य स्त्रीरूपाणि नित्याशुचिवीभत्सकुणपभावेन पश्यतो वैराग्यभावनावरुद्धमनोधिक्रियस्यासंभावितमनुष्यत्वस्य नाग्न्यदोषासंस्पर्शात्परीषहजयसिद्धिरिति जातरूपधारणमुत्तमश्रेयः प्राप्तिकारणमित्युच्यते । इतरे पुनर्मनोवि-

बलको मर्दन करनेके लिये (चूर करनेकेलिये) तैयार हैं जिसकी सेनामें मदोन्मत्त गंधसिंधुर नामके हाथी हैं और जो शत्रुओंके द्वारा चलाये हुए अनेक तरहके शस्त्रोंसे भी कभी विमुख नहीं होता ऐसे किसी राजाका विजय निर्विघ्न होता है उसी प्रकार जो कर्मरूपी शत्रुओंकी सेनाका पराभव करनेके लिये प्रयत्न करना दंशमशकबाधासहन अथवा दंशमशक परीषहका जीतना कहलाता है। यहांपर दंशमशकका ग्रहण उपलक्षणसे किया है जैसे कौवेसे दहीकी रक्षा करना यह उपलक्षण है इसका अभिप्राय यह है कि कौवेसे तथा कुत्ता विल्ली आदि सबसे दहीकी रक्षा करना उसी प्रकार डांस मच्छरकी परीषह सहन करनेका अभिप्राय डांस मच्छर विच्छू मक्खी आदि सभी जानवरोंकी परीषह सहन करना है । ॥५॥

जो गुप्ति समितियोंका कभी विरोध नहीं करता परिग्रहका विल्कुल त्याग कर देता है और ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है, विना प्रार्थनाकिये ही जो मोक्षका साधन है चारित्रका अनुष्ठान करनेवाला है जिसका स्वरूप पैदा हुएके समान स्वाभाविक है विना संस्कार किया हुआ और विकार रहित है, मिथ्यादर्शनसे जकडे हुए लोगोंका विरोधी है और परम मंगलरूप है ऐसे नाग्न्यको (नग्न अवस्थाको) जो धारण करते हैं जो स्त्रियोंके स्वरूपको सदा

क्रियां निरोद्धुमसमर्थास्तत्पूर्विकामंगविकृतिं निगूहितुकामाः कौपीनफलकचीवराद्यावरणमातिष्ठंते ऽगसंवरणार्थमेव, तत्र कर्मसंवरणकारणं ।

संयतस्य क्षुधाद्याऽऽबाधासंयमपरिरक्षणेंद्रियदुर्जयत्वव्रतपरिपालनभारगौरवसर्वदाऽप्रमत्तत्वदेशभाषांतरानभिज्ञत्वविषमचपलसत्वप्रचुरभीमदुर्गनियतैकविहारत्वादिभिररतिं प्रादुष्यन्ती [!] धृतिविशेषान्निवारयतः संयमे रतिभावनाद्विषयसुखरतिमतिविषमाहारसेवेव विपाककटुकेति चिन्तयतोऽरतिपरीषहबाधाऽभावादरतिपरीषहजय इति निश्चीयते ।

अपवित्र, वीभत्स और घृणित भावसे देखते हैं वैराग्य भावनाओंके द्वारा जिनके मनके विकार सब रुक गये हैं जो अपनी मनुष्य पर्यायका कभी विचार नहीं करते केवल आत्मामें ही लीन रहते हैं उनके नग्न रहनेसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका स्पर्श न होनेसे नग्न परीषहके विजय होने की सिद्धि होती है अर्थात् नग्न परिषहका विजय करना वा सहन करना कहलाता है इसीलिये नग्न अवस्था धारण करना उत्तमसे उत्तम कल्याण अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिका कारण कहा जाता है। जो लोग नग्न अवस्था धारण नहीं कर सकते वे मनके विकारोंको रोक नही सकते इसीलिए उन विकारोंके कारण उत्पन्न हुए शरीरके विकारोंको छिपानेकी इच्छासे शरीरको ढकनेके लिए कोपीन, लंगोटी, कपडा अदि शरीर ढकनेके साधनोंको ग्रहण करते हैं। परन्तु उनकी इस क्रियासे आते हुए कर्म कभी नहीं रुक सकते ॥६॥

जो मुनि भूख प्यास आदिकी बाधायें उत्पन्न होना, संयमकी रक्षा करना, इंद्रियोंका दुर्जयपना, व्रतोंके पालन करनेके भारसे गौरव धारण करना, सदा अप्रमत्त वा प्रमाद रहित रहना, अनेक देशोंको भाषाओंको न जानना, विषम तथा चंचल प्राणियोंका तथा अत्यंत भयानक पदार्थों का संसर्ग होना और दुर्गम एक क्षेत्रमें नियमरूपसे विहार करना आदि कारणोंके

एकान्ते भवनारामादिप्रदेशे रागद्वेषयौवनदर्परूपमदविभ्रमोन्मादमद्यपानाऽऽवेशादिभिः प्रमदासु बाधमानासु तदक्षिवक्रभ्रूविकार-शृंगाराकारविहारहावविलासहासलीलाविजृंभितकटाक्षविक्षेपसुकुमारस्निग्धमृदुपीनोन्नतस्तनकलशानितान्तताम्राधरपृथुजघनरूपगुणाभर-णगन्धवस्त्रमाल्यादीन्प्रत्यनगृहीतमनोविप्लुतेर्दर्शनाभिलाषनिरुत्सुकस्य स्निग्धमृदुविशदसुकुमाराभिधानतंत्रीवंशमिश्र मधुरगीतश्रवणनिवृत्तादरश्रोत्रस्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियहृदयविकारस्य ललितस्मितमृदुकथितसविकारवीक्षणप्रहसनमदमंथरगमनमन्मथशरव्यापारविफली-

द्वारा जो अरति उत्पन्न होती है उसे विशेष धैर्यसे निवारण करते हैं और जो संयममें प्रेमरूप भावना होनेके कारण विषयसुखसे उत्पन्न हुई रतिको अत्यंत विषम आहार ग्रहण करनेके समान फल देनेके समय अत्यंत कडवी अथवा दुःखदायक समझते हैं उनके अरति परिषहकी बाधा कभी नहीं हो सकती इसीलिये उनके अरति परिषहका जीतना अथवा सहन करना कहलाता है ॥ ७ ॥

किसी वसतिका अथवा बगीचा आदि एकांत स्थानमें रागसे, द्वेषसे, यौवनके दर्पसे, रूपके मदसे अथवा विभ्रम उन्माद और मद्यपान आदिके आवेशसे अनेक स्त्रियां आकर सतावें तो उससमय भी उन स्त्रियोंके, नेत्र टेढी भौओंके विकार शृंगार, आकार, विहार, हाव, भाव, विलास, हास, लीला, पूर्वक फेंके हुए कटाक्ष, सुकुमार कोमल चिकने और बडे उठे हुए स्तन-रूपीकलश, अत्यंत लाल अधर, बडे बडे जघन, रूप, गुण, आभरण, गंध वस्त्र माला आदिसे भी जिनके मनमें कभी विकार प्रगट नहीं होता, जो उनके देखनेकी भी कभी इच्छा नहीं करते स्निग्ध कोमल विशद और सुकुमार नागकी वीणाओंकी आवाजमें मिले हुए मधुर गीतोंके सुननेसे भी जो अपने कानोंको बिलकुल दूर हटा लेते हैं, जो कछुएके शरीरके समान इंद्रिय और हृदयके विकारोंको संकुचित कर लेते हैं, मनोहर हास्य, मधुर भाषण, सविकार वीक्षण,

करणचरणस्य संसारार्णवव्यसनपातालरौद्रदुःखागाधावर्तकुटिलाध्यायिनः स्त्रैणानर्थानिवृत्तिः स्त्रीपरीषहजय इति कथ्यते। अन्यवादिपरिकल्पिता देवताविशेषा ब्रह्मादयस्तिलोत्तमादिदेवगणिकारूपसंपद्दर्शनेनेलोललोचनविकाराः स्त्रीविषयपंककौद्धर्तुमात्मानं समर्थाः।

दीर्घकालाऽभ्यस्तगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगतबंधमोक्षपदार्थतत्त्वस्य कषायनिग्रहपरस्य भावनापितमनसः संयमायतनादिभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य नानाजनपदव्याहारज्ञस्य ग्रामे एकरात्रं नगरे पंचरात्रं प्रकर्षेणावस्थानमित्येवं यातस्य वायोरिव निःसंगतामुपगतस्य देशकालप्रमाणोपेतमध्वगमनमनुभवतः क्लेशसहस्य भीमाटवीप्रदेशेषु निर्भयत्वात्सिंहस्येव सहायकृत्य-

हंसी ठट्ठा, मदोन्मत्त होकर धीरे धीरे गमन करना, और कामदेवके बाणोंके व्यापार आदि सबको निष्फल करनेवाला जिनका चारित्र है और जो सदा यही विचार किया करते हैं कि यह संसार महासागर है संकटरूप पाताल और सब नारकीय रौद्र दुःख स्वरूप अगाध भ्रमणों के द्वारा कुटिल है इसप्रकारका विचार करते हुए जो स्त्रियोंके अनर्थोंसे अलग रहते हैं उनके स्त्रीपरिषहजय अर्थात् स्त्रीपरिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है। अन्य वादियोंके कल्पना किए हुए ब्रह्मा आदि विशेष देवताओंके भी चंचल नेत्रोंमें तिलोत्तमा आदि देव गणिकाओंकी रूप संपत्ति देखकर विकार उत्पन्न हो आया था और वे स्त्रीपरिषह रूपी कीचडसे अपने आत्माका उद्धार नहीं कर सके थे ॥ ८ ॥

जिन्होंने गुरुकुलमें (आचार्यके संघमें) बहुत दिनतक रहकर ब्रह्मचर्यका अभ्यास किया है, जो बंध मोक्ष आदि पदार्थों और तत्त्वोंको अच्छीतरह जानते हैं, कषायोंके निग्रह करनेमें सदा तत्पर रहते हैं जिनका मन सदा भावनाओंमें ही लगा रहता है, जो संयम पालन करने केलिये और तीर्थक्षेत्र आदि धर्मायतनोंकी भक्ति करनेके लिये अन्य देशोंमें भी विहार करते हैं, अन्य देशोंमें जानेके लिये जिन्होंने गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर ली है, जो अनेक देशोंके आहार

मनपेक्षमाणस्य परुषशकराकंटकादिव्यथनजातपादखेदस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतः सम्यक् चर्यादोषं परिहरतः चर्यापरीषहजयो वेदितव्यः ।

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागह्वरादिष्वनभ्यस्तपूर्वेषु विदितसंयमक्रियस्य धैर्यसहायस्योत्साहवतो निषद्यामधिरूढस्य प्रादुर्भूतोपसर्गोग्ररोगविकारस्यापि सतस्तत्प्रतिदेशादविचलतो मंत्रविद्यादिलक्षणप्रतीकारानपेक्षमाणस्य क्षुद्रजन्तुप्रायविषमदेशाश्रयात्का-

व्यवहारको अच्छीतरहसे जानते हैं, अधिकसे अधिक गांवमें एक रात रहेंगे और नगरमें पांच रात रहेंगे यही समझकर जो गमन करते हैं, जो वायुके समान परिग्रह रहित हैं, देश कालके प्रमाणके अनुसार प्राप्त हुए मार्गके गमनका जिन्हें पूर्ण अनुभव है, जो क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ हैं, भयानक वनोंमें भो सिंहके समान निर्भय होकर गमन करते हैं तथा किसी तरहकी भी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते, कठिन बालू कांटे आदिके द्वारा पैर फट जानेसे जिनके पैरोंमें खेद हो रहा है तो भी पहिलेके रथ घोडा आदि सवारियों पर किये हुए गमनको कभी स्मरणतक नहीं करते, इसप्रकार जो चर्याके (चलनेके) दोषोंको अच्छीतरह दूर करते हैं उनके चर्यापरिषहजय अथवा चर्या परिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है ॥ ६ ॥

जो श्मशान, उद्यान, सूना मकान, पर्वतकी गुफा, और कोटर आदि ऐसे स्थानोंमें जाकर विराजमान होते हैं जहां कभी भी पहिले विराजमान न हुए हों, जो संयमकी सब क्रियाएं जनते हैं, धैर्य ही जिनका सहायक है जो बडे उत्साही हैं, उपसर्ग और उग्र रोगोंके विकार उत्पन्न होने पर भी उस स्थानसे कभी चलायमान नहीं होते, मंत्र विद्या आदि कारणोंके द्वारा जो कभी उसका प्रतिकार नहीं चाहते, अनेक छोटे छोटे जंतुओंके होनेसे तथा विषम (ऊंचा नीचा) स्थान होनेसे जो लकडी और पत्थरके समान निश्चल रहते हैं, पहिले अनुभव

ष्ठोपलनिश्चलस्वानुभूतमृदुसंस्तरणादिस्पर्शसुखमवगणयतः प्राणिपीडापरिहारोद्यतस्य ज्ञानध्यानभावनाधीनधियः संकल्पितवीरासनोत्कुटिकासनादिरतेरासनदोषाजयान्निषद्यातितिक्षेत्याख्यायते ।

स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसंकटातिशीतोष्णेपु मौहूर्त्तिकीं निद्रामनुभवतो यथाऽऽकृतैकपार्श्वदंडायतादिशायिनः संजातबाधाविशेषस्य संयमार्थमस्पन्दमानस्यानुतिष्ठतो व्यन्तरादिभिर्वा वित्रास्यमानस्य पलायनं प्रति निरुत्सुकस्य

किये हुए कोमल विछौने आदिके स्पर्शके सुखको जो कभी मन तकमें नहीं लाते, सदा प्राणियों की पीडा दूर करनेके लिये ही तत्पर रहते हैं जिनकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानकी भावनाके ही आधीन रहती है और जो प्रतिज्ञा किए हुए वीरासन उत्कुटिकासन आदिमें सदा तल्लीन रहते हैं ऐसे मुनियों के आसनके दोषोंका विजय होनेसे निषद्यापरिषहसहन अथवा निषद्यापरिषहका जीतना कहते हैं ॥ १० ॥

जो स्वाध्याय ध्यान और मार्गके परिश्रमसे खेदखिन्न हैं, कठिन ऊंची नीची बहुतसी रेतीवाली जिसमें बहुतसे कपाल वा टुकडे पडे हुए हैं जो अत्यंत शीत वा अत्यंत उष्ण है ऐसी भूमिके ऊपर जो मुहूर्तभर निद्राका अनुभव करते हैं, सीधे लेटकर वा किसी एक कर्वटसे लेट कर दंडेके समान निद्रालेते हैं,विशेष बाधा वा उपद्रव उपस्थित होनेपर भी संयम पालन करनेके लिए जो किसी तरहकी हलन चलन क्रिया नहीं करते, व्यंतरादि देव अनेक तरहकी पीडा देते हैं तथापि जो भागनेकी विल्कुल इच्छा नहीं करते, जिन्हें मरनेका डर विल्कुल नही हैं, पडी हुई लकडीके समान अथवा मरे हुए मुरदेके समान जो अपना शरीर निश्चल रखते हैं, यह स्थान गेंडा सिंह, सर्प अजगर आदि दुष्ट जीवोसे भरा हुआ है इसलिये यहांसे शीघ्र ही दूसरी जगह चला जाना अच्छा है यह रात कब पूरी होगी इत्यादि विषाद कभी नहीं करते, सुख

मरणभवनिर्विशंकस्य निपतितदारुवत् व्यपगतासुवच्च मानस्य द्वीपिशार्दूलमहोरगादिदुष्टसत्त्वसत्त्वपरिचरितोऽयं प्रदेशोऽद्रुतनिरादतो निर्गमनं श्रेयः कदा नु गत्रिर्विरमतीति विषादमनाददानस्य सुखप्राप्तावप्य परितुष्यतः पूर्वानुभूतनवनीतवन्मृदुशयनमननुस्मरतः अम्यगागमोदितश- नादप्रच्यवतः शय्यासहनमिति तत्रान्येतव्यं

तीव्रमोहाऽऽविष्टमिथ्यादृष्ट्यनार्यम्लेच्छखलपापाचारमत्तोद्दप्तशंकितप्रयुक्त मांशादपरुषावज्ञानाक्रोशादीन्कर्णमूले गतान् हृदयशूलोद्भावकान् क्रोधज्वलनशिखाप्रवर्द्धनकराश्चभिप्रायान् शृण्वतोऽपि दृढमनसो दुर्भापिणो भस्मसात्कर्तुमपि सामर्थ्ये च परमार्थावहितचेतस

मिलनेपर भी जो हर्ष नहीं मानते, पहिले अनुभव की हुई मक्खनके समान कोमल शय्याका जो स्मरण नहीं करते और जो आगमके अनुसार कहे हुए उत्तम निर्दोष शयन करनेसे कभी अलग नहीं होते ऐसे मुनियोंके शय्यासहन अथवा शय्या परिषहका जीतना कहलाता है। ११।

जो कानके पास जाते ही हृदयमें शूल उत्पन्न करदे, और क्रोधरूपी अग्निकी शिखाको खूब बढादे ऐसे तीव्र मोहनीय कर्मके उदयसे घिरे हुए मिथ्यादृष्टि, अनार्य, म्लेच्छ, दुष्ट पापाचारी मदोन्मत्त और महाअभिमानी और सशंकित जीवोंके कठोर वचन, धिक्कारके वचन और निंदा करनेवाले तथा गाली आदि बुरे वचनोंको तथा उनके बुरे अभिप्रायोंको सुनते हुए भी जिनका मन सदा दृढ रहता है, यद्यपि बुरे वचन कहनेवालेको भस्म करनेकी सामर्थ्य रखते हैं तथापि परमार्थकी ओर चित्त लगा रहनेसे उस बुरे वचन कहनेवालेकी ओर वा उसके अभिप्रायोंकी ओर कभी आंख उठाकर देखते तक नहीं, जो सदा यही विचार करते हैं कि यह मेरे ही अशुभ कर्मोंका उदय है जो ये लोग ऐसा क्रोध करते हैं" इस प्रकारके जानोंसे अनिष्ट वचनोंको सहन करना आक्रोश परिषह जय अथवा आक्रोशपरिषहको जीतना वा सहना कहते हैं॥ १२॥

शब्दमात्रश्राविणस्तदर्थान्वीक्षणविनिवृत्तव्यापारस्य स्वकृताशुभकर्मोदयो ममैव यतोऽमीषां मां प्रति द्वेष इत्येवमादिभिरुपायैरनिष्टवचनसहनमाक्रोशपरीषहजय इति निर्णीयते।

ग्रामोद्याननगराटवीपुरेषु नक्तं दिवा चैकाकिनो निरावरणमूर्तेः समन्तात्पर्यटद्भिश्चौरारक्षकम्लेच्छचारपुरुषवधिरपूर्वापकारिद्विषत्परलिंगिभिराहितक्रोधैस्ताडनाकर्षणबन्धनशस्त्राभिघातादिभिर्मार्यमाणस्यानुत्पन्नवैरस्यावश्यं प्रपातुकमेवेदं शरीरं कुशलद्वारेणानेनापनीयते न मम व्रतशीलभावनाभ्रंशनमिति भावशुद्धस्य दह्यमानस्यापि सतः सुगन्धमुत्सृजतश्चन्दनस्येव शुभपरिणामस्य स्वकर्मनिर्जरामभिसं-

जो गांव, उद्यान, नगर वन, और पुरमें रात दिन अकेले रहते हैं तथा जिनका शरीर विल्कुल आवरण रहित है उन मुनियोंको चारों ओर फिरते हुये चोर, लुटेरे, म्लेच्छ, जासूस, वहिरे, जिनका पहिले कुछ अपकार हो चूका है और स्वाभाविक द्वेष करनेवाले अन्यमती लोग क्रोधित होकर ताडना करते हैं; खींचते हैं बांधते हैं और शस्त्रोंकी चोटसे मारते हैं तथापि जिन्हें वैर उत्पन्न नहा होता, वे शुद्ध भावोंसे यही विचार करते हैं कि "यह शरीर अवश्य ही नष्ट होनेवाला है यह कुशलतापूर्वक इसे नष्ट कर रहा है कुछ मेरे व्रतशील और भावनाओंका नाश तो नहीं करता इसप्रकार जिनके भाव शुद्ध रहते हैं, शरीरको जलादेने पर भी जो सुगंध छोडते हुये चन्दनके समान अपने परिणामोंको सदा निर्मल रखते हैं, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेमें ही तत्पर रहते हैं; जिनकी बुद्धि सदा दृढ रहती है और जिनके क्षमा रूपी औषधि ही सबसे वडा बल रहता है और जो मारनेवालेको भी मित्रके समान हो देखते हैं ऐसे मुनियोंके जो ईर्षा द्वेष दूर करनेकी भावना रहती है उसे वधमर्षण अथवा बध परिषहका जीतना कहते हैं॥ १३ ॥

दधानस्य दबमतेः क्षमौपधिवलस्य मारकेषु सुहृद्विवामर्षापोहभावनं वधमर्षणमित्याम्नायते ।

क्षुदध्वपरिश्रमतपोरोगादिभिरप्रच्यवितवीर्यस्य शुष्कपादपस्येव निरार्द्रमूर्त्तेरुन्नतास्थिस्नायुजालस्य निम्नाक्षपुटपरिशुष्काधरक्षामपांडुकपोलस्य चर्मवत्संकुचितांगोपांगत्वचः शिथिलजानुगुल्ककटिवाहुयंत्रस्य देशकालक्रमोपपन्नकल्पादायिनो वाचंयमस्य मौनिसमस्य वा शरीरसन्दर्शनमात्रव्यापारस्योर्जितसत्वस्य प्रज्ञाऽऽध्यायितचेतसः प्राणात्ययेऽपि वसत्याहारभेषजानि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्यांगसंज्ञा

क्षुधा, मार्गका परिश्रम, तप और रोगादिकके कारण भी जिनकी शक्ति कम नहीं हुई है, सूके वृक्षके समान जिनके शरीरमें आर्द्रता वा शिथिलता विल्कुल नहीं आई है परंतु जिनकी हड्डी और नसोंका समूह नवा भी नहीं है ज्योंका त्यों उन्नत रहता है, जिनके दोनों नेत्र नीचेकी ओर रहते हैं अधर सूके रहते हैं तथा कपोल दुवले और सफेद रहते हैं चमडेके समान जिनके अंग और उपागोंका चमडा संकुचित हो गया है, जंघाएं एडियां कमर और भुजाएं जिनकी शिथिल हो गई हैं, जो देश कालके क्रमके योग्य आहार ग्रहण करते हैं. जिन्होंने बोलना बंद कर दिया है अर्थात् मौन धारण कर लिया है, जो केवल शरीरको दिखाकर ही वापिस चले जाते हैं, जिनकी शक्ति बहुत बढी हुई है, जिनका चित्त सदा ज्ञानको बढानेमें ही लगा रहता है, प्राणोंका नाश होने पर भी जो वसतिका आहार और औषधियोंको दीन होकर, मुखकी आकृति विगाडकर अथवा शरीरकी किसी संज्ञासे इशारेसे कभी याचना नहीं करते, आहार लेनेके समय भी विजलीकी चमकके समान जो बहुत शीघ्र दिखाई देकर चले जाते हैं जिसप्रकार रत्नके व्यापारियोंको बहुत दिनमें अच्छी मणियोंका दर्शन होता है इसी प्रकार जो अपने शरीरको दिखलाना भी उदारता समझते हैं वंदना वा पडगाहन करनेवालेके यहां जो हाथोंको पसारकर करपात्र आहार करते हैं उसको भी वे अदीनभाव समझते हैं इसप्र-

द्भिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवदुपलक्षितमूर्तेःबहुषु दिवसेषु रत्नवणिजो मणिसन्दर्शनमिव स्वशरीरप्रकाशमकृपणं मन्यमानस्य बन्दमानं प्रति स्वकरविकासनमिव पाणिपुटधारणमदीनमिति गणयतो याचनासहनमवसीयते । अद्यत्वे पुनः कालदोषाद्दीनानाथपाखंडिबहुले जगत्यमार्गज्ञैरनात्मवद्भिर्याचनमनुष्ठीयते ।

वायुवदसंगानेकदेशचारिणोऽप्रकाशितवीर्यस्याभ्युपगतैककालभोजनस्य सकृन्मूर्तिसन्दर्शितव्रतकालस्य 'देहि' इत्यसभ्यवाक्प्रयोगादुपरतस्यानुपात्तविग्रहप्रतिक्रियस्याद्य दं श्वश्चे दमिति व्यपेतसंकल्पस्यैकस्मिन् ग्रामे लब्धे सति ग्रामान्तरान्वेषणनिरुत्सुकस्य

कार याचना नहीं करना याचनासहन अथवा याचनापरिषहका जीतना कहलाता है। आजकल काल दोषसे दीन अनाथ और पाखंडो बहुतसे हो गये हैं और वे संसारमें मोक्षमार्गका स्वरूप और आत्माका स्वरूप न जाननेके कारण याचना करते हैं॥ १४ ॥

जो वायुके समान विना किसीको साथ लिए अथवा विना किसी परिग्रहके अनेक देशोंमें विहार करते हैं, जो अपनी शक्ति कभी प्रकाशित नहीं करते, जिनके दिनमें एक ही बार भोजन करनेकी प्रतिज्ञा रहती है, आहारके समय किसीके घर जाकर एकबार शरीर दिखलाना (पडगाहन न करने पर लौट आना) ही जिनका व्रत रहता है, " दे दीजिए " इत्यादि असभ्य शब्दोंके प्रयोग करनेका (किसीसे मांगनेका) जिनके सर्वथा त्याग रहता है, जो शरीरकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते, " आज ऐसा है, कल ऐसा होगा " इसप्रकारके संकल्पका जिनके सर्वथा त्याग रहता है, एक गांवमें आहार न मिलने पर जो दूसरे गांवमें ढूंढनेके लिए कभी नहीं जाते, जिनके पास केवल हाथ ही पात्र रहते हैं अन्य कुछ नहीं, बहुत दिनों-तक और बहुतसे घरोंमें आहार न मिलने पर भी जो अपने हृदयमें कभी संक्लेश परिणाम नहीं करते, यह दाता नहीं है अमुक गांवमें अमुक मनुष्य दानशूर है बडा दानी है और

पाणिपुटमात्रपात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च गृहेषु भिक्षामनवाप्याप्यसंक्लिष्टचेतसो नाऽयं दाता तत्राऽन्यो दानशूरोऽतिधन्वी वान्योऽस्तीति व्यपगतपरीक्षस्य लाभादप्यलाभो मे परं तप इति संतुष्टस्यालाभविजयोऽवसेयः ।

दुःखाधिकरणमशुचिभाजनं जीर्णवस्त्रवत्परिहेयं पित्तमारुतकफसन्निपातनिमित्तानेकामयवेदनाऽभ्यर्दितमन्यदीयमिव विग्रहं मन्यमानस्योपेक्षकत्वादाप्रच्युतेश्चिकित्साव्यावृत्ताचेष्टस्य शरीरयात्राप्रसिद्धये व्रणानुलेपनवद्यथोक्तमाहारमाचरतो विरुद्धाहारसेवाविरसवैषम्य-

अत्यंत धन्य मनुष्य है इसप्रकारकी परीक्षा जो कभी नहीं करते और जो "आहार मिलनेकी अपेक्षा आहार न मिलना ही मेरे लिए परम तपश्चरण है इसप्रकार मानते हुए आहार न मिलनेसे ही परम संतुष्ट रहते हैं ऐसे मुनियोंके अलाभ विजय अथवा अलाभ परीषहका जीतना कहलाता है ॥ १५ ॥

यह शरीर दुःखोंका आधार है, अपवित्रताका पात्र है, जीर्णवस्त्रके समान त्याग करदेनेके योग्य है पित्त और कफके संयोगके कारण अनेक रोगोंकी वेदनासे कदर्थित हैं और आत्मासे बिलकुल भिन्न हैं इसप्रकार जो शरीरके स्वरूपको मानते हैं, शरीरकी ओर उपेक्षा होनेसे जो उसके नाश होनेतक चिकित्सा (इलाज) करनेकी चेष्टा कभी नहीं करते, धर्मसाधन करनेके लिये शरीर का टिकना आवश्यक है इसलिये जो घावपर लेप करनेके समान योग्य और शास्त्रानुसार आहार करते हैं, विरुद्ध आहार ग्रहण करनेके तथा नीरस और विषम आहार ग्रहण करनेसे वायु आदिके अनेक रोग जिनके हो गये हैं, एक साथ सैकड़ों व्याधियोंका प्रकोप होने पर भी जो कभी उनके वश नहीं होते, जल्ल, औषधि, प्राप्त आदि अनेक तपोविशेषसे उत्पन्न हुई ऋद्धियोंके संयोग होनेपर भी शरीरसे निस्पृह होनेके कारण जो कभी उन व्याधियोंके प्रतिकार करनेकी इच्छा नहीं करते "यह सब पहिले किये हुये पाप कर्मोंका फल है इस उपाय

जनित वातादिविकाररोगस्य युगपदनेकशतसंख्यव्याधिप्रकोपे सत्यऽपि तद्वशवर्त्तितां विजहतो जल्लौषधिप्राप्ताद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिःस्पृहत्वात्प्रतीकारानपेक्षिणः पूर्वकृतपापकर्मणः फलमिदमनेनोपायेनाऽनृणी भवामीति चिन्तयतो रोगसहनं सम्पद्यते ।

यथाऽभिनिवृत्ताधिकरणशायिनः शुष्कतृणपरुषशर्कराभूमिकंटफलकशिलातलादिषु, प्रासुकेष्वसंस्कृतेषु व्याधिमार्गगमनशीतोष्णजनितश्रमविनोदार्थं शय्यां निषद्यां वा भजमानस्य संस्कृतशुष्कतृणादिबाधितमूर्तेरुत्पन्नकंडूविकारस्य दुःखमनभिचिन्तयतस्तृणादिस्पर्शबाधाभिरवशीकृतत्वात्तृणस्पर्शसहनमवगन्तव्यं ।

जलजन्तुपीडापरिहाराय स्नानप्रतिज्ञस्य स्वेदपंकदिग्धसर्वांगस्य बादरनिगोदप्रतिष्ठितजीवदयार्थं च शरीरसंस्कारविरमणार्थं च

से (उन रोगोंके कारण अर्थात् वे पाप कर्म अपना रोगरूप फल देकर नष्ट हो जांयगे इसलिये) मैं उन कर्मोंके ऋणसे छूट जाऊंगा" इसप्रकार जो बार बार चिंतवन करते हैं उनके रोग सहन अथवा रोग परीषहका जीतना कहते हैं ॥ १६ ॥

जो स्वाभाविक प्राप्त हुए अधिकरण पर सोते वा बैठते हैं, प्रासुक और विना संस्कार किये हुए सूके तृण, कठिन पत्थरकी भूमि, कांटे और पत्थरके टुकडे वाली शिलाभूमियों पर व्याधि, (मार्गका चलना) और शीत उष्णसे उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर करनेके लिये सोते हैं अथवा बैठते हैं विना संस्कार किये हुए तृणादिकोंसे जिनके शरीरपर अनेक तरहकी बाधाएं आरही हैं। खुजलीका विकार प्रगट हो रहा है तथापि जो उसके दुःखका कभी चिंतवन नहीं करते तथा तृण आदिके स्पर्शसे उत्पन्न हुई बाधाके जो कभी वश नहीं होते इसलिये उनके तृणस्पर्श सहन अथवा तृणस्पर्श परीषहका जीतना कहलाता है ॥१७॥

जलकाय और जलचर जीवोंकी पीडा दूर करनेके लिये जिनके स्नान न करनेकी प्रतिज्ञा है, पसीना और धूलिसे जिनका सब शरीर मलिन हो रहा है, बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवोंकी दया पालन करनेकेलिये तथा शरीरका संस्कार दूर करनेकेलिये जिन्होंने उबटन

पारत्यक्तोद्वर्तनस्य सिध्मकच्छुदद्रूद्रांकाबस्य नखरोमश्मश्रुकेशविकृतसहजवाह्यमलसम्पर्केणानेकत्वग्विकारस्य स्वागमलापचये परमलापचये वा प्राणिहितचेतसः सङ्कल्पितसम्यग्ज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालनेन कर्ममलपङ्कापनोदायोद्यतस्य पूर्वानुभूतस्नानानुलेपनादिस्मरणपराङ्मुखचित्तवृत्तेर्मलधारणमाख्यायते । केशलुञ्चनं तत्संस्काराकरणे महान्खेदः संजायते तत्सहनमपि मलधारणे ऽन्तर्भवतीति ।

चिरोपितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिश्चयज्ञस्य हितोपदेशपरस्य कथामार्गकुशलस्य बहुकृत्वः परवादिविजयिनः

आदि करना सब छोड दिया है, सीपरांग खुजली और दाद से जिनका सब शरीर भर रहा है, नाखून रोम, दाढी मूछों के बाल आदिके विकारों से उत्पन्न हुए तथा स्वाभाविक वाह्य मल का संबंध होनेसे जिनके शरीरके चमडे पर अनेक विकार हो गये हैं अपने शरीर का मल दूरकरनेके लिये अथवा दूसरेका मल दूर करनेके समय जिनका हृदय सदा प्राणियों के हित करनेमें ही लगा रहता है, कल्पना किये हुये सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूपी निर्मल जल से धोकर कर्म मल रूपी कीचड को दूर करनेके लिये जो सदा तत्पर रहते हैं और पहले अनुभव किये हुये स्नान उवटन लेपनका स्मरण करनेमें जिनकेचित्त वृत्ति सदा पराङ्मुख रहती है। भावार्थ—जो पहिले किये हुये स्नानादिका कभी स्मरण नहीं करते उन मुनियों के मल धारण अथवा मल परीषहका जीतना कहलाता है। केशों का लोंच करने और उनवालों का संस्कार कभी न करने में भी वडा भारी खेद होता है इसलिये उस खेदको सहन करना भी मल परीपह को जीतनेमें ही शामिल हैं ॥ १८ ॥

जो बहुत कालसे ब्रह्मचारी हैं, महा तपस्वी हैं, अपने मतके शास्त्र और परमतके शास्त्रों का जिन्होंने खूब अच्छी तरह निर्णय व निश्चय किया है, जो सदा हितोपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं, प्रथमानुयोगकी कथाएं कहने में जो बहुत ही कुशल हैं, जिन्होंने कईवार पर-

प्रणामभक्तिसंभ्रमाऽऽसनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोतीत्येवमचिन्तयतो मानापमानयोः समानमनसः सत्कारपुरस्कारनिराकांक्षस्य श्रेयोध्यायिनः सत्कारपुरस्कारजयो वेदितव्यः । सत्कारः प्रशंसादिक, पुरस्कारो नाम नन्दीश्वरादिपर्वयात्रात्मकक्रियारंभादिष्वग्रतः करणमामंत्रणं वा ।

अंगपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य कृत्स्नग्रन्थार्थधारिणोऽनुत्तरवादिनस्त्रिकालविषयार्थविदः शब्दन्यायाऽध्यात्मनिपुणस्य मम पुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूतोद्योतवन्नितरामवभासन्त इति विज्ञानमदनिरासः प्रज्ञापरीषहजयः प्रत्येतव्यः ।

वादियोंका विजय किया है, "प्रणाम भक्ति, और शीघ्रताके साथ आसन देना आदिसत्कारके कार्य मेरे लिये कोई नहीं करता" इस प्रकारका चिन्तवन जो कभी नहीं करते, मान अपमानमें जिनका चित्त सदा समान रहता है, जो सत्कार पुरस्कारकी कभी इच्छा नहीं करते और सबके कल्याणका ही सदा चिंतवन करते रहते हैं उन मुनियोंके सत्कार पुरस्कारजय अथवा सत्कार पुरस्कार परीसहका जीतना कहाजाता है। प्रशंसा आदि करना सत्कार कहलाता है और नंदीश्वर आदि पर्वक दिनोंमें अथवा रथयात्रा वा तीर्थयात्रा आदि क्रियाओंके प्रारंभमें सबसे आगे करना अथवा आमंत्रण देना पुरस्कार कहलाता है ॥ १९ ॥

जो अंग पूर्व और प्रकीर्णकोंमें अत्यंत निपुण हैं, समस्त ग्रंथोंके अर्थभी जिन्हें धारण है, कोई भी प्रतिवादी जिनके सामने उत्तर नहीं दे सकता, जो तीनों कालोंके समस्त विषयोंके पदार्थोंको जानते हैं जो व्याकरणशास्त्र, न्यायशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रोंमें निपुण हैं, "मेरे सामने अन्य सब वादी लोग सूर्यकी प्रभाके सामने तिरस्कृत हुए खद्योतके समान सदा प्रतीत होते रहते हैं" इस प्रकारके ज्ञानके अभिमानसे जो सदा अलग रहते हैं उनके प्रज्ञापरीषह जय अर्थात प्रज्ञापरीषह का जीतना समझना चाहिये ॥ २० ॥

अज्ञोऽयं न किंचिदपि वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यधिक्षेपवचनं सहमानस्याध्ययनाथग्रहणपराभिभवादिष्वनासक्तबुद्धेश्चिरप्रवजि-तस्य विविधतपो विशेषभाराक्रान्तमूर्तेः सकलसमर्थ्याप्रमत्तस्य विनिवृत्तानिष्टमनोवाक्कायचेष्टस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इत्येवं मनस्यसन्दधतोऽज्ञानपरीषहजयोऽवगंतव्यः ।

संयमिप्रधानस्य दुष्करतपोऽनुष्ठायिनः परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरंतनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमिदमनर्थकेयं प्रव्रज्या विफलं व्रतपालनमित्येवं मानसमनादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाद्दर्शनपरीषहसहनमवसातव्यं ।

"यह मूर्ख है कुछ नहीं जानता, पशुके समान है' इत्यादि आक्षेपके वचनोंको जो सदा सहन करते रहते हैं, अध्ययन करनेके लिये दूसरेके द्वारा किये हुए तिरस्कार आदिमें भी जिनकी बुद्धि कभी आशक्त नहीं होती, जो बहुत दिनके दीक्षित हैं, अनेक तरहके विशेष २ तपश्चरणके भारसे जिनका शरीर आक्रांत हो रहा है, जो सबतरहकी सामर्थ्यमें अप्रमत्त हैं, 'मैंने अनिष्ट मन वचन कायकी चेष्टायें सब दूर करदी हैं तथापि मुझे अवधिज्ञान मनपर्ययज्ञान आदि अतिशयज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती' इस प्रकारका विचार जो अपने मनमें कभी नहीं लाते उनके अज्ञान परीषहका जीतना समझना चाहिये ॥ ८१ ॥

जो संयमियोंमें प्रधान हैं अत्यंत कठिन २ तपश्चर्ण करने वाले हैं, परम वैराग्यकी भावनासे जिनका हृदय अत्यंत शुद्ध है, जो समस्त पदार्थ और तत्त्वोंके स्वरूपको जानते हैं। अरहंत, अरहंतके आयतन, साधु और धर्मकी सदा पूजा करते रहते हैं 'मैं बहुत दिन का दीक्षित हूँ तथापि मुझे अबतक कोई ज्ञानका अतिशय प्राप्त नहीं हुवा है, महोपवास आदि तपश्चरण करने वालों को विशेष२ प्रतिहार्य प्रगट होते हैं यह बात केवल प्रलापमात्र है,

एवं परीषहानसंकल्पितोपस्थितान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवाभावान्महान् संवरो भवति । एते सर्वेपि परीषहा कर्मोदयजनितास्तद्यथा—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाऽज्ञाने, दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ, चारित्रमोहे मानकषायोदये नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः, अरतिवेदयोररतिस्त्रीपरीषहौ, वेदनीये क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाः ।

एकस्मिन् जीव एकस्मिन् काले एकादयः परीषहाः आ एकोनविंशतेर्युगपद्भवन्ति । तद्यथा—शीतोष्णपरीषहयोरेकतरः शय्या-

यह दीक्षा लेना बिल्कुल व्यर्थ है, और व्रत पालन करना भी निष्फल है' इस प्रकार जो अपने मनमें कभी विचार नहीं करते इसलिये सम्यग्दर्शनकी शुद्धता होनेसे एसे मुनियों के अदर्शन परीषह का जीतना कहलाता है ॥ २२ ।

इस प्रकार बिना संकल्पके उपस्थित हुई परीषहोंको जो सदा सहन करते हैं और अपने हृदयमें जो कभी (संक्लेश) परिणाम नहीं करते उनके रागादि परिणामों के द्वारा होने वाले कर्मास्रवका अभाव होनेसे महान् संवर होता है । ये सब परीषहें कर्मों के उदयसे प्रगट होती हैं यही बात आगे दिखलाते हैं—ज्ञानावरण कर्मके उदयसे प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं, दर्शन मोहनीय कर्मके उदय से अदर्शन परीषह होती है । अन्तराय कर्मके उदयसे अलाभ परीषह होती है, चारित्रमोहनीय मान कषायके उदयसे नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश याचना और सत्कार पुरस्कार परीषह होती हैं अरति कर्मके उदयसे अरति परीषह और वेद कर्म के उदयसे स्त्रीपरीषह होती है । वेदनीयकर्म के उदय से क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल परीषह होती हैं ।

चर्यानिषद्यानामन्यतम एव भवति । श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञाप्रकर्षे सत्यवध्यभावापेक्षयाऽज्ञानोपपत्तेः सहावस्थाविरोधो न भवति ।

मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतेषु सप्तसु गुणस्थानेषु सर्वे परीषहाः सन्ति । अदर्शन परीषहं विनाऽपूर्वकरण एकविंशति परीषहा भवन्ति । अरतिपरीषहमन्तरेण सवेदानिवृत्तौ विंशतिपरीषहाः स्युः । अवेदानिवृत्तौ स्त्रीपरीषहे नष्ट एकोनविंशतिपरीषहाः भवेयुः । तस्यैव मानकषायोदयक्षयान्नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोश याचनासत्कारपुरस्कारा

एक ही जीवके एकही समयमें एक साथ एक से लेकर उनईस परीषह तक हो सकती हैं शीत उष्ण इन दो परीषहोंमें से कोई भी एक होसकता है शय्या चर्या निषद्या इन तीनोंमेंसे कोई भी एक होसकती है (इस प्रकार तीन परीषह छूट सकती हैं) श्रुतज्ञानकी अपेक्षा बुद्धिकी तीव्रता होनेसे प्रज्ञा परीषह और अवधिज्ञानके अभाव होनेकी अपेक्षासे अज्ञान परीषह की उत्पत्ति होती है इसलिये इन दोनों के एक साथ होनेमें कोई किसी तरहका विरोध नहीं आता (मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यक्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि संयता-संयत प्रमत्तसयंत और अप्रमत्तसंयत इन सातों गुणस्थानोंमें सब परीषह होती हैं। अपूर्व-करण नामके आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परीषहको छोडकर शेष इकईस परीषह होती हैं। नौवें गुणस्थानमें जहांतक वेदकी निवृत्ति नहीं होती वहांतक अरति परीषहको छोड़कर बाकी बीस परीषह होती हैं, जहां वेदकी निवृत्ति होजाती हैं वहां स्त्री परीषह भी नष्ट होजाती है इसलिये वहां उनईस परीषह होती हैं उसी नौवें गुणस्थान में मानकषायके उदयका नाश होजाने पर नाग्न्य, निषद्या आक्रोश याचना और सत्कार पुरस्कार परीषह नष्ट होजाती हैं इन पांचों परीषहोंके नाश होजाने पर शेषके अनिवृत्ति करण गुणस्थान में तथा सूक्ष्मसांपराय उपशांत कषाय और क्षीणकषाय इन चारों गुणस्थानों में बाकी की चौदह परीषह होती हैं।

विनश्यंति । तेषु विनष्टेषु अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशान्तकषायक्षीणकषायेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चतुर्दश परीषहाः सन्ति । क्षीणकषाये प्रज्ञाऽज्ञानालाभा विनश्यन्ति । सयोगिभट्टारकस्य ध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनस्यानन्ताप्रतिहतज्ञानादिचतुष्टयस्यान्तरायाभावान्निरंतरमुपचीयमानशुभपुद्गलसन्ततेर्वेदनीयाख्यं कर्म विद्यमानमपि प्रक्षीणघातिसहायबलं स्वप्रयोजनोत्पादनं प्रत्यसमर्थं, यथा—विषद्रव्यं मंत्रौषधिबलादुपक्षीणमारणशक्तिकमुपयुज्यमानं न मारणाय समर्थं, यथा छिन्नमूलतरुः कुसुमफलप्रदो न भवति,

क्षीणकषाय गुणस्थानमें प्रज्ञा अज्ञान और अलाभ परीषह नष्ट होजाती हैं। जिन्होंने ध्यान रूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी इंधनको जलादिया है जिनके अप्रतिहत अनंत ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हुवा है अंतराय कर्मके अभाव होनेसे जिनके निरंतर शुभ पुद्गल वर्गणाओंका समुदाय बढता जारहा है एसे भट्टारक सयोगी केवली भगवान के यद्यपि वेदनीय कर्म विद्यमान है तथापि उसके बलको सहायता देने वाले घातिया कर्मों का नाश हो जानेसे उसमें अपना प्रयोजन उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रही है। जिसप्रकार मंत्र औषधि आदिके बलसे जिसकी मारणशक्ति (प्राण हरण करनेकी शक्ति) नष्ट करदी गई है एसा विष खालेने पर भी वह किसीको मार नहीं सकता अथवा जिस प्रकार जिसकी जड़ काट डाली गई है एसा वृक्ष फल और फूल नहीं देसकता अथवा जिसप्रकार उपेक्षा बुद्धि रखने वाले मुनियोंके नोवें दशवें गुणस्थानोंमें मैथुन और परिग्रह संज्ञा केवल नाममात्रको होती है अथवा जिस प्रकार पूर्ण केवलज्ञानके होनेपर एकाग्र चिंतानिरोध रूप ध्यानका अभाव होनेपर भी कर्मरूपी रजके नाश होनेरूप फल की संभावना होनेसे ध्यानका उपचार किया जाता है उसी प्रकार क्षुधारोग और वध आदि वेदनाओंके सद्भाव रूप परीषहोंका अभाव होनेपर भी केवल वेदनीय कर्मके उदयरूपी द्रव्य परीषह का सद्भाव होनेसे तेरहवे गुणस्थानवर्ती जिनेन्द्र भगवानके ग्यारह

यथोपेत्तावतोरनिवृत्ति सूक्ष्मसांपराययोर्मैथुनपरिग्रहसंज्ञा, यथच्च परिपूर्णज्ञान एकाग्रचिंतानिरोधाऽभावेपि कर्मरजोविधूननफलसंभवाद्ध्यानोपचारस्तथा क्षुधादिरोगवधादिवेदनासद्भावपरीषहाभावे: वेदनीयकर्मोदयद्रव्यपरीषहसद्भावादेकादश जिने सन्ति इत्युपचारो युक्तः, वेद कर्मोदयसद्भावे एकादश जिने सन्ति। घातिकर्मबलसहायरहितं वेद्यं फलवन्न भवति, तेनैकादश जिने सन्ति एवं सति स्यादस्ति स्यान्नास्तीति, स्याद्वाद, उपपन्नो भवति। तथा च शतकस्य प्रदेश बन्धे वेदनीयस्य भागविशेषकारणकथनेऽप्युक्तं "जम्हा वेदणीयस्स सुहदुक्खोदयस्स णाणावरणादि उपकरणकरणं तम्हा वेदणीयस्सेव सुहदुक्खोदयोदीसदे" इति। तस्माद्वेदनीयं घातिकर्मोदयं विना फलवन्न भवतीति सिद्धम्।

नरकतिर्यग्गत्योः सर्वे परीषहाः मनुष्यगतावाद्यभंगा भवन्ति देवगतौ घातिकर्मोत्थपरीषहैः सह वेदनीयोत्पन्नक्षुत्पिपासावधैः

परीषहें उपचारसे कही जाती हैं। वेदनीय कर्मके उदय का सद्भाव होनेसे जिनेन्द्रदेवके ग्यारह परीषह हैं और घातिया कर्मोंके बलकी सहायता के विना बेदनीय कर्म अपना कुछ फल नहीं देसकता इसलिये जिनेन्द्रदेवके ग्यारह परीषह नहीं हैं इस प्रकार स्यादस्ति स्यान्नास्ति अर्थात् परीषहें हैं भी और नहीं भी हैं इस प्रकार स्याद्वाद मत प्रगट होता है। यही बात प्रदेशबंधके कथन करते समय १०० भागों मेंसे वेदनीयके विशेष भावों का कारण कथन करते हुऐ कही गई है "जम्हा वेदणीयस्स दुःखोदयस्स णाणावरणादि उपकरणकरणं तम्हा वेदणीयस्सेव सुहदुःखोदयो दीसदे" अर्थात् सुख दुख देने वाले वेदनीयकर्मके सहायक ज्ञानावरणादि घातिया कर्म हैं इसलिये अर्थात् उन घातियाकर्मोंकी सहायता से ही वेदनीय कर्म का सुखदुःखोदय दिखाई पड़ता है" इससे यह सिद्ध है कि घातिया कर्मोदयके विना वेदनीय कर्म अपना फल नहीं देसकता।

नरक और तिर्यंच गति में सब परिषह होती हैं। मनुष्यगतिमें ऊपर कहे अनुसार होती हैं। देवगति में घातियाकर्मों के उदयसे होनेवाली मान परीषह और वेदनीयकर्मके उदय

सह चतुर्दश भवन्ति। इन्द्रियकायमार्गणयोः सर्वे परीषहाः सन्ति वैक्रियकद्वितयस्य देवगतिभंगा तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्वाविंशतिः शेषयोगानां वेदादिमार्गणाना च स्वकीयगुणस्थानभंगा भवंति।

तपोवर्णनम्

—०)◌(०—

रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तपः अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यत इति तपः। तद् द्विविधं, बाह्यमाभ्यंतरं च। अनशनादिबाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्परप्रत्यक्षलक्षणत्वाच्च बाह्यं, तत् षड्विधं, अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदात्। अभ्यन्तरमपि षड् विधं, प्रायश्चित्त विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यानभेदात्।

से होने वाला क्षुधा पिपासा और वध इसप्रकार चौदह परीषह होती हैं। इन्द्रिय और काय-मार्गणामें सव परीषह होती हैं वैक्रियक और वैक्रियकमिश्रयोगमें देवगति की अपेक्षा देवगति के अनुसार और तिर्यंच मनुष्यों की अपेक्षा वाईस होती हैं। शेष योग मार्गणामें तथा वेद आदि सव मार्गणाओंमें अपने अपने गुणस्थानों की अपेक्षा लगालेना चाहिये।

इस प्रकार परिषहोंका प्रकरण पूर्ण हुआ।

आगे तपश्चरणका वर्णन करते हैं—रत्नत्रयको प्रगट करनेके लिये इच्छा का निरोध करना तप कहलाता है अथवा कर्मोंका नाश करनेकेलिये मोक्षमार्ग का विरोध न करते हुए तपश्चरण करना तप है वह तप दो प्रकार का है एक वाह्यतप और दूसरा आभ्यंतर तप। अनशन आदि वाह्यद्रव्योंकी अपेक्षासे अथवा अन्य लोगों को प्रत्यक्ष होनेसे वाह्य तपश्चरण कहलाता है। वह वाह्य तपश्चरण छह प्रकारका है—अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरि-त्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये उसके नाम हैं। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान के भेदसे आभ्यंतर तपश्चरण भी छह प्रकार का है।

ननाऽनशनं नाम यत्किंचिद्दृष्टफलं मंत्रसाधनाद्यनुद्दिश्य क्रियमाणमुपवसनमनशनमित्युच्यते। तत्किमर्थं प्राणेन्द्रिय संयम प्रसिद्धिरागद्वेषाद्युच्छेदवहुकर्मनिर्जरणशुभध्यानागमावाप्त्यर्थं तद्द्विविधमवधृतानवधृतकालभेदात्। तत्रावधृतकालं सकृद्भोजनचतुर्थ षष्ठाष्टमदशपक्षमासर्तुवनसंवत्सरेष्वशनपानखाद्यस्वाद्यलक्षणचतुर्विधाहारनिवृत्तिः। अनवधृतकालमादेहोपरमात्।

आत्मीयप्रकृत्योदनस्य चतुर्थभागेनार्द्धेन ग्रासेण वोनाहारनियमोऽवमौदर्यं, आत्ममौदर्यमिति च। तत्किमर्थं निद्राजयार्थं दोषप्रशमनार्थमतिमात्राऽऽहारजातविहितस्वाध्यायभयार्थमुपवासश्रमसमुद्भूतवातपित्तप्रकोपपरिहीयमानसंयमसंरक्षणार्थं च।

किसी प्रत्यक्ष फलकी अपेक्षा न रखकर और मंत्रसाधन आदि उद्देशों के विना जो उपवास किया जाता है उसे अनशन कहते हैं। वह अनशन प्राणिसंयम और इन्द्रिय संयम की प्रसिद्धिके लिये रागद्वेष आदि कषायों को नाश करनेके लिये बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करने के लिये शुभ ध्यान और आगमकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। वह अनशन वा उपवास दो प्रकारका है एक नियमित समय तक और दूसरा अनियमित समय तक। दिनमें एकवार भोजन करना, एक दिन दो दिन तीन दिन चारदिन छह दिन आठदिन, दशदिन पंद्रह दिन एक महीने दो महिने छह महीने और वर्ष दिन तक अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारों का त्याग करदेना नियमित समय तकका उपवास कहलाता है। तथा शरीर छूटने तक उपवास धारण करना अनियमित समय तक का उपवास कहलाता है।

अपने लिये स्वाभाविक जितना भोजन चाहिये उससे चौथाई भाग कम आहार लेनेका नियम लेना अथवा एक गास आधा गास कम लेने का नियम लेना अवमौदर्य कहलाता है। निद्रा को जीतने के लिये दोषों को शांत करने के लिये अधिक आहार से उत्पन्न होने वाले स्वाध्याय के विघ्नों को दूर करने के लिये और उपवासों के परिश्रम से उत्पन्न होनेवाले वात

स्वकीयतपोविशेषेण रसरुधिरमांसशोषणद्वारेणेन्द्रियसंयमं परिपालयतो भिक्षार्थिनो मुनेरेकागाररसप्तवेश्मैकरथ्यार्द्धग्रामदातृजनवेषगृहभाजनभोजनादिविषयसंकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम् ।

शरीरेन्द्रियरागादिवृद्धिकरक्षीरदधिघृतगुडतैलादिरसत्यजनं रसपरित्याग इत्युच्यते । तत्किमर्थं दुर्दान्तेन्द्रियतेजोहानिः संयमोपरोधनिवृत्तिरित्येवमाद्यर्थं ।

ध्यानाध्ययनविघ्नकरस्त्रीपशुषण्ढकादिपरिवर्जितगिरिगुहाकन्दरापितृवनशून्यागाराऽऽरामोद्यानादिप्रदेशेषु विविक्तेषु जन्तुपीडा-

पित्तके प्रकोपसे कम होने वाले संयमकी रक्षा करनेके लिये अवमौदर्य तपश्चरण किया जाता है।

अपने विशेष तपश्चरणके द्वारा अथवा शरीर का रस रुधिर मांस आदिको सुखाकर इन्द्रिय संयमको पालन करनेवाले तथा आहारके लिये गमन करते हुऐ मुनियोंके एक घर सात घर एक गली; आधागांव दान देने वाले दाताका वेष घर पात्र और भोजन आदि के विषय में संकल्प करना वृत्तिपरिसंख्यान नामका तपश्चरण कहलाता है । यह तपश्चरण केवल भोजनकी आशा और लालसा दूर करनेके लिये किया जाता है।

शरीर इन्द्रियां और रागादि कषायोंको वढानेवाले दूध, दही, घी, गुड, तेल आदि रसोंका त्याग करना रसपरित्याग तप कहलाता है। अत्यन्त प्रवल इन्द्रियों का तेज घटानेके लिये और संयम की रुकावटें दूर करनेके लिये यह रसपरित्याग तपश्चरण किया जाता है।

ध्यान और अध्ययन में विघ्न करने वाले स्त्री, पशु, नपुंसक आदि से रहित ऐसी पर्वत की गुफायें, कन्दरा, स्मशान, सूने मकान, वन उद्यान आदि एकान्त, जीवोंकी पीड़ासे रहित और आच्छन्न (ढके हुए) स्थानों में मुनियों का शयन आसन करना (सोना,

गृहितेषु संवृतेषु संयतस्य शयनासनं विविक्तशयनासनं नाम । तत्किमर्थमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थमसभ्यदर्शनेन तत्सहवासेन वा जनितत्रिकालविषयरागद्वेषमोहापोहार्थं वा । वृक्षमूलाभ्रावकाशाऽऽतापनयोगवीरासनकुक्कुटासनपर्यंकार्द्धपर्यंकगोदोहनमकरमुखहस्तिशुण्डामृतकशयनैकपार्श्वदंडधनुःशय्यादिभिः शरीरपरिखेदः कायक्लेश इत्युच्यते । तत्किमर्थं वर्षाशीताऽऽतपविषमस्थलाऽऽसनविषमशय्यादिषु शुभध्यानपरिचर्यार्थं दुःखोपनिपाततितिक्षार्थं विषयसुखानभिष्वंगार्थं प्रवचनप्रभावनार्थं च कायक्लेशानुष्ठानं क्रियते । इतरथा हि ध्यानप्रवेशकाले सुखोचितः स्यात् द्वन्द्वोपनिपाते सति समाधानं न स्यात् एवं षड्विधं बाह्यलक्षणमुक्तं ।

बैठना) विविक्तशय्यासन तप कहलाता है । निर्बाध पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये स्वाध्याय तथा ध्यान की सिद्धि के लिये और असभ्य लोगों के दर्शन करने से अथवा उनका सहवास करने से तीनों कालों में उत्पन्न हुए राग द्वेष और मोह को दूर करने के लिये विविक्त शय्यासन तप किया जाता है ।

वृक्षके नीचे, अथवा चौहटेमें आतापन-योग धारण करना, वीरासन, कुक्कुटासन, पर्यंकासन, अर्धपर्यंकासन गोदोहनआसन, मकरमुखासन, हस्तिसुंडाशन, मृतकासन, एक करवटसे सोना, दंडके समान सोना, और धनुषके समान सोना इत्यादि कार्यों के द्वारा शरीर को क्लेश पहुंचाना कायक्लेश तप कहलाता है । वर्षाऋतु शीतऋतु और ग्रीष्मऋतु में विषम स्थल विषम आसन लगाकर बैठना तथा विषम स्थान में सोना आदि कार्यों में शुभ ध्यान बराबर बने रहने के लिये, उपस्थित हुए अनेक दुःखों को सहन करने के लिये विषय सुखों की लालसा दूर करने के लिये और प्रवचनकी प्रभावना आदिके लिये कायक्लेश तपश्चरण किया जाता है । यदि कायक्लेश तपश्चरण न किया जाय तो ध्यान के प्रारंभ में तो सुख पूर्वक ध्यान हो सकता है परन्तु किसी उपद्रव के उपस्थित होनेपर समाधान नहीं रह सकता इसलिये कायक्लेश तप-

त्तरमाभ्यन्तरमुच्यते। यतोऽन्यैस्तीर्थैरनभ्यस्तं ततोऽस्याऽऽभ्यन्तरत्वं, प्रायश्चित्तादितपो हि बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वादन्तःकरणव्यापाराच्चाभ्यंतरं। तत्र कर्तव्यस्याकरणे वर्जनीयस्यावर्जने यत्पापं सोऽतीचारस्तस्य शोधनं प्रायश्चित्तं। तत्किमर्थं प्रमाददोषव्युदासो भावप्रसादो नैःशल्यमनवस्थाव्यावृत्तिर्मर्यादात्यागः संयमदार्ढ्यं चतुर्विधाराधनमित्येवमादीनां सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं। तद्दशविधं-आलोचन, प्रतिक्रमणं, तदुभयं, विवेकः, व्युत्सर्गः, तपः, छेदः, मूलं, परिहारः, श्रद्धानमिति। तत्रैकान्तनिषण्णायापरिश्रा-

श्चरण करना ही चाहिये। इस प्रकार छह प्रकार का बाह्य तपश्चरण कहा।

अब आगे का आभ्यंतर तपश्चरण कहते हैं। अन्यमती लोग इस अभ्यंतर तपश्चरण का अभ्यास नहीं करते इसलिये इसको अभ्यंतर तप कहते हैं अथवा प्रायश्चित्त आदि तपश्चरणों में किसी भी बाह्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती केवल अन्तःकरण में ही व्यापार करना पड़ता है इसलिये भी इसको अभ्यंतर तप कहते हैं। किसी करने योग्य कार्यके न करने पर और त्याग करने योग्य पदार्थ के त्याग न करने पर जो पाप होता है उसे अतीचार कहते हैं उस पाप को वा अतीचार को शुद्ध करना प्रायश्चित्त कहलाता है। प्रमाद से उत्पन्न दोषों को दूर करने के लिये, अपने परिणामों को निर्मल रखने के लिये, शल्यों से अलग रहने के लिये, अनवस्था वा चंचलता दूर करने के लिये, मर्यादा को कायम रखने के लिये, संयम को दृढ रखने के लिये और चारों प्रकार की आराधनाओं के आराधन करने के लिये यह प्रायश्चित्त नाम का तपश्चरण किया जाता है। वह प्रायश्चित्त—आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान के भेद से दस प्रकार का है। जो (आचार्य) एकान्त स्थान में बैठे हुए हैं, जो सुने हुए दोषों को कभी किसी के सामने प्रगट नहीं करते, शास्त्रों के रहस्यों को अच्छी तरह जानते हैं और जिनका चित्त प्रसन्न है

विर्गा भुतरहस्याय गुरवे प्रसन्नमनसे विद्यायोग्योपकरणग्रहणादिषु प्रश्नविनयमन्तरेण प्रवृत्तस्य, विदितदेशकालस्य शिष्यस्य सविनयमात्मप्रमादनिवेदनमालोचनमित्युच्यते । तस्य दश दोषा भवन्ति—आकम्पितं, अनुमापितं, यद्दृष्टं, बादरं, सूक्ष्मं, छन्नं शब्दाकुलितं, बहुजनं, अव्यक्तं, तत्सेवितमिति । तत्रोपकरणेषु दत्तेषु प्रायश्चित्तं मे लघु कुर्वीतेति विचिन्त्य उपकरणदानं प्रथम आकंपितदोषः । प्रकृत्या पित्ताधिकोऽस्मि दुर्बलोऽस्मि ग्लानोऽस्मि नाऽलमहमुपवासादिकं कर्तुं यदि लघु दीयेत तदोपनिवेदनं करिष्य इति

एसे गुरु के समीप जाकर विद्या के योग्य उपकरण आदि को ग्रहण करने का प्रश्न वा विनय किये विना ही देश काल को जानने वाले शिष्य का विनय पूर्वक अपना प्रमाद निवेदन करना आलोचन कहलाता है। उस आलोचन के आकंपित, अनुमापित, यद्दृष्ट, वादर, सूक्ष्म, छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवित ये दश दोष हैं "यदि मैं कोई उपकरण भेंट करूंगा तो मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा" यही समझ कर कुछ भेंट देना पहिला आकंपित दोष है। "मेरी प्रकृति अधिक पित्तवाली है, मैं दुर्बल हूं, रोगी हूँ, उपवास आदि करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है यदि मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा तोमैं अपना दोष निवेदन करूंगा" इस प्रकार के वचन कहना दूसरा अनुमापित दोष है। जो दोष किसी दूसरे को दिखाई नहीं पडे हैं उन्हें तो छिपा लेना और दिखाई देने योग्य अथवा जो दूसरोंने देख लिया है एसे दोषो को निवेदन करना, इस प्रकार का मायाचार करना तीसरा यद्दृष्ट दोष है। आलस्य, प्रमाद, व अज्ञान से छोटे छोटे अपराधों को जानने में चित्त न लगना और स्थूल दोषों को निवेदन करना चौथा बादर दोष है। वडे भारी कठिन प्रायश्चित्त के भय से अथवा 'यह सूक्ष्म दोषों को भी दूर कर डालता है' इस प्रकार के अपने गुणों की प्रसिद्धि होने की इच्छा से वडे वडे दोषों को छिपाकर थोडेसे प्रमाद रूप आचरणों का निवेदन

वचनं द्वितीयोऽनुमापितदोषः। अन्यादृष्टदोषगूहनं कृत्वा दृष्टदोषनिवेदनं मायाचारस्तृतीयो यद्दृष्टदोषः। आलस्यात्प्रमादादज्ञानाद्वा-ऽल्पापराधावबोधनिरुत्सुकस्य स्थूलदोषप्रतिपादनं तुर्यो वादरदोष । महादुश्चरप्रायश्चित्तभयाद्वाऽहो सूक्ष्मदोषपरिहारकोऽयमिति स्वगुणाख्यापनचिकीर्षया वा महादोषसंवरणं कृत्वा तनुप्रमादाचारनिवेदनं पंचमः सूक्ष्मदोषः। ईदृशे व्रतातिचारे सति किंनु स्यात्प्रायश्चित्तमित्युपायेन गुरूपासना षष्ठश्छन्नदोषः। पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकेषु कर्मसु महति यतिसमवाय आलोचनशब्दा-

करना पांचवां सूक्ष्म दोष है। 'इस प्रकार के व्रतोंमें अतीचार लगनेसे मनुष्य को क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये' इस तरह अपना दोष न कहकर उपायांतर से पूछना अथवा पूछनेके लिये गुरु की उपासना करना छठा छन्न दोष है जहां पर पाक्षिक अर्थात् पन्द्रह दिनकी चातुर्मासिक अर्थात् चार महीनेकी वा सांवत्सरिक अर्थात् एक वर्षकी आलोचना हो रही है और सब मुनियों की आलोचना एक साथ हो रही है ऐसे शब्दों के समुदायमें पहले दोषों का कहना सातवां शब्दा-कुलित दोष है। "गुरु ने जो प्रायश्चित्त बतलाया है वह ठीक है या नहीं, आगममें कहा है या नहीं" इस प्रकार जब तक थोड़ा प्रायश्चित्त देता रहै तब तक शंकाकर अन्य साधुओं से पूछना आठवां बहुजन दोष है। अपना कुछ भी प्रयोजन विचारकर अपने समान किसी मुनि से अपने प्रमादरूप आचरण कहना नौवां अव्यक्त दोषहै इस अव्यक्त दोष के होते हुए अपने समान किसी मुनिसे वह बड़ा भारी प्रायश्चित्त ग्रहण करले तो भी उसका कुछ फल नहीं होता है। किसी दूसरे मुनि को जो प्रायश्चित दिया गया है उसे देखकर विचार करना कि "मेरे व्रतों में लगा हुवा अतीचार इन्हीं मुनिराज के अपराध के समान है अथवा मेरा अतीचार भी ठीक ऐसा ही है इसलिये जो प्रायश्चित्त इसको दिया गया है वही मेरे लिये ठीक है अब मुझे यह प्रायश्चित्त शीघ्र ही लेना चाहिये" इस प्रकार विचार कर अपने अपराधों को छिपाना दशमां

कुले पूर्णदोषकथनं सप्तमः शब्दाकुलितदोषः। गुरूपपादितं प्रायश्चित्तं किमिदं युक्तमागमे स्यान्नवेति यावल्लघु प्रतिपादयति तावद्वा शंकमानस्याऽन्यसाधुपरिप्रश्नोऽष्टमो बहुजनदोषः। यत्किंचित्प्रयोजनमुद्दिश्याऽऽत्मना समानायैव प्रमादाचारितं मावेद्य महदपि गृहीतं प्रायश्चित्तं न फलकरमिति नवमोऽव्यक्तदोषः। अस्यापराधेन ममातीचारः समानस्तमयमेव वेत्त्यस्मै यद्दत्तं तदेव मे युक्तं लघुकं तन्यमिति स्वदुश्चरितसंवरणं दशमस्तत्सेवितदोषः। आत्मन्यपराधं चिरमवस्थाप्य निर्कृतिभावमन्तरेण बालवदृजुबुद्ध्वा दोषा त्रि-वेदयतो न ते दोषा भवन्त्यन्यत्र संयतलोचनमेकांते द्विविषयमिष्टं, संयतिकालोचनं प्रकाशे त्र्याश्रयमिष्टं, लज्जापरपरिभवादिगणनया

तत्सेवित नामका दोष है। जो अपराध लगा हो उसे बहुत दिन नहीं रखना चाहिये, बिना किसी मायाचारके बालकके समान सरल बुद्धिसे दोषोंको निवेदन करते हैं उनके ऊपर लिखे दोषों में से कोई दोष नहीं होते। दूसरी बात यह है कि यदि कोई मुनि आलोचना करेगा तो एकान्त में करेगा और गुरू तथा वह शिष्य दो ही वहां रहेंगे तीसरा नहीं परन्तु यदि आर्यिका आलोचना करेगी तो प्रकाश में करेगी एकान्त स्थान में नहीं तथा वहां पर तीन जने रहने चाहिये। यदि कोई मुनि वा अर्जिका लज्जा अथवा दूसरे के तिरस्कार के डर से अतिचार को निवेदन कर उसका प्रायश्चित्त न ले, दोषों को न शोधे तो जो अपनी आमदनी और खर्च का हिसाब नही रखता ऐसे किसी कर्जदार के समान वह दुःख पाता है। जिस प्रकार श्वास रहित शरीर में प्राप्त हुई औषधि अपना फल नहीं देती उसी प्रकार आलोचना किये बिना बड़ा भारी किया हुआ तपश्चरण भी इच्छानुसार फल नहीं देता। जिस प्रकार निश्चय किये हुए मन्त्र के अनुसार न चलने वाले राजा को कोई बड़ी भारी और सदा टिकने वाली संपदा प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार आलोचना करने पर भी यदि गुरु के दिये हुए प्रायश्चित्त को न करे तो उसको भी सबसे भारी और सदा टिकने वाली मोक्षरूप संपदा नहीं मिलती।

निवेद्यातिचारं न शोधयेदपरीक्षिनाऽऽयव्ययोऽधमर्णवदवसीदति । महदपि तपः कर्मानालोचनपूर्वकं नाभिप्रेतफलप्रदं स्यामदेहगतौषधिवत् । कृताऽऽलोचनोऽपि गुरुमतं प्रायश्चित्तमकुर्वाणो विनिश्चितमंत्रानुप्रानशून्यराज्यवन्महतीं शाश्वतीं च संपदं न आप्नोति कृतालोचनचित्तगतं प्रायश्चित्तं परिमृष्टदर्पणगतरूपवत्परिभ्राजते ।

आस्थितानां योगानां धर्मकथादिव्याक्षेपहेतुसन्निधानेन विस्मरणे सत्यालोचनं पुनरनुष्ठायकस्य संवेगनिर्वेदपरस्य गुरुविरहितस्याल्पापराधस्य पुनर्न करोमि मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमादिभिर्दोषान्निवर्त्तनं प्रतिक्रमणं ।

किंचित्कर्माऽऽलोचनमात्रादेव शुद्धयत्यपरं प्रतिक्रमणेनेतरं दुःस्वप्नादिकं तदुभयसंसर्गेण शुद्धिमुपयाति । आलोचनप्रतिक्रमणपूर्वं गुरुणाऽभ्यनुज्ञातं शिष्येणैव कर्तव्यं तदुभयं पुनर्गुरुणैवानुष्ठेय ।

आलोचना करने पर हृदयमें आया हुआ जो प्रायश्चित्त है वह मजे हुए दर्पणमें प्राप्त हुए रूप के समान बहुत अच्छा शोभायमान होता है । भावार्थ—प्रायश्चित्त करनेसे सब व्रत निर्मल शोभायमान होते हैं।

धर्मकथा आदिमें कोई विघ्नके कारण उपस्थित होजाने पर यदि कोई मुनि अपने स्थिर योगोंको भूल जाय तो पहिले आलोचना करते हैं और फिर वे यदि संवेग वैराग्यमें तत्पर रहें समीपमें गुरु न हों तथा छोटासा अपराध लगा हो तो "मैं फिर कभी एसा नहीं करूंगा यह मेरा पाप मिथ्या हो" इस प्रकार दोषोंसे अलग रहना प्रतिक्रमण कहलाता है।

कोई कर्म केवल आलोचना करनेसे ही शुद्ध होजाते हैं, कोई अकेले प्रतिक्रमणसे ही शुद्ध होजाते हैं और दुःस्वप्न आदि कितने ही दोष तदुभय अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण दोंनो के संबंध से शुद्ध होते हैं। प्रतिक्रमण आलोचना पूर्वक ही होता है और गुरुकी आज्ञानुसार शिष्य स्वयं उसे करलेता है परंतु तदुभय गुरुके द्वारा ही किया जाता है।

संसक्तेषु द्रव्यक्षेत्रान्नपानोपकरणादिषु दोषान्निवर्त्तयितुमलभमानस्य तद्द्रव्यादिविभजनं विवेकः। अथ वा शक्त्यनुगूहनेन प्रयत्नेन परिहरतः कुतश्चित्कारणादप्रासुकग्रहणग्राहणयोः प्रासुकस्यापि प्रत्याख्यातस्य विस्मरणात्प्रतिग्रहे च स्मृत्वा पुनस्तदुत्सर्जनं विवेकः

दुःस्वप्नदुश्चिन्तनमलोत्सर्जनाऽऽगमातीचारनदीमहाटवीरणादिभिरन्यैश्चाप्यतीचारे सति ध्यानमवलंब्य कायमुत्सृज्यान्तर्मुहूर्त-दिवसपक्षमासादिकालावस्थानं व्युत्सर्गं इत्युच्यते।

सत्त्वादिगुणालंकृतेन कृतापराधेनोपवासैकस्थानाचाम्लनिर्विकृत्यादिभिः क्रियमाणं तप इत्युच्यते भयोन्मादत्वरणविस्मरणान-

किसी मुनिका हृदय किसी द्रव्य क्षेत्र अन्न पान अथवा उपकरण में आशक्त हो और किसी दोषको दूर करनेके लिये गुरु उन मुनिको वह पदार्थ प्राप्त न होने दे उस पदार्थको उन मुनिसे अलग करले तो वह विवेक नामका प्रायश्चित्त कहलाता है। अथवा अपनी शक्तिको न छिपाकर प्रयत्नपूर्वक जीवोंकी बाधा दूर करते हुए भी किसी कारणसे अप्रासुक पदार्थको ग्रहण करले अथवा जिसका त्याग करचुके हैं ऐसे प्रासुक पदार्थोंको भी भूलकर ग्रहण करले और फिर स्मरण हो आने पर उन सबका त्याग करदे तो वह भी विवेक प्रायश्चित्त कहलाता है।

कोई दुःस्वप्न होजाय, किसीका बुरा चिंतवन होजाय, मल छूट जाय, आगममें अतीचार लगजाय अथवा नदी, महावन युद्ध और अन्य किसी कारणसे अतीचार लगजाय तो ध्यान लगाकर और शरीर से ममत्व छोडकर अन्तर्मुहूर्ततक एक दिनतक पन्द्रह दिन तक वा एक आदि महीनेतक ज्यों के त्यों खड़े रहना अथवा वैठे रहना व्युत्सर्ग कहलाता है।

जो शारीरिक वा मानसिक बल आदि गुणों से परिपूर्ण हैं और जिनसे कुछ अपराध हुआ है ऐसे मुनि उपवास, एकाशन आचाम्ल, निर्विकृत्य (दूध आदि रसों से

वर्णोधाशक्तिव्यसनादिभिर्महाव्रतातीचारे सत्यनन्तरोक्त षड्विधप्रायश्चित्त भवति । चिरप्रव्रजितस्य सहजबलस्य स्वभावशूरस्य गर्वितस्य कृतदोषस्य दिवसमासादिभागेन प्रव्रजनं छित्वा छिन्नकालादिनाऽवस्थानं छेदो नाम ।

पार्श्वस्थादीनां मूलं प्रायश्चित्तं, तद्यथा—पार्श्वस्थः, कुशीलः, ससक्त, अवसन्नः, मृगचारित्र इति । तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः । क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्यानयकारी

रहित) आदिके द्वारा जो तपश्चरण करते हैं उसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं । भय, उन्माद, शीघ्रता, भूल, अज्ञान, शक्तिहीनता और व्यसनादिक द्वारा महाव्रतोंमें अतीचार लगनेपर ऊपर कहे हुए आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग और तप ये छहो प्रकारके प्रायश्चित्त होते हैं ।

जो साधु बहुत दिनके दीक्षित हैं, स्वाभाविक वलशाली हैं स्वभावसे ही शूरवीर हैं और वडे अभिमानी हैं परंतु जिनसे कुछ अपराध हो चुका है ऐसे मुनियोंकी एक दिनकी दीक्षा अथवा एक महीनेकी वा अधिक दिनोंकी दीक्षा कम कर देना और फिर उनकी दीक्षा कम कर देनेके बाद जितने दिनोंकी दीक्षा कायम रहती है उतने ही दिनोंके दीक्षित मुनियोंके साथ रखना छेद नामक प्रायश्चित्त है ।

पार्श्वस्थ, आदि मुनियोंके लिये मूल नामका प्रायश्चित्त होता है वही आगे दिखलाते हैं —पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न, और मृगचारित्र ये पांच प्रकारके मुनि जिनधर्मसे वहिष्कृत होते हैं । जो मुनि वसतिकाओंमें रहते हैं, उपकरणोंसे ही अपनी जीविका चलाते हैं परंतु मुनियोंके समीप रहते हैं उन्हें पार्श्वस्थ कहते हैं । जिनका आत्मा क्रोधादि कषायोंसे कलुषित हैं जो व्रत गुण तथा शील पालन करनेसे रहित हैं और जो संघका बुरा करनेवाले

कुशीलः । मंत्रवैद्यकज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः । जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसोऽवसन्नः । त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छन्दविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छन्द इति वा । एते पंच श्रमणा जिनधर्मबाह्याः
एवमुक्तपार्श्वस्थादिपंचविधोन्मार्गस्थितस्यापरिमितापराधस्य सर्वपर्यायमपहाय पुनर्दीक्षादानं मूलमित्युच्यते ।

परिहारोऽनुपस्थानपारांचकभेदेन द्विविधः । तत्राऽनुपस्थानं निजपरगणभेदाद् द्विविधं । प्रमादादन्यमुनिसंबंधिनमृषिं छात्रं गृहस्थं वा परपाखंडिप्रतिबद्धचेतनाचेतनद्रव्यं वा परस्त्रियं वा स्तेनयतो मुनीन् प्रहरतो वाऽन्यदप्येवमादिविरुद्धाचरितमाचरतो

हैं उनको कुशील कहते हैं । जो मंत्र वैद्यक वा ज्योतिषशास्त्रसे अपनी जीविका करते हैं और राजा आदिकोंकी सेवा करते हैं उन्हें संसक्त कहते हैं । जो जिनवचनोंको जानते तक नही जिन्होंने चारित्रका भार सब छोड दिया है,जो ज्ञान और चारित्र दोनों से भ्रष्ट हैं और चारित्रके पालन करनेमें आलस करते हैं उन्हें अवसन्न कहते हैं । जिन्हों ने गुरुका संघ छोड दिया है जो अकेले ही स्वच्छंद रीतिसे विहार करते हैं और जो जिनेंद्र देवके वचनों को दूषित करनेवाले हैं उनको मृगचारित्र अथवा स्वच्छंद कहते हैं ये पाचों ही मुनि जिनधर्मसे बाह्य हैं । ये ऊपर कहे हुए पांचों प्रकारके पार्श्वस्थ आदि मुनि मिथ्यामार्गमें रहते हैं और अपरिमित अपराध करते हैं इसलिये उनकी मुनि अवस्थाकी सब पर्यायका त्याग कर अर्थात् उनकी समस्त दीक्षाका छेदकर फिरसे दीक्षा देना मूल नामका प्रायश्चित्त कहलाता है ।

परिहारनामक प्रायश्चित्त–अनुपस्थान और पारंचिक भेदसे दो प्रकारका है । उसमें अनुपस्थान भी निजगण और परगणके भेदसे दो प्रकारका है । प्रमादसे अन्य मुनि संबंधी ऋषि, विद्यार्थी, गृहस्थ वा दूसरे पाखंडीके द्वारा रोके हुए चेतनात्मक वा अचेतनात्मक द्रव्य अथवा परस्त्री आदिको चुरानेवाले, मुनियों को मारनेवाले अथवा और भी ऐसे ही ऐसे विरुद्ध

नवदशपूर्वधरस्यापित्रिकसंहननस्य जितपरीषहस्य दृढधर्मणो धीरस्य भवभीतस्य निजगुणानुपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवति । तन्न ऋष्याश्रमाद् द्वात्रिंशद्दण्डान्तरविहितविहारेण बालमुनीनपि वंदमानेन प्रतिवन्दनाविरहितेन गुरुणा सहाऽऽलोचयता शेषजनेषु कृतमौनव्रतेन विधृतपराङ्मुखपिच्छेन जघन्यतः पंचपंचोपवासा उत्कृष्टतः षण्मासोपवासाः कर्त्तव्याः, उभयमप्याद्वादशवर्षादिति । दर्पादनन्तरोक्तान्दोषानाचरतः परगणोपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवतीति । स सापराधः स्वगणाचार्येण परगणाचार्यं प्रति प्रहेतव्यः, सोऽप्याचार्य-

आचरण करनेवाले परंतु नौ वा दशपूर्वोंके जानकार, पाहेले तीन संहननोंको धारण करनेवाले परीषहोंको जीतनेवाले, धर्ममें दृढ रहने वाले धीर वीर और संसारसे डरनेवाले मुनियोंके निजगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है। जिनको यह प्रायश्चित्त दिया जाता है वे मुनियोंके आश्रमसे वत्तीस दंडके अंतरसे बैठते हैं, बालक मुनियोंको (कम उम्रके अथवा थोडे दिनके दीक्षित मुनियोंको) भी वे वंदना करते हैं परंतु वदलेमें कोई मुनि उन्हें वंदना नहीं करता वे गुरुके (आचार्यके) साथ सदा आलोचना करते रहते हैं, शेषलोगोंके साथ वे बात चीत नहीं करते मौनव्रत धारण किये रहते हैं, अपनी पीछीको उल्टी रखते हैं, कमसे कम पांच पांच उपवास और अधिक से अधिक छह छह महीने तकके उपवास करते रहते हैं और इस प्रकार दोनों प्रकारके उपवास बारह वर्ष तक करते हैं यह निजगणानुपस्थापन प्रायश्चित्त है। जो अभिमानसे ऊपर लिखे दोषोंको करते हैं उनके परगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है। उसकी क्रिया यह है कि अपने संघके आचार्य ऐसे अपराधीको दूसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं, वे दूसरे संघके आचार्य भी उनको आलोचना सुनकर प्रायश्चित्त दिये विना ही किसी तीसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं इसीप्रकार सातसंघोंके आचार्योंके समीप उन्हें भेजते हैं अंतके अर्थात् सातवें संघके आचार्य उन्हें पहिले आलोचना सुननेवाले आचार्यके

स्तस्यालोचनमाकर्ण्य प्रायश्चित्तमदत्त्वाऽऽचार्यान्तरं प्रस्थापयति, सप्तमं यावत् पश्चिमश्च प्रथमाऽऽलोचनाऽऽचार्यं प्रति प्रस्थापयति, स एव पूर्वः पूर्वोक्तप्रायश्चित्तेनैनमाचरयति ।

परिहारस्य प्रथमभेदो द्विविधो गतः । पारंचिकमुच्यते, तीर्थकरगणधरगणिप्रवचनसंघाद्यासादनकारकस्य नरेन्द्रविरुद्धाचरितस्य राजानमभिमतामात्यादीनां दत्तदीक्षस्य नृपकुलवनितासेवितस्यैवमाद्यन्यैर्दोषैश्च धर्मदूषकस्य पारंचिकं प्रायश्चित्तं भवति । चातुर्वर्ण्य-

समीप भेजते हैं तब वे पहिले ही आचार्य उन्हें ऊपर लिखा हुआ (निजगणानुपस्थापनमें लिखा हुआ) प्रायश्चित्त देते हैं इसप्रकार निजगणानुपस्थापन और परगणानुपस्थापन ये दोनों ही परिहारके भेद कहे। अब पारंचिक नामके परिहारको कहते हैं। जो मुनि तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, शास्त्र और संघ आदिकी झूठी निंदा करनेवाले हैं, राज्यविरुद्ध आचरण करते हैं, जिन्होंने किसी राजाको अभिमत अथवा किसी राजाको प्रिय ऐसे मंत्री आदिको दीक्षा दी है जिन्होंने राजकुलकी स्त्रियोंका सेवन किया है अथवा ऐसे अन्य दोषोंके द्वारा जिन्होंने धर्ममें दोष लगाया है ऐसे मुनियोंके पारंचिक प्रायश्चित्त होता है। उसकी क्रिया यह है कि आचार्य पहिले चारो प्रकारके मुनियोंके संघको इकट्ठा करते हैं और फिर उस अपराधी मुनिको बुलाकर घोषणा करते हैं कि यह मुनि महा पापी है अपने मतसे बाह्य है इसलिये बंदना करनेके अयोग्य है इसप्रकार घोषणाकर तथा अनुपस्थान नामका प्रायश्चित्त देकर उसे देशसे निकाल देते हैं।

जिन्होंने अपना मिथ्यात्व छोड दिया है, महाव्रत धारण कर लिये हैं और आप्त आगम पदार्थोंका श्रद्धान कर लिया है उनके श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त कहा जाता है। इसप्रकार दश प्रकारका प्रायश्चित्त कहा। देश, काल, शक्ति, और संयममें किसी तरहका विरोध

श्रमणा. सघ संभूय तमाहूय एष महापातकी समयबाह्यो न बंद्य इति घोषयित्वा दत्वाऽनुपस्थानं प्रायश्चित्तं देशान्निर्घाटयन्ति ।

मिथ्यात्वं गत्वा स्थितस्य पुनरपि गृहीतमहाव्रतस्याऽऽप्ताऽऽगमपदार्थानां श्रद्धानमेव प्रायश्चित्तं, तदेतद्दशविधं, देशकालशक्तिसंयमाद्यविरोधेनाल्पानल्पापराधानुरूप दोषप्रशमनं चिकित्सितवद्विधेयं । जावस्याऽसंख्येयलोकमात्रपरिमाणाः परिणामविकल्पा अपराधाश्च तावंत एव न तेषा तावद्विकल्प प्रायश्चित्तमस्ति व्यवहारनयापेक्षया पिंडीकृत्य प्रायश्चित्तविधानमुक्तं ।

कषायेन्द्रियविनयनं विनयः,अथवा रत्नत्रयस्य तद्वता च नीचैर्वृत्तिर्विनयः, स चतुःप्रकारः । ज्ञानविनयो दर्शनविनयश्चारित्रविनय-उपचारविनयश्चेति । तत्राऽनलसेन शुद्धमनसा देशकालादिविशुद्धिविधानविचक्षणेन सबहुमानेन यथाशक्ति निषेव्यमाणो मोक्षार्थं ज्ञान-

न आने पावे और छोटा बडा जैसा अपराध हो उसके अनुसार वैद्यके समान दोषोंका शमन करना चाहिये । प्रत्येक जीवके परिणामोंके भेदोंकी संख्या असख्याततलोक मात्र है, और अपराधोंकी संख्या भी उतनी ही है परंतु प्रायश्चित्तके उतने भेद नहीं कहे हैं । प्रायश्चित्तके ऊपर लिखे भेद तो केवल व्यवहार नयकी अपेक्षासे समुदायरूपसे कहे गये हैं ।

कषाय और इंद्रियोंको नम्र करना विनय है अथवा रत्नत्रय और रत्नत्रयको धारण करनेवालेके प्रति अपनी नम्र वृत्ति रखना उनके साथ उद्धतपना न करना. नम्रतासे रहना विनय है । वह विनय चार प्रकार है–ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय । जो आलस रहित है जिसका मन शुद्ध है और जो देश काल आदिकी विशुद्धिके भेद प्रभेद जाननेमें चतुर है ऐसा पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार आदर सत्कार पूर्वक मोक्षके लिये ज्ञानका ग्रहण करना अभ्यास करना स्मरण करना आदि रीतिसे ज्ञानकी सेवा करता है उसे ज्ञान विनय कहते हैं । सामायिकसे लेकर लोकबिंदुसार पर्यंत श्रुतज्ञानरूपी महासागरमें भगवान जिनेंद्र देवने जो पदार्थोंका स्वरूप कहा है उनका उसीप्रकार श्रद्धान करना, तथा निःशंकित आदि आठों

पर्गोपचारविनयः प्रत्येनव्यः । मंत्रौषधोपकरणयशः सत्कारलाभाद्यनपेक्षितचित्तेन परमार्थनिस्पृहमतिनेहलौकि.... फलानिरूत्सुकेन कर्मक्षयकांक्षिणा ज्ञानलाभाऽऽचारविशुद्धिसम्यगाराधनादिसिद्धयर्थं विनयभावन कर्तव्यं ।

वैयावृत्त्यमुच्यते । कायपीडादुष्टपरिणामव्युदासार्थं कायचेष्टया द्रव्यांतरेणोपदेशेन च व्यापृतस्य यत्कर्म तद्वैयावृत्त्य । तद्दशविधं आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञवैयावृत्त्यभेदेन । यस्मात् सम्यग्ज्ञानादिपंचाचाराधारादाहृत्य व्रतानि स्वर्गापवर्गसुखफलकल्पकुजवाजानि भव्या आत्महितार्थमाचरन्ति स आचार्यः । विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाऽधिष्ठानादागम

अच्छीतरह आराधन करनेके लिए तथा ऐसे ही ऐसे और भी श्रेष्ठकार्योंके लिए विनय करनेकी भावना रखनी चाहिए। इस विनयको धारण करनेसे मोक्षका द्वार खुला रहता है।

अब आगें वैयावृत्यको कहते हैं। शरीरकी पीडा अथवा दुष्ट परिणामोंको दूर करनेकेलिये शरीरकी चेष्टासे किसी अन्य द्रव्यसे, अथवा उपदेश देकर प्रवृत्त होना अथवा कोई भी क्रिया करना वैयावृत्य है। वह वैयावृत्य आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, और मनोज्ञके सेवा चाकरीके भेदसे दश प्रकारका होता है। भव्य पुरुष अपने आत्माका कल्याण करनेके लिये सम्यग्ज्ञान आदि पंचाचारोंके आधाररूप जिन आचार्योंसे स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाले कल्पवृक्षके बीजरूप व्रतोंको लेकर आचरण करते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। व्रत शील और भावनाके आधाररूप जिन मुनिसे श्रुतज्ञान रूपी आगमका अध्ययन करते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं। आचाम्लवर्द्धन, सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित, शातकुंभ, मंदरपंक्ति, विमानपंक्ति, नंदीश्वरपंक्ति, जिनगुणसंपत्ति, श्रुतज्ञान, कनकावली, मुक्तावली, मृदंगमध्य, वज्रमध्य, कर्मक्षपण और त्रैलोक्यसार आदि महाउपवास करनेवाले तपस्वी कहलाते हैं। जो श्रुतज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेमें तत्पर हैं, और व्रत भावनाओंके पालन करनेमें निपुण हैं उन्हें शैक्ष कहते हैं।

श्रुताभिधानमधीयते स उपाध्यायः । आचाम्लवर्द्धमानभद्रसिंहनिष्क्रीडितशातकुंभसमन्तरपंक्तिविमानपंक्तिजिनगुणसं-
पत्तिश्रुतज्ञानरत्नावलिमुक्तावलिमृदङ्गमध्यवज्रमध्यधर्मचक्रवालसिंहविक्रमादितपोविधानानुष्ठायी तपस्वी । श्रुतज्ञानशिक्षणपरोऽनुपर-
तव्रतभावनानिपुणः शैक्षः । रुजादिभिः क्लिष्टशरीरो ग्लानः । स्थविराणां सन्ततिर्गणः । दीक्षकस्याऽऽचार्यस्य शिक्षयाऽऽम्नायः
कुलं । चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवहः संघः । चिरकालभावितप्रव्रज्यागुणः साधुः । अभिरूपो मनोज्ञः, आचार्याणां संमतो वा दीक्षाभि-
मुखो वा मनोज्ञः, अथवा विद्वान् वाग्मी महाकुलीन इति यो लोकस्य सम्मतः स मनोज्ञस्तस्य ग्रहणं प्रवचनस्य लोके गौरवो-

रोगादिके द्वारा जिनका शरीर क्लेशित है उन्हें ग्लान कहते हैं। वृद्ध मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं। दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंकी परंपराको कुल कहते हैं। ऋषि मुनि यति अनगार इन चारों प्रकारके मुनियोंके समुदायको संघ कहते हैं। जो बहुत दिनके दीक्षित हों उन्हें साधु कहते हैं। जो सुंदर हों उन्हें मनोज्ञ कहते हैं। अथवा जो आचार्यको मान्य हो अथवा दीक्षा लेनेके संमुख हो उसे मनोज्ञ कहते हैं अथवा जो विद्वान हो; वक्ता हो, महाकुलीन हो इसप्रकार लोकमें जो मान्य हो उसे मनोज्ञ कहते हैं। मनोज्ञ ग्रहण करनेका यह भी अभिप्राय है कि संसारमें जो अपने मतका गौरव उत्पन्न करनेका कारण हो ऐसा असंयत सम्यग्दृष्टी भी मनोज्ञ कहलाता है। अथवा जो संवेगादिक संस्कार सहित हैं उन्हें भी मनोज्ञ कहते हैं। ऊपर लिखे हुए आचार्य आदिके व्याधि परिषह आ जानेपर अथवा मिथ्यात्वका सम्बन्ध हो जानेपर विना किसी प्रत्युपकारकी इच्छाके प्रासुक औषध, भोजन, पान, आश्रय, आसन, काष्ठासन विछौना आदि धर्मोपकरणोंके द्वारा उस व्याधि वा परीषहको दूर करना मिथ्यात्वको दूर करना, सम्यग्दर्शन स्थापन करना आदि वैयावृत्य कहलाता है। यदि औषध भोजन पान आदि वाह्य सामग्रियोंका मिलना असंभव हो तो

त्पादनहेतुत्वादसंयतमम्यग्दृष्टिर्वा संस्कारोपेतरूपत्वान्मनोज्ञः । आचार्यादीनां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते तत्प्रत्युपकाराशया प्रासुकौषधभुक्तपानाऽऽश्रयपीठफलकसंस्तरादिभिर्धर्मोपकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादि वैयावृत्त्य । बाह्यस्यौषधभुक्तपानादरसभवे स्वकायेन श्लेष्मसिंघाणकांतर्मलाद्यपकर्षणादि तदानुकूल्यानुष्ठानं च वैयावृत्त्यमिति कथ्यते, तत्पुनः किमर्थं समाध्याध्यानं विचिकित्साऽभावः प्रवचनवात्सल्यं सनाथता चेत्येवमाद्यर्थं ।

स्वाध्यायो भण्यते । स्वस्मै हितोऽध्यायः स्वाध्यायः, स च वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशभेदेन पचविधः । तत्र

अपने शरीरके द्वारा कफ नाकका मल तथा अंतर्मल आदिको दूर करना और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना वैयावृत्य कहलाता है। समाधि, ध्यान, विचिकित्सा (ग्लानि) का अभाव साधर्मियोंके साथ प्रेमभाव और सबको सनाथ बनाये रखनेके लिये वैयावृत्य किया जाता है।

अब आगे स्वाध्यायको कहते हैं। अपने आत्माका हित करनेवाला अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वह स्वाध्याय वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेशके भेदसे पांच प्रकारका होता है। जिसकी आत्मामें किसी तरहकी अपेक्षा नहीं है, जो केवल मोक्षकी इच्छा रखता है और जानने योग्य सब विषय जिसे मालूम हैं ऐसे किसी मनुष्य वा मुनिके द्वारा किसी योग्य पात्रके लिए निर्दोष ग्रंथ अथवा अर्थ अथवा ग्रंथ (पाठ) अर्थ दोनों ही प्रतिपादन करना वाचना है अपने आत्माकी उन्नति प्रकाशित करनेके लिए अथवा अन्य किसीको समझानेके लिए उपहास, संघर्ष, प्रहसन आदिको (हंसी मजाक आदिको) छोडकर संशय दूर करनेके लिए अथवा स्वयं पदार्थका स्वरूप निश्चय करनेके लिए कोई ग्रंथ (पाठ) अर्थ अथवा ग्रंथ अर्थ दोनों ही किसी दूसरेसे पूछना पृच्छना कहलाती है। जिन्हें पदार्थोंकी प्रक्रियाएं सब मालूम हैं और तपाये हुए लोहेके गोलेके समान जिनका चित्त उन्हीं पदार्थोंमें

निरपेक्षात्मना मुमुक्षुणा विदितवेदितव्येन निरवद्यस्य ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य वा पात्रं प्रति प्रतिपादनं वाचनेत्युच्यते । आत्मोन्नतिप्रकटनार्थं पराभिसंधनार्थमुपहाससंघर्षप्रहसनादिविवर्जितः संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य परं प्रति पर्यनुयोगः पृच्छना । अधिगतपदार्थप्रक्रियस्य तप्तायःपिंडवदर्पितचेतसो मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा । व्रतिनो विदितसमाचारस्यैहलौकिकफलनिरपेक्षस्य द्रुतविलम्बितपदाक्षरच्युतादिघोषदोषविशुद्धं परिवर्त्तनमाम्नायः । दृष्टप्रयोजनपरित्यागादुन्मार्गनिवर्त्तनार्थं सन्देहव्यावर्तनार्थमपूर्वपदार्थप्रकाशनार्थं धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः । किमर्थोऽय स्वाध्यायः, प्रज्ञातिशयः प्रशस्ताध्यवसायः प्रवचनस्थितिः, संशयोच्छेदः, परवादिशंकाऽभाव, प्रभावना, परमसंवेगः, तपोवृद्धिः, अतीचारविशुद्धिः, कषायेन्द्रियजयः, परमोपायः, इत्येवमाद्यर्थं स्वाध्यायोऽनुष्ठेयः ।

लगा हुआ है ऐसे मुनि जो उन पदार्थोंको अपने मनमें बार बार चिंतवन करते हैं उसको अनुप्रेक्षा कहते हैं । व्रती सब समाचारोंको (श्रेष्ठ आचरणोंको) जाननेवाले और इसलोक संबधी फलकी अपेक्षासे रहित मुनिका शीघ्रता वा धीरताके कारण पद वा अक्षरोंका छूट जाना आदि घोकनेके दोषोंसे रहित शुद्ध पाठका बार बार वांचना वा घोकना आवृत्ति करना आम्नाय कहलाता है । किसी प्रत्यक्ष प्रयोजनका त्यागकर मिथ्यामार्गको दूर करनेके लिए किसी संदेहको दूर करनेके लिए अथवा अपूर्व पदार्थोंको प्रकाशित करनेके लिए धर्मकथा आदिका कहना उपदेश देना धर्मोपदेश है । यह स्वाध्याय, बुद्धिको बढाना, श्रेष्ठज्ञान प्राप्त करना, शास्त्रज्ञानको स्थिर रखना, संशयोंको दूर करना, परवादियोंकी शंकाका निरास करना, जिनमतकी प्रभावना करना, परम वैराग्य धारण करना, तपकी वृद्धि करना, अतीचारोंकी विशुद्धि करना, कषाय तथा इंद्रियोंको जीतना, और परम मोक्षका उपाय करना आदि कार्योंके लिए सदा करते रहना चाहिए ।

कायोत्सर्ग उच्यते। विविधानां बाह्याभ्यन्तराणां बन्धहेतूनां दोषाणामुत्तमस्त्यागो व्युत्सर्गः। आत्मनाऽनुपात्तस्यैकत्वमनापन्नस्याहारादेस्त्यागो बाह्योपधिव्युत्सर्गः। क्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वहास्यरत्यरतिशोकभयादिदोषनिवृत्तिराभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः, कायत्यागश्चाऽभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः। स द्विविधः। यावज्जीवं, नियतकालश्चेति। तत्र यावज्जीवं त्रिविधः। भक्तप्रत्याख्यानेङ्गिनीमरणप्रायोपगमनभेदात्। तत्र भक्तप्रत्याख्यानं जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टेन द्वादशवर्षाणि, अवान्तरो मध्यम उभयोपकारसापेक्षं

अब आगे कायोत्सर्ग कहते हैं। अनेक तरहके बाह्य तथा आभ्यंतर बंधके कारणरूप दोषोंका उत्तम रीतिसे त्याग करना व्युत्सर्ग है। जिसे आत्मा स्वयं ग्रहण नहीं करता और न जो आत्माके साथ मिलकर एकरूप होता है ऐसे आहार आदिका त्याग करना बाह्योपधिव्युत्सर्ग है। क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व हास्य रति अरति शोक और भय आदि दोषोंको दूर करना आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। शरीरका त्याग करना भी आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। वह दो प्रकारका है एक जीवनपर्यंत तक और दूसरा किसी नियतसमयतक। उसमें भी जीवनपर्यंत तकका आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग—भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनीमरण और प्रायोपगमनके भेदसे तीन प्रकारका है। उसमें भी भक्तप्रत्याख्यानका जघन्यसमय अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट बारह वर्ष है और अवांतरके भेदरूपसमय सब मध्यम हैं। स्वपर दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा रखकर जो मरण किया जाता है वह भक्तप्रत्याख्यानमरण है। जिसमें दूसरेके प्रतिकारकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्माके उपकारकी अपेक्षा हो उसे इंगिनीमरण कहते हैं। जिसमें दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा न हो उसे प्रायोपगमन कहते हैं। नियतकाल भी नित्य नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। आवश्यक आदि क्रियाओंका करना नित्य है, तथा पर्वके दिनोंमें होनेवाली क्रियाएं करना वा निषद्या क्रिया आदि करना नैमित्तिक है। क्रियाओंके करनेपर भी

भक्तप्रत्याख्यानमरणं । परप्रतीकारनिरपेक्षमात्मोपकारसापेक्षमिंगिनीमरणं । उभयोपकारनिरपेक्षं प्रायोपगमनं । नियतकालो द्विविधः, नित्यनैमित्तिकभेदेन । नित्य आवश्यकादयः । नैमित्तिकः पार्श्वणी क्रिया निषद्याक्रियादयश्च । क्रियाकरणे बन्दनायाः कायोत्सर्गस्य च द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति । तत्र बन्दनाया अनादृतं, स्तब्धं, प्रविष्टं, परपीडितं, दोलायितं, उन्मस्तकं, कच्छपरंगितं, मत्स्योद्वर्त्तनं, मनोदुष्टं, वेदिकाबंधं, भेष्यत्वं, भीषितं, ऋद्धिगौरवं, शेषगौरवं, स्तेनितं, प्रत्यनीकं, क्रोधादिशल्यं,

बंदना और कायोत्सर्गके बत्तीस २ दोष होते हैं। उनमेंसे बंदनाके अनादृत, स्तब्ध, प्रविष्ट, परपीडित, डोलायित, उन्मस्तक, कच्छपरंगित, मत्स्योद्वर्तन, मनोदुष्ट, वेदिका बंध, भेष्यत्व, भीषित, ऋद्धिगौरव, शेषगौरव स्तेनित, प्रत्यनीक, क्रोधादिशल्य, तर्जित, शब्दित, हेडित, त्रिवलित, कुंचित, आचार्यादिदर्शन, अदृष्ट, संज्ञकरमोचन, आलब्ध, अनालब्ध, हीन, अधिक, मूक, घर्घर और चुरुलित ऐसे बत्तीस दोष होते हैं। इसीप्रकार जिसमें दोनों भुजाएं लंबी छोड दी गई हैं, चार अंगुलके अंतरसे दोनों पैर एकसे रक्खे हुए हैं और शरीरके अंग उपांग सब स्थिर हैं ऐसे कायोत्सर्गके भी बत्तीस दोष होते हैं। उनके नाम ये हैं–घोटकपाद, लतावक्र स्तंभावष्टभ, कुड्याश्रित, मालिकोद्वहन, शबरागुह्य, गूहन, शृंखलित लंवित, उत्तरित, स्तनदृष्टि, काकालोकन, खलीनित, युगकंधर, कपित्थमुष्टि, शीर्षप्रकंपित, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालन, भ्रूक्षेप, उन्मत्त, पिशाच, पूर्वदिशावलोकन, आग्नेयदिशावलोकन, दक्षिणदिशावलोकन, नैऋत्यदिशावलोकन, पश्चिमदिशावलोकन, वायव्यदिशावलोकन, उत्तर दिशावलोकन, ईशानदिशावलोकन, ग्रीवोन्नमन, ग्रीवावनमन, निष्ठीवन और अंगस्पर्शन। क्रिया करते समय अपनी शक्तिको कभी नहीं छिपाना चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार खडे होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये। यदि खडे होनेकी सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासनसे बैठकर करना चाहिये। मन वचन काय तीनोंकी शुद्धतापूर्वक

गर्जितं, शब्दितं, हेदितं, त्रिवलितं, कुंचितं, आचार्यादिदर्शनं, अदृष्टं, मल्लकरमोचनं, आलब्धं, अनालब्धं, हीनं, अधिकं, मूकं, दर्दुरं, चुलुलितमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति । व्युत्सृष्टबाहुयुगले चतुरंगुलान्तरितसमपादे सर्वांगचलनरहिते कायोत्सर्गेऽपि दोषाः स्युः । घोटकपादं, लतावक्रं, स्तंभावष्टंभं, कुड्याश्रितं, मालिकोद्वहनं, शबरीगुह्यगूहनं, शृंखलितं, लंबितं, उत्तरितं, स्तनदृष्टिः, काकावलोकनं, खलीनितं, युगकन्धरं, कपित्थमुष्टिः, शीर्षप्रकंपितं, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालनं, भ्रूक्षेपं, उन्मत्तं, पिशाचं, अष्टदिगवलोकनं, ग्रीवोन्नमनं, ग्रीवावनमनं, निष्ठीवनं, अंगस्पर्शनमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति ।

दोनों हाथोंका संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओंकी प्रतिज्ञाकर सामायिक दंडकका (सामायिक पाठका) उच्चारण करना चाहिये। उससमय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारण कर एकशिरोनति करना चाहिये। इसीप्रकार सामायिकदंडकके समाप्त होनेपर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये इसतरह शास्त्रोंमें लिखे हुए समयतक भगवान जिनेंद्रदेवके गुणोंका स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये इसीप्रकार दूसरे दंडकके प्रारंभ और अंतमें करना चाहिये। इसप्रकार एक एक कायोत्सर्गके बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं। अथवा एक एक प्रदक्षिणामें (दिशा बदलते समय) उसदिशासंबंधी चैत्य चैत्यालयके सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये। इसप्रकार चारों दिशाओंमें बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये। आवर्त और शिरोनतिका जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता। लिखा भी है — दुउपादं इत्यादि।

अर्थात्—दो आसनोंसे यथाजात अवस्था धारणकर बारह आवर्त चार शिरोनति और मन वचन कायकी शुद्धि पूर्वक कालका नियमकर प्रभुकी वंदना करनी चाहिये।

क्रियां कुर्वाणो वीर्योपगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन्पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्ध्या संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिकदंडकमुच्चारयेत्, तदावर्त्तत्रयं यथाजातं शिरोन्नमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकालं जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदंडकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्त्तन, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादशावर्त्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति । अथवैकस्मिन् प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्त्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्त्ताश्चतस्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्त्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणादाधिक्यमिति न दोषाय । उक्तं च—

दुउणादं जहाजादं वारसावत्तमेव च । चदुस्सिरंति सुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे ॥

अब आगे करनेवाली क्रियाओं के समयका नियम बतलाते हैं—दिनमें होनेवाले नियमका एकसौ आठ उच्छ्वास, रात्रिमें होने वाले नियमका उससे आधा अर्थात् चौउन उच्छ्वास, पाक्षिकनियमका तीनसौ उच्छ्वास, और चातुर्मासिक (चौमासेके) नियमका चारसौ उच्छ्वास और वार्षिक नियमका पांचसौ उच्छ्वास इसप्रकार पांचों नियमोंमें कायोत्सर्गका यह प्रमाण है। अहिंसा आदि पांचों नियमोंमेंसे किसी एकमें अतिचार लगनेपर प्रत्येकके एकसौ आठ उच्छ्वासका, गोचार अर्थात् आहारकेलिये गमनकरने एक गांवसे दूसरे गांवतक जाने अरहंत देवके पंचकल्याणक अथवा समवसरण आदि क्षेत्रोंकी वंदनाकेलिये तथा साधुओंके समाधिस्थानकी वंदनाकेलिये जानेके, मल मूत्र करने आदि कार्योंमें पच्चीस उच्छ्वास कायोत्सर्गका प्रमाण है, ग्रंथके प्रारंभ और समाप्तिमें स्वाध्याय, वंदना, और प्रणिधान करते समय सत्ताइस उच्छ्वास कायोत्सर्ग करना चाहिये। इसप्रकार ऊपर कहे हुए उच्छ्वासके प्रमाणसे कायोत्सर्ग कर बिना किसी उत्सुकताके थोड़ी देर तक धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान करने चाहिये। नाम स्थापना द्रव्य भावकी समीपता पुण्य पापका कारण है इसलिये जिनप्रतिमा

वक्ष्यमाणक्रियाणां कालनियम उच्यते। दैवसिकस्य नियमस्याष्टोत्तरशतं, रात्रिकस्य तदर्द्धं, पाक्षिकस्य त्रिशतं, चातुर्मासिकस्य चतुःशतं, सांवत्सरिकस्य पंचशतं, उच्छ्वासानामेषां पंचानां नियमान्तस्य कायोत्सर्गस्य प्रमाणं। अहिंसादिपंचनियमानामन्यतमस्यातीचारे सत्येकैकस्याष्टोत्तरशतं, गोचारस्य ग्रामान्तरगमनस्याऽर्हच्चङ्क्रमणनिषद्यानामुच्चारप्रश्रवणयोश्च पंचविंशतिः, ग्रन्थप्रारंभे परिसमाप्तौ च स्वाध्याये वन्दनायां प्रणिधाने च सप्तविंशतिः। एवमुक्तोच्छ्वासप्रमाणेन कायोत्सर्गं कृत्वा अनुत्सुकः सन् किंचित्कालं धर्म्यं शुक्लं च ध्यायेत्। नामस्थापनाद्रव्यभावसंनिधान पुण्यपापास्रवहेतुरतः चैत्यं चैत्यालयो गुरवो निषद्यास्थानादयश्च सम्यग्दृष्टीनां क्रियार्हा भवन्ति। अचेतनात्मका व्यपगतदानबुद्धयः कल्पवृक्षचिन्तामणयो यथा च देहिनां पुण्यानुरूपेणाभिल-

चैत्यालय गुरु और साधुओंके समाधिस्थान आदि ही सम्यग्दृष्टियोंको क्रिया करने योग्य होते हैं—जिसप्रकार दान देनेकी बुद्धिसे रहित और अचेतन ऐसे कल्पवृक्ष तथा चिंतामणि रत्न अपने अपने पुण्य कर्मोंके अनुसार प्राणियोंको इच्छानुसार पदार्थ देते हैं उसीप्रकार जिनबिंब भी भव्य लोगोंकी भक्तिके अनुसार स्वर्ग और मोक्षपद देते हैं जिसप्रकार गरुडमुद्रासे विष दूर हो जाता है उसी प्रकार जिनबिंबके दर्शन करनेमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये जिनबिंबकी बंदना करनी चाहिये और जिनबिंबके आश्रय होनेसे चैत्यालयकी भी बंदना करनी चाहिये। आचार्य आदि गुरु लोग संसार संबंधी किसी कार्यकी अपेक्षा नहीं रखते उनकी बुद्धि सदा दूसरोंके अनुग्रह करनेमें ही लगी रहती है, वे विना ही कारणके सबके बंधु हैं, मोक्षमार्गसे भ्रष्ट हुए लोगोंको मोक्षमार्ग का उपदेश देनेवाले हैं और संसारसे प्रत्यक्ष पार कर देने वाले हैं इसीलिये ऐसे गुरु जनोंसे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञानका अभ्यास, अणुव्रत महाव्रत संयम और तप प्राप्त होता है अतएव पुण्यपुरुषोंके द्वारा सेवन करने योग्य तथा निर्दोष ऐसे गुरु जनोंके निषद्या स्थान आदिकोंकी क्रियाओंका विधान कहते हैं। जो पराधीन होकर क्रियाएं करता है उसके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता इस लिये केवल आत्माके आधीन होकर जिन-

षितार्थप्रदायिनस्तथा जिनबिंबानि, भव्यजनभक्त्यनुरूपेण गीर्वाणनिर्वाणपदप्रदायीनि, गारुडमुद्रया यथा गरलापहरणं तथा चैत्यालोकनमात्रेणैव दुरितापहरणं भवत्यतश्चैत्यस्य तदाश्रयचैत्यालयस्यापि वन्दना: कार्या ऐहिकार्थनिरपेक्षाः परानुग्रहबुद्धयोऽकारणबान्धवो मोक्षपरिभ्रष्टजनमार्गोपदेशका, प्रत्यक्षनिस्तारकाश्च सन्तस्तेभ्यः स शास्त्रसम्यक्त्व—ज्ञानाऽऽदानमणुमतं संयमो तपश्च भवति ।

तेन गुरूणां पुण्यपुरुषोषितानरवधनिषिद्यास्थानादीनामुच्यते क्रियाविधानं । पराश्रयस्य सतः क्रियां कुर्वाणस्य कर्मक्षयो न घटते, तस्मादात्माधीनः सन्चैत्यादीन् प्रतिबन्दनार्थं गत्वा धौतपादस्त्रिप्रदक्षिणीकृत्येर्यापथकायोत्सर्गं कृत्वा प्रथममुपविश्याऽऽलोच्य चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय जिनेन्द्रचन्द्रदर्शनमात्रान्निजनयनचन्द्रकांतोपलविगलदानन्दाश्रुजलधारापूरपरिप्लावितपक्ष्मपुटो-

बिंब आदिकोंकी प्रति वंदनाके लिये जाना चाहिये। पैर धोकर तीन प्रदक्षिणा देकर ईर्यापथ कायोत्सर्ग करना चाहिये, और फिर बैठकर आलोचना करनी चाहिये। तदनंतर "मैं चैत्यभक्ति कायोत्सर्ग करता हूं" इसप्रकार प्रतिज्ञाकर तथा खडे होकर श्री जिनेंद्रदेव रूपी चंद्रमाके दर्शन करने मात्रसे अपने नेत्ररूपी चंद्रकांतमणिसे निकलते हुए आनंदाश्रुके जलधाराके पूरसे जिसके नेत्रोंके दोनों पलक भीग गये हैं, अनादि संसारमें दुर्लभ ऐसे भगवान अरहंत परमेश्वर परम भट्टारकके प्रतिबिंबके दर्शन करनेसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट हर्षसे जिसका शरीर पुलकित हो गया है, तथा अत्यंत भक्तिके भारसे नम्रीभूत मस्तकपर जिसने अपने दोनों हाथरूपी कमलोंका कुड्मल (जुडे हुए हाथ) रखलिया है ऐसे उस कायोत्सर्ग करनेवालेको दोनों दंडकोंके आदि अंतमें पहिले कहे हुए क्रमसे सब क्रियाएं करनी चाहिये, अर्थात् तीन तीन आवर्त और एकएक शिरोनति करनी चाहिये। फिर जिनबिंबकी स्तुति करनी चाहिये। दूसरी बार भी बैठकर आलोचना करनी चाहिये तथा " मैं पंच गुरुभक्ति कायोत्सर्ग करता हूं " ऐसी प्रतिज्ञाकर खडे होकर पांचों परमेष्ठियोंकी स्तुति करनी चाहिये। तीसरी बार भी बैठकर

ऽन्तानिभवचतुरंभगवदर्हत्परमेश्वरपरमभट्टारकप्रतिबिंबदर्शनजनितहर्षोत्कर्षपुलकितगात्रो ... वन्दनामारतुरंगत्संपुरोग ... मनो दंडकद्वयस्याद्यन्ते च प्राक्तनक्रमेण प्रवृत्य चैत्यस्तवनेन त्रिः परीत्य द्वितीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोच्य पंचगुरुभक्तिं कायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय पंच परमेष्ठिनः स्तुत्वा तृतीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोचनीयं । एवमात्माधीनता, प्रदक्षिणीकरणं, त्रिवारं, निषद्यात्रयं, चतुःशिरो, द्वादशावर्तकमिति क्रियाकर्म षड्विधं भवति । तत्र चतुःशिरो दंडकद्वयाद्यन्ते प्रणामे प्रदक्षिणीकरणे च दिक्चतुष्टयावनतौ चतुःशिरो भवति, अथवा शिरःशब्दः प्रधानवाची वन्दनाप्रधानभूता अर्हत्सिद्धसाधुधर्मा इति, उक्तं च राद्धान्तसूत्रे—"आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं बारसावत्तं चेति ।" एवं देवतास्तवनक्रियायां चैत्यभक्तिं पंचगुरुभक्तिं च कुर्यात् ।

आलोचना करनी चाहिये। इसप्रकार आत्माकी स्वाधीनता, तीन प्रदक्षिणा करना, तीनवार बैठना तीन शुद्धि चार शिरोनति और बारह आवर्त इसप्रकार छहतरहका क्रियाकर्म कहलाता है। उसमें भी चार शिरोनति दोनों दंडकोंके आदि अंतमें, प्रणाम करते समय, प्रदक्षिणा करते समय और चारों दिशाओंमें नमस्कार करते समय इसतरह चार चार करनी चाहिये। अथवा शिर शब्दका 'प्रधान' अर्थ है अरहंत सिद्ध साधु और धर्म बंदनाके योग्य ये चारही प्रधान हैं। इन छह कर्मोंके लिये राद्धांतसूत्रमें भी लिखा है " आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदु-स्सिरं बारसावत्तं चेति " अर्थात् आत्मा की स्वाधीनता (पदाहीणं) प्रदक्षिणा करना, (त्रिखुत्तं) त्रिवारशुद्धि (तिऊणदं) तीनवार निषद्या वा बैठना, (चदुस्सिरं) चार शिरोनति (बारसावत्तं) बारह आवर्त ये छह कर्म हैं इसप्रकार देवताकी स्तवन किया करते समय चैत्य भक्ति और पंच गुरु भक्ति करनी चाहिये।

चतुर्दशीदिने तयोर्मध्ये सिद्धश्रुतशान्तिभक्तिर्भवति । अष्टम्यां सिद्धश्रुतचारित्रशांतिभक्तयः । पाक्षिके सिद्धचारित्रशांतिभक्तयः । सिद्धप्रतिमायाः सिद्धभक्तिरेव, जिनप्रतिमायास्तीर्थंकरजन्मनश्च पाक्षिकी क्रिया, अष्टम्यादिक्रियासु दर्शनपूजात्रिकालवन्दनायोगे शान्तिभक्तितः प्राक् चैत्यभक्तिं पंचगुरुभक्तिं च कुर्यात् । चतुर्दशीदिने धर्मव्यासंगादिना क्रिया कर्तुं न लभेत चेत्पाक्षिकेऽष्टम्याः क्रियाः कर्त्तव्याः । नन्दीश्वरदिने सिद्धनन्दीश्वरपंचगुरुशांतिभक्तयोऽभिषेकवन्दनायाः सिद्धचैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयः । स्थिरचल-

चतुर्दशीके दिन (चैत्य भक्ति और पंच गुरु भक्तिके मध्यमें) सिद्धभक्ति, श्रुत तथा शांति भक्ति करनी चाहिये । अष्टमीके दिन सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति और शांति भक्ति करनी चाहिये । पाक्षिक कायोत्सर्गमें सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । सिद्धप्रतिमाकी बंदना करते समय सिद्ध भक्ति ही होती है। जिनप्रतिमाकी और तीर्थंकरोंके जन्मके दिन पाक्षिकी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। अष्टमी आदिकी क्रियाओंमें दर्शन पूजा करनी चाहिये, तीनों कालोंकी बंदना करनेके समय शांतिभक्तिसे पहिले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये चतुर्दशीके दिन धर्मक्रियाओंके व्यासंगसे यदि कोई क्रिया न कर सके तो उसे पाक्षिक कायोत्सर्गके समय अष्टमीके दिनकी क्रिया करनी चाहिये । नंदीश्वर पर्वोंके दिनोंमें सिद्धभक्ति नंदीश्वरभक्ति पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । अभिषेक बंदनाके समय सिद्धभक्ति चैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । स्थिर और चल दोनों ही प्रकारकी जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके समय सिद्धभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । स्थिरप्रतिमाके चतुर्थस्थानमें सिद्धभक्ति, आलोचना सहित चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । चलप्रतिमाकी अभिषेक बंदना होती है, बडेभारी ऋषि तथा सामान्य

जिनप्रतिमाप्रतिष्ठायाः सिद्धशांतिभक्ती भवतः। स्थिरप्रतिमायाश्चतुर्थस्थाने सिद्धभक्तिरालोचनासहिता चारित्रभक्तिः चैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयश्च कार्याः। चलप्रतिमाया अभिषेकवन्दना स्यात्। महत्तरस्य सामान्यर्षेः सिद्धभक्तिपूर्विका वंदना। सिद्धान्तविदां सिद्धश्रुतभक्ती भवतः। आचार्याणां सिद्धाचार्यभक्ती। सिद्धान्तवेदिनामाचार्याणां सिद्धश्रुतसूरिभक्तयः। प्रतिमायोगस्थितस्य मुनेर्लघीयसोऽपि सिद्धयोगशांतिभक्तयः। निष्क्रमणे सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयो भवन्ति प्रदक्षिणीकरणं योगभक्त्या। ज्ञानोत्पत्तौ सिद्धश्रुतचरणयोगशांतिभक्तयो योगभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। जिननिर्वाणक्षेत्रे सिद्धश्रुतचारित्रयोगपरिनिर्वाणशांतिभक्तयो निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। श्रीवर्द्धमानजिननिर्वाणदिने सिद्धनिर्वाणपंचगुरुशांतिभक्तयः निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणा। सामान्यर्षौ मृते

ऋषियोंकी सिद्धभक्ति पूर्वक बंदना की जाती है। सिद्धांतके जानकार मुनियोंकी सिद्धभक्ति और श्रुतभक्ति की जाती है। आचार्योंकी सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। सिद्धांतके जानकार आचार्योंकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। प्रतिमायोग धारण करनेवाले मुनि चाहे छोटे भी हों तो भी उनकी सिद्धभक्ति योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है। दीक्षाकल्याणकके समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है और उससमय योगभक्तिके पाठ पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है और योगभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। तीर्थंकरके निर्वाणक्षेत्रमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति परिनिर्वाणभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा देनी चाहिये। श्रीवर्द्धमान जिनेंद्रदेवके निर्वाण होनेके दिन सिद्ध भक्ति, निर्वाणभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दीजाती है। सामान्य ऋषिके स्वर्गवासके समय सिद्धभक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति

शरीरस्य निषधिकास्थानस्य वा सिद्धयोगशांतिभक्तयः । सिद्धांतवेदिनां साधूनां सिद्धश्रुतयोगशांतिभक्तयः । उत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयः । सिद्धांतोत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयः । आचार्यस्य सिद्धयोगाचार्यशांतिभक्तयः । सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशांतिभक्तयः । उत्तरयोगिनामाचार्याणां सिद्धचारित्रयोगाचार्यशांतिभक्तयः । उत्तरयोगिनः सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशांतिभक्तयः । अनंतरोक्ता अष्टौ क्रियाः शरीरस्य निषद्यास्थानस्य च । श्रुतपंचम्यां सिद्धश्रुतभक्तिपूर्विकां वाचनां गृहीत्वा तदनु स्वाध्यायं गृह्णतः श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा गृहीतस्वाध्यायाः कृतश्रुतभक्तयः स्वाध्यायं निष्ठाप्य समाप्तौ

की जाती है तथा उनके शरीरकी वा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति, योगभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। सिद्धांतवेत्ता मुनियोंके स्वर्गवासके समय, उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुत योग शान्तिभक्ति की जाती है। उत्तर योगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्ध, चारित्र योग शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांतोत्तरयोगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्ध चारित्र योग शांतिभक्ति की जाती है। आचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्ध योग आचार्य शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्ध, श्रुत, योग आचार्य, शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी आचार्योंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति आचार्य और शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी सिद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है। (ऊपर कही हुई आठों क्रियाएं शरीर और निषद्यास्थान की भी होती हैं जैसी कि ऊपर दिखलाई जा चुकी

शांतिभक्तिं कुर्युः । सन्यासप्रारम्भे सिद्धश्रुतभक्ती कृत्वा गृहीतवाचनाः कृतश्रुतसूरिभक्तयः स्वाध्यायं गृहीत्वा श्रुतभक्तौ स्वाध्यायं निष्ठापयेयुः । वाचनानिष्ठापनेऽपीमां क्रियां कृत्वा समाप्तौ शांतिभक्तिं कुर्वन्तु । संन्यासस्थितस्य स्वाध्यायग्रहणे महाश्रुतसूरिभक्ती कृत्वा गृहीतस्वाध्याय महाश्रुतभक्तौ निष्ठापयन्तु । दैवसिकरात्रिगोचरीप्रतिक्रमणे सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीः नियमेन कुर्यात । योगग्रहणे मोक्षे च योगभक्तिः । पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणे सिद्धचारित्रप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिचारित्रालोचनागुरुभक्तयः, बृहदालोचना गुरुभक्तिर्लघीयसी आचार्यभक्तिश्च करणीया । शेषप्रतिक्रमणे चारित्रा-

हैं) श्रुतपंचमीके दिन सिद्धभक्ति तथा श्रुत भक्ति पूर्वक वाचना नामका स्वाध्याय ग्रहण करना चाहिये, उसके बाद स्वाध्यायकर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये फिर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्ति कर स्वाध्यायको पूर्णकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये।

संन्यासके प्रारंभके समय सिद्ध भक्ति श्रुतभक्ति कर वाचना ग्रहण कर फिर श्रुतभक्ति तथा आचार्य भक्ति कर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्तिमें स्वाध्याय पूर्णकर देना चाहिये वाचना करनेके समय भी यही क्रियाकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये। संन्यासमें स्थित होकर स्वाध्याय ग्रहण करते समय महाश्रुतभक्ति तथा महाआचार्यभक्ति कर फिर स्वाध्याय ग्रहणकर महा श्रुतभक्तिमें ही स्वाध्याय करना चाहिये। देवसिक (दिनके) प्रतिक्रमणमें रात्रिके प्रतिक्रमणमें, गोचरी प्रतिक्रमणमें नियमसे सिद्धप्रतिक्रमण निष्ठित चारित्रभक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति करनी चाहिये। योग ग्रहण करते समय और समाप्तिके समय योगभक्ति की जाती है। पाक्षिकप्रतिक्रमण चातुर्मासिकप्रतिक्रमण और सांवत्सरिकप्रति-क्रमणमें सिद्धप्रतिक्रमण, तथा चारित्रप्रतिक्रमणके साथ साथ चारित्रभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर-भक्ति चारित्र आलोचना गुरुभक्ति बड़ीआलोचना गुरुभक्ति और फिर छोटी आचार्य भक्ति

लोचनावृहदालोचनागुरुभक्ति विना शेषा. कर्तव्याः दीक्षाग्रहणे लुंचनं च सिद्धयोगभक्ती कृत्वा लुञ्चनावसाने सिद्धभक्तिः करणीया; सिद्धयोगभक्ती कृत्वा प्रत्याख्यानं गृहीत्वाऽऽचार्यभक्तिं कृत्वाचार्यान् वन्दतां सिद्धभक्तिं कृत्वा प्रत्याख्यानं मोचयेत् श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापने श्रुतभक्तिं करोतु । मंगलगोचरमध्यान्हे सिद्धचैत्यपंचगुरुशान्तिभक्तिं कुर्यात । मंगलगोचरप्रत्याख्याने महासिद्धयोगभक्ती कृत्वा गृहीतप्रत्याख्यान आचार्यशान्तिभक्ती कुर्यात् । वर्षाकाले योगग्रहणे निष्ठापने च सिद्धयोगपंचचैत्यगुरुभक्तय. कार्याः चैत्यभक्त्या प्रदक्षिणां कुर्वन् सालोचनव्युत्सर्गं चतसृषु दिक्षु कुर्यात् । सिद्धांतवाचनाग्रहणे सिद्धश्रुत-

करनी चाहिये बाकीके प्रतिक्रमणोंमें चारित्रआलोचना, बडीआलोचना और गुरुभक्ति विना सब भक्तियां करनी चाहिये दीक्षा ग्रहण करते समय और केशलोंच करते समय सिद्ध और योगभक्ति करके केशलोंचके अंतमें सिद्धभक्ति करनी चाहिये । फिर सिद्ध तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये तदनंतर आचार्य भक्ति करके आचार्य वंदना करनी चाहिये और फिर सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यानको छोडदेना चाहिये । फिर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय ग्रहणकर उस स्वाध्यायके पूर्ण करते समय श्रुतभक्ति करनी चाहिये मंगलके विषयभूत मध्याह्नके समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पंचगुरु और शांतिभक्ति करनी चाहिये । मंगलके विषय भूत मध्यान्ह कालके प्रत्याख्यान के समय महासिद्ध तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये और फिर आचार्य भक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । वर्षाऋतुमें योग ग्रहण करते समय और निष्ठापन ग्रहण करते समय सिद्धभक्ति, योगभक्ति, पंचचैत्य, गुरु भक्ति करनी चाहिये फिर चैत्यभक्तिके साथ प्रदक्षिणा देकर चारों दिशाओंमें आलोचना पूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिये । सिद्धांतग्रंथोंके वाचनेके समय सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति करनी चाहिये और फिर श्रुतभक्ति आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय करना चाहिये और उसके निष्ठाप-

भक्ती कृत्वा तदनु श्रुताचार्यभक्ती कृत्वा गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापनं श्रुतशांतिभक्ती करोतु । सिद्धांतस्यार्थाधिकाराणां समाप्तावे-।कैकं कायोत्सर्गं कुर्यात्। अर्थाधिकाराणां सुबहुमान्यत्वात्तेषामादौ सिद्धश्रुतसूरिभक्तीः कृत्वा समाप्तावप्येतेन क्रमेण प्रवर्त्तिते सति षट् कायोत्सर्गा भवन्ति । गुरूणामनुज्ञया ज्ञानविज्ञानवैराग्यसम्पन्नो विनीतो धर्मशीलः स्थिरश्च भूत्वाऽऽचार्यपदव्या योग्यः साधु-गुरुसमक्षे सिद्धाचार्यभक्ती कृत्वाऽऽचार्यपदवीं गृहीत्वा शांतिभक्तिं कुर्यात् । एवमुक्ताः क्रिया यथायोग्यं जघन्यमध्यमोत्तमश्रावकैः संयतैश्च करणीयाः । किमर्थो व्युत्सर्गो निःसंगत्वं निर्भयत्वं जीविताशाव्युदासो दोषच्छेदो मोक्षमार्गभावनापरत्वमित्येवमाद्यर्थं ।

अथ ध्यानप्रस्तावः । एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं, एकस्मिन् क्रियासाधनेऽग्रं मुखं यस्याश्चिन्तायाः इत्येकाग्रचिन्ता । तस्या

नके समय श्रुतभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार समाप्त होनेके समय एक एक कायोत्सर्ग करना चाहिये सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार सबसे अधिकमान्य हैं इसलिये उनके प्रारंभमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये । तथा समाप्त होनेके समय भी ये ही क्रियायें कर अंतमें छह कायोत्सर्ग करने चाहिये जो ज्ञान वैराग्य विज्ञान सहित है विनीत है धर्मशील है और आचार्यपदके योग्य है उसे स्थिर होकर साधु तथा गुरुके समक्ष सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति करके आचार्यपदवी ग्रहण करनी चाहिये और फिर शांतिभक्ति करनी चाहिये इसप्रकार जो क्रियाएं ऊपर कहीं हैं वे अपनी योग्यताके अनुसार उत्तम मध्यम जघन्य श्रावकोंको तथा मुनियोंको करनी चाहिये । यह कायोत्सर्ग परिग्रहोंका त्याग करनेकेलिये निर्भयरहने केलिये, जीवित रहनेकी आशाका त्याग करनेकेलिये दोषोंका नाश करनेकेलिये और मोक्षमार्गकी भावनामें तत्पर रहनेकेलिये करना चाहिये ।

अब आगे ध्यानका प्रकरण लिखते हैं—एकाग्रचिन्ताका निरोध करना ध्यान है। जो चिंतवन किसी एक ही क्रियाके साधन करनेमें मुख्य हो उसे एकाग्रचिंता कहते हैं। उस एकाग्रचिंताका निरोध करना अर्थात् किसी एक मुख्य पदार्थको छोडकर अन्य सब पदार्थोंके

निरोधोऽन्यत्राऽसंचारस्तदेकाग्रचितानिरोधो ध्यानं । तस्य योगश्चतुर्विधः, ध्यानं, ध्येय, ध्याता. फलमिति । तत्र ध्यानं चिन्ताप्रबंधलक्षणं । ध्येयमप्रशस्तप्रशस्तपरिणामकारणं । ध्याता कषायकलुषितो गुप्तेन्द्रियश्च ! फलं संसारभ्रमणं स्वर्गापवर्गसुखं च । तदेतच्चतुरंगध्यानमप्रशस्तप्रशस्तभेदेन द्विविधं, श्रेयोधिकारेऽप्रशस्तोपन्यासः परिज्ञानस्य प्रहेयत्वोपपत्तेः । अप्रशस्तं द्विविधमार्त्तं रौद्रं चेति । तत्राऽऽर्त्तं बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदाद् द्विविकल्पं । तत्र परानुमेयं बाह्यं शोचनक्रन्दनविलपनपरिदेवनविषयसंगपरिभवविस्मयादिलक्षणं । स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकार्त्तध्यानं, अमनोज्ञसप्रयोगमनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिमंत्रत्याध्यवसानं, उत्पन्नस्य च विनाशसंकल्पाध्यवसानमिति

चिंतवनका त्याग कर देना एकाग्रचिंतानिरोध कहलाता है और उसीको ध्यान कहते हैं। उस ध्यानका योग—ध्यान, ध्येय, ध्याता और फलके भेदसे चार प्रकारका होता है। चिंतवन करना ध्यान है। जो अशुभ तथा शुभ परिणामोंका कारण हो उसे ध्येय कहते हैं। कषायोंसे जिसका चित्त कलुषित है अथवा जो मन वचन काय तथा इंद्रियोंको वश करनेवाला है वह ध्याता वा ध्यान करनेवाला कहलाता है। उसका फल संसारमें परिभ्रमण करना अथवा स्वर्ग मोक्षके सुखोंकी प्राप्ति होना है। जिसके ऊपर लिखे हुए चार अंग हैं ऐसा ध्यान अशुभ और शुभके भेदसे दो प्रकारका है। यद्यपि यहांपर मोक्षमार्गका अधिकार है तथापि जानकर त्यागकर देनेके लिए ही अशुभ ध्यानोंका वर्णन किया है। आर्त और रौद्रके भेदसे अशुभध्यान दो प्रकारका है। उसमें भी बाह्य और अध्यात्मके भेदसे आर्तध्यान भी दो प्रकारका है। अन्य लोग जिसका अनुमान कर सकें उसे बाह्य कहते हैं। शोक करना, रोना विलाप करना, खूब जोरसे रोना, विषयोंकी इच्छा करना, तिरस्कार करना तथा अभिमान करना आदि बाह्य आर्तध्यान कहलाता है। जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक आर्तध्यान कहते हैं वह आध्यात्मिक आर्तध्यान चार प्रकारका होता है। अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न

चतुःप्रकारं । तद्यथा—अमनोज्ञं दुःखसाधनं, तच्च बाह्यमाध्यात्मिकमिति द्विविधं । तत्र बाह्यं चेतनकृतमचेतनकृतमिति द्विप्रकारं । तत्र चेतनकृतं देवमनुष्यतिर्यक्संपादितमसातं, अचेतनकृतं च विषकंटकाग्निशस्त्रक्षारशीतोष्णादिजनितदुःखं । आध्यात्मिकममनोज्ञं शारीरं मानसमिति द्विविधं । तत्र शारीरं वातपित्तश्लेष्मवैषम्यसमुद्भवशिरोक्षिदंतोदरादिशूलादिजनितं । मानसं चारतिभयशोकभयजुगुप्सा-विषाददौर्मनस्यादिजनितमित्यादिदुःखसाधनममनोज्ञं, तेन संप्रयोगः स कथं नाम मे नोत्पद्यत इति चिन्ताप्रबंधः संकल्पस्तस्याध्य-वसानं तीव्रकषायानुरंजनं, एतदमनोज्ञसंप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं प्रथमार्त्तं । एतद्दुःखसाधनसद्भावे तस्य विनाशकांक्षोत्पत्त-

होनेके संकल्पका चिंतवन करना, अमनोज्ञ पदार्थके साथ सम्बन्ध उत्पन्न होनेपर उसके विनाश होनेके संकल्पका चिंतवन करना, मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका चिंतवन करना और मनोज्ञ पदार्थों के साथ संबंध हो जानेपर उनके विनाश न होनेके संकल्पका चिंतवन करना । इन्हीं चारों आर्तध्यानोंका स्वरूप आगे बतलाते हैं । दुःखोंके कारणोंको अमनोज्ञ कहते हैं । वह अमनोज्ञ बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है । उसमें भी बाह्य अमनोज्ञ चेतनका किया हुआ और अचेतनका किया हुआ ऐसे दो प्रकारका है । देव मनुष्य और तिर्यंचोंके द्वारा दिया हुआ दुःख चेतनके द्वारा किया हुआ बाह्य अमनोज्ञ है और विष, कांटा, अग्नि, शस्त्र, क्षार, शीत, उष्ण आदिके द्वारा प्राप्त हुआ दुःख अचेतन कृत बाह्य अमनोज्ञ है । आध्यात्मिक अमनोज्ञ भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारका है । इसमें वात पित्त श्लेष्माकी विषमतासे उत्पन्न हुई मस्तक, आंख, दांत और पेट आदिकी पीडासे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन शारीरिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है तथा अरति शोक, भय, जुगुप्सा विषाद चित्तकी मलिनता आदिसे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन मानसिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है । इन चारों प्रकारके अमनोज्ञोंका संबंध मेरे साथ उत्पन्न न हो

विनाशसंकल्पाध्यवसानं द्वितीयार्त्तं। मनोज्ञं नाम धनधान्यहिरण्यसुवर्णवस्तुवाहनशयनाऽऽसनस्रक्चन्दनवनितादिसुखसाधनं मे स्यादिति गर्द्धनं। मनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं तृतीयार्त्तं। सुखसाधनसद्भावे तेन विप्रयोगो मे न स्यादिति संकल्पः उत्पन्नविनाशसंकल्पाध्यवसानं चतुर्थार्त्तं। एतच्चतुर्विधार्त्तध्यानं कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं प्रागप्रमत्तात्षड्गुणस्थानभूमिकमन्तर्मुहूर्तकालमतः परं दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावपरोक्षज्ञानत्वात्तिर्यग्गतिफलसंवर्त्तनीयमिति।

इसप्रकारके सकल्पका वार वार चिंतवन करना और वह भी तीव्र कषायोंके संबंधसे चिंतवन करना अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न होनेके संकल्पका चिंतवन नामका पहिला आर्तध्यान कहलाता है। इन दुःखोंके कारण उत्पन्न होनेपर उनके विनाश होनेकी इच्छा उत्पन्न होनेसे उनके विनाशके संकल्पका वार वार चिंतवन करना दूसरा आर्तध्यान है। धन धान्य हिरण्य [चांदी] सुवर्ण, सवारी, शय्या, आसन, माला, चंदन, और स्त्री आदि सुखोंके साधनोंको मनोज्ञ कहते हैं। ये मनोज्ञ पदार्थ मेरे हों इसप्रकार चिंतवन करना, मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका बार बार चिंतवन करना नामका तीसरा आर्तध्यान कहलाता है। सुखोंके साधन प्राप्त होनेपर "मेरे उनका वियोग कभी न हो" इसप्रकारका संकल्प करते रहना चौथा आर्तध्यान कहलाता है। ये चारों प्रकारके आर्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके वलसे होते हैं तथा प्रमादसे ही उत्पन्न होते हैं। यह आर्तध्यान अप्रमत्तसे पहिले पहिले छह गुणस्थानोंमें होता है और अधिक से अधीक अंतर्मुहूर्ततक होता है। इससे आगे वह दुर्धर है अर्थात् अंतर्मुहूर्तसे अधिक हो ही नहीं सकता। यह परोक्षज्ञान होनेसे क्षायोपशमिक भाव है तथा इसका फल तिर्यंच गतिकी प्राप्ति होना है।

२२

रौद्रं च बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदेन द्विविधं। तत्र परानुमेयं बाह्यं परुषनिष्ठुराऽऽक्रोशननिर्भर्त्सनबन्धनतर्जनताडनपीडनपरदारातिक्रमणादिलक्षणं। स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं तत्र हिंसानंदमृषानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दभेदाच्चतुर्विधं। तीव्रकषायानुरंजनं हिंसानन्दं प्रथमरौद्रं। स्वबुद्धिविकल्पितयुक्तिभिः परेषां श्रद्धेयरूपाभिः परवंचनं प्रति मृषाकथने संकल्पाध्यवसानं मृषानन्दं द्वितीयरौद्रं। हठात्कारेण प्रमादप्रतीक्षया वा परस्वापहरणं प्रति संकल्पाध्यवसानं तृतीयरौद्रं। चेतनाचेतनलक्षणे स्वपरिग्रहे ममेवेदं स्वमहमेवास्य स्वामीत्यभिनिवेशात्तदपहारकव्यापादनेन संरक्षणं प्रति संकल्पाध्यवसानं संरक्षणानन्दं चतुर्थं रौद्रं। चतुष्टयमपीदमिति

रौद्रध्यान भी बाह्य और आध्यात्मिकके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें भी अन्य लोग जिसे अनुमानसे जान सकें उसे बाह्य कहते हैं। और कठोर वचन, मर्मभेदी वचन, आक्रोश (गाली गलौज) वचन, तिरस्कार करना, बांधना, तर्जन करना, ताडन करना तथा परस्त्री पर अतिक्रमण करना आदि बाह्य रौद्रध्यान कहलाता है। जिसे अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक रौद्रध्यान कहते हैं और हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंदके तथा विषयसंरक्षणानंदके भेदसे वह आध्यात्मिक रौद्रध्यान चार प्रकारका है। तीव्र कषायके उदयसे हिंसामें आनंद मानना पहिला रौद्रध्यान है। जिनपर दूसरोंको श्रद्धान हो सके ऐसी अपनी बुद्धिके द्वारा कल्पना की हुई युक्तियोंके द्वारा दूसरोंको ठगनेके लिये झूठ बोलनेके सकल्पका वार वार चिंतवन करना मृषानंद नामका दूसरा रौद्रध्यान है। जवर्दस्ती अथवा प्रमादकी प्रतीक्षापूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना तीसरा रौद्रध्यान है। चेतन अचेतनरूप अपने परिग्रहमें यह मेरा परिग्रह है, मैं इसका स्वामी हूं, इस प्रकार ममत्व रखकर उसके अपहरण करनेवालेका नाशकर उसकी रक्षा करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना विषय संरक्षणानंद नामका चौथा रौद्रध्यान है। यह चारों ही प्रकारका रौद्रध्यान कृष्ण नील और कापोत-

कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं । प्राक्प्रमत्तात्पंचगुणस्थानभूमिकमन्तर्मुहूर्तकालमतःपरं दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावं परोक्षज्ञानत्वादौदयिकभावं वा भावलेश्याकषायप्राधान्यान्नरकगतिफलसंवर्तनीयमिति ।

उभयमप्येतदपध्यानं परिहरन्नपवर्गकामो भिक्षुः परिषहबाधासहिष्णुः शक्तिमदुत्तमसंहननान्वितः प्रशस्तध्यानप्रवणो गिरिगुहादरीकन्दरतरुकोटरसरित्पुलिनापतृवनजीर्णोद्यानशून्यगृहादीनामन्यतमस्मिन् प्रदेशे व्यालपशुमृगपक्षिमनुष्यादीनामगोचरे तत्रत्यागंतुकजन्तुभिः परिवर्जितेऽत्युष्णातिशीतातिवातातिवर्षातपरहिते समन्तादिन्द्रियमनोविक्षेपहेतुनिराकरणभूते शुचावनुकूलस्पर्शिनि भूमितले यथा सुखोपविष्टो बद्धपर्यंकासनः स्वांके वामपाणितलस्योपरि दक्षिणपाणितलमुत्तानं निधाय नेत्रे नात्युन्मीलयन्नातिमीलयन् दन्तैर्दन्ता-

लेश्याके बलसे होता है तथा प्रमाद पूर्वक होता है। प्रमत्त गुणस्थानसे पहिले पहिले पांच गुणस्थानोंमें होता है और अंतमुहूर्त तक होता है अंतमुहूर्तके आगे दुर्धर है अर्थात् इससे अधिक समय तक यह कभी धारण नहीं किया जा सकता। यह परोक्षज्ञानगोचर होनेसे क्षायोपशमिक भाव है अथवा भाव लेश्या और कषायोंकी प्रधानता होनेसे औदयिक भाव है। यह नरकगतिका फल देनेवाला है।

ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों ही अपध्यान हैं, मोक्षकी इच्छा करनेवाले भिक्षुकको ये दोनों ही छोड देना चाहिये। इसके सिवाय उसे परीषहोंकी सब बाधाएं सहन करनी चाहिये उसे शक्तिशाली तथा उत्तम संहननोंका धारक होना चाहिए और शुभध्यान करनेमें निपुण होना चाहिए। जहां ध्यान किया जाय वह स्थान पर्वतकी गुफा, दरी, कंदरा, वृक्षके कोटर नदियोंके किनारे, श्मशान, जीर्णवन और सूने मकान आदिमेंसे कोई सा भी एक होना चाहिये परंतु वह ऐसा होना चाहिए जहां सर्प पशु जंगली जानवर नपुंसक और मनुष्य आदि न जा सकें, वहांके रहनेवाले तथा बाहरसे आनेवाले जीवोंसे रहित हो, अत्यंत उष्णता [गर्मी]

प्राणि संदधानः प्राणापानप्रचारात्यतनिग्रहे तीव्रदुःखाकुलचेतस एकाकारपरिणामः न जायते,ततो मन्दमन्दप्राणापानप्रचारः स्यादेवं द्रव्य-क्षेत्रकालभावशुद्धिसंयुतस्तत्प्रतिपक्षदोषवर्जितः परमयोगी संसारलतामूलोच्छेदनहेतुभूतं प्रशस्तध्यानं ध्यायेत् ।

तद् द्विविधं,धर्म्यं शुक्लं चेति । तत्र धर्म्यध्यानं बाह्याध्यात्मिकभेदेन द्विप्रकारं । तत्र परानुमेयं बाह्यं सूत्रार्थगवेषणं दृढव्रतशीलगुणानुरागनिभृतकरचरणवदनकायपरिस्पंदवाग्व्यापारं जृंभजृंभोदारक्षवथुप्राणापानोद्रेकादिविरमणलक्षणं भवति । स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं,

अत्यंत सर्दी अत्यंतवायु अत्यंत वर्षा और अत्यंत धूपसे रहित हो जिसके चारों ओर इंद्रिय और मनको क्षोभ करनेवाले कोई पदार्थ न हों, जो पवित्र हो और जिसका स्पर्श अनुकूल हो ऐसे पृथ्वी तलपर सुखपूर्वक बैठना चाहिए। अपना आसन पर्यंकासन-बांधकर बैठना चाहिए अपनी गोदपर बायें हाथकी हथेलीपर दायें हाथको ऊपरकी ओर हथेली कर रखना चाहिये नेत्रोंको न तो बिल्कुल खुला ही रखना चाहिये और न बिल्कुल बंद ही कर लेना चाहिये। दांतोंसे दांत मिला लेना चाहिए (इस तरह करनेसे ओठोंसे ओठ अपने आप मिल ही जायेंगे) प्राण और अपानके प्रचारका अत्यंत निग्रह करनेसे तीव्र दुःख होता है तथा आकुलित चित्त होता है इसलिए ऐसा करनेसे एकाकार परिणाम कभी नहीं हो सकते अतएव प्राण और अपानका प्रचार मंद मंद रीतिसे होते रहना चाहिए। इसप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भावकी शुद्धता प्रतिपक्षी दोषोंसे रहित परम योगीको संसाररूपी लताकी जड काटनेका कारण ऐसे शुभध्यानका चिंतवन करना चाहिये।

वह ध्यान दो प्रकारका है—एक धर्म्यध्यान और दूसरा शुक्लध्यान। उनमें भी बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे धर्म्यध्यान भी दो प्रकारका है। जिसे अन्य लोग भी अनुमानसे जान सके उसे बाह्य धर्म्यध्यान कहते हैं। सूत्रोंके अर्थकी गवेषणा (विचार वा मनन करना) व्रतोंको

तद्दशविधं—अपायविचयं, उपायविचय, जीवविचयं, अजीवविचयं, विपाकविचय, विरागविचयं, भवविचयं, संस्थानविचयं, आज्ञाविचय, हेतुविचयं, चेति। एतद्दशविधमपि दृष्टश्रुतानुभूतरोषपरिवर्जनपरस्य मन्दतरकषायानुरंजितस्य भव्यवरपुंडरीकस्य भवति। तत्रापायविचय नामानाद्याजवंजवे यथेष्टचारिणो जीवस्य मनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोपार्जितपापानां परिवर्जनं तत्कथं नाम मे स्यादिति संकल्पश्चिताप्रबन्धः प्रथमधर्म्यं। उपायविचयं प्रशस्तमनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोऽवश्यः कथं मे स्यादिति संकल्पो द्वितीयधर्म्यम्। जीवविचय—जीव. उपयोगलक्षणो द्रव्यार्थादनाद्यनन्तोऽसख्येयप्रदेशः स्वकृतशुभाशुभकर्मफलोपभोगी गुणवानात्मोपात्तदेहमात्रः

दृढ रखना, शील गुणोंमें अनुराग रखना, हाथ पैर मुंह आदि शरीरका परिस्पंदन और वचन व्यापारको बंद करना, जंभाई लेना, जंभाईके उद्गार प्रकट करना, छींकना, तथा प्राण अपानका उद्रेक आदि सब क्रियाओंका त्याग करना बाह्य धर्म्यध्यान है। जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक कहते हैं। वह आध्यात्मिक धर्म्यध्यान अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाक विचय, विराग विचय, भवविचय, संस्थान विचय, आज्ञाविचय और हेतुविचयके भेदसे दश प्रकारका है। जिसने देखे सुने और अनुभव किये हुए दोष सब छोड दिये हैं जिसके कषायोंका उदय अत्यंत मंद है और जो अत्यंत श्रेष्ठ भव्य है उसीके यह दशों प्रकारका धर्म्यध्यान होता है। आगे उन्हींको दिखलाते हैं— "मेरा यह जीव अनादि कालसे इस संसारमें अपनी इच्छानुसार परिभ्रमण कर रहा है इसलिए मेरे मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुए पापोंका त्याग किस प्रकार होगा" इसप्रकार संकल्पकर वार वार चिंतवन करना पहिला अपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। "मेरे सदा और अवश्य रहनेवाली शुभ मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्ति किस प्रकार होगी" इसप्रकारका संकल्पकर वार वार चिंतवन करते रहना दूसरा उपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। यह जीव

प्रदेशसंहरणविसर्पणधर्मा सूक्ष्मोऽव्याघात ऊर्ध्वगतिस्वभावोऽनादिकर्मबन्धनबद्धस्तत्क्षयान्मोक्षभाग। गत्यादि—निर्देशादि—सदादि प्रमाणनयनिक्षेपविषय इत्यादिजीवस्वभावानुचिंतनं तृतीयं धर्म्यं । विपाकविचयमष्टविधकर्माणि नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणानि मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पविस्तृतानि गुडखंडसिताऽमृतमधुरविपाकानि निम्बकांजीविषहालाहलकटुकविपाकानि चतुर्विधबंधानि। लता-दार्वस्थिशैलस्वभावानि कासु कासु गतिषु योनिष्ववस्थासु च जीवानां विषया भवन्तीति विपाकविशेषानुचिन्तनं पंचमधर्म्यं।

उपयोग लक्षणवाला है अर्थात् इसका लक्षण ही उपयोग है अथवा यह उपयोग स्वरूप है, द्रव्या-र्थिक नयसे अनादि अनंत है (अनादि कालसे चला आया है और अनंत कालतक रहेगा) असंख्यात प्रदेशी है, अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भोगनेवाला है, गुणी वा गुण-वाला है, आत्माके द्वारा प्राप्त हुए शरीरके प्रमाणके बराबर है, इसके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होना इसका धर्म वा स्वभाव है, यह सूक्ष्म है अव्याघाती (न किसीको रोकता है और न किसीसे रुकता है) है, ऊर्ध्व गमन करना इसका स्वभाव है, अनादि कालसे लगे हुये कर्मोंके बंधनसे बंधा हुआ है और इन कर्मोंके नाश हो जानेपर मोक्ष सुखका भोक्ता होता है। गति इंद्रिय आदि, नाम स्थापना आदि, निर्देश स्वामित्व आदि सत् संख्या आदि तथा प्रमाण नय निक्षेप आदिके गोचर है अर्थात् इसका स्वरूप इन सबसे जाना जाता है। इसप्रकार जीवके स्वभावका चिंतवन करना तीसरा जीवविचय नामका धर्म्यध्यान कहलाता है।

कर्मोंके आठ भेद हैं तथा नाम स्थापना द्रव्य भावके भेदसे और मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदसे उनके अनेक भेद होते हैं। उनमेंसे शुभ कर्मोंका विपाक (उदय वा फल देना) गुड खांड (शक्कर) मिश्री और अमृतरूप उत्तरोत्तर मीठा वा श्रेष्ठ हुआ करता है और अशुभ प्रकृतियोंका विपाक नीम, कांजी, विष और हलाहलरूप कडवा वा

विरागविचय शरीरमिदमनित्यमपरित्राण विनश्वरस्वभावमशुचिदोषाधिष्ठितं सप्तधातुमय बहुमलपूर्णमनवरतनिस्यंदितस्रोतोबिल-मतिबीभत्समाधेयमशौचमपि पूतिगंधि सम्यग्ज्ञानिजनवैराग्यहेतुभूतं नास्त्यत्र किंचित्कमनीयमिन्द्रियसुखानि प्रमुखरसिकानि क्रियावसानविरमानि किंपाकपाकविपाकानि पराधीनान्यस्थानप्रचुरभंगुराणि यावद्यावदेषां रामणीयकं तावत्तावद्भोगिनां तृष्णाप्रसंगोऽनवस्थो यथाऽग्नेरिन्धनैर्जलनिधेःसरित्सहस्रेण न तृप्तिस्तथा लोकस्याप्येतैर्न तृप्तिरुपशान्तिश्चैहिकामुत्रिकविनिपातहेत-

बुरा दुःख देनेवाला होता है। उन कर्मोंका बंध भी लता (बेल) दारु (लकडी) अस्थि (हड्डी) और पर्वत स्वभावरूप चार प्रकारका होता है। ये सब कर्म किस किस गतिमें किस किस योनिमें और किस किस अवस्थामें जीवोंके विषयभूत होते हैं अर्थात् प्रत्येक गतिमें प्रत्येक योनिमें और प्रत्येक अवस्थामें किन किन कर्मोंका बंध उदय होता है वा किन किन कर्मोंकी सत्ता रहती है आदि कर्मोंके विशेष उदयका बार बार चिंतवन करना पांचवां विपाक विचय नामका धर्म्यध्यान है। यह शरीर अनित्य है कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकता नाश होना इसका स्वभाव है यह अपवित्र है, दोषोंका स्थान है, सातों धातुओंसे बना हुआ है, अनेक तरहके मलोंसे परिपूर्ण वा भरा हुआ है, इसके नवद्वाररूपी बिल सदा बहते रहते हैं, यह अत्यंत बीभत्स है, आधेय है, अपवित्र होकर भी दुर्गंधमय है, सम्यग्ज्ञानी लोगोंको वैराग्य उत्पन्न होनेका कारण है और इसमें कोई भी पदार्थ वा कुछ भी भाग सुन्दर वा मनोहर नहीं है। इंद्रियोंके सुख आरंभमें तो अच्छे लगते हैं परंतु अंतमें बडे ही नीरस हैं, पकेहुए किंपाक फलके समान ही इनका भी विपाक होता है-ये इंद्रियोंके सुख सब पराधीन हैं और बीचमें ही अनेक बार नष्ट हो जाते हैं। जब जबतक ये सुंदर जान पडते हैं तब तबतक भोग करने-वालोंको इनकी तृष्णा बढती ही जाती है। जिसप्रकार इंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती

वस्तानि देहिनः सुखानीति मन्यंते महादुःखकारणान्यनात्मीयत्वादिष्टान्यप्यनिष्टानीति वैराग्यकारणविशेषानुचिन्तनं षष्ठं धर्म्यं । भव-विचयं सचित्ताचित्तमिश्रशीतोष्णमिश्रसंवृतविवृतमिश्रभेदासु योनिषु जरायुजांडजपोतोपपादसम्मूर्च्छनजन्मनो जीवस्य भवाद्भवान्तरसंक्रमण इषुगतिपाणिमुक्तालांगलिकागोमूत्रिकाश्चतस्रो गतयो भवन्ति । तत्रेषुगतिरविग्रहैकसामयिकी ऋज्वी संसारिणां सिद्ध्यतां च जीवानां भवति । पाणिमुक्तैकविग्रहा द्विसामयिकी संसारिणां भवति । लांगलिका द्विविग्रहा त्रिसामयिकी । गोमूत्रिका त्रिविग्रहा चतुःसामयिकी भवति । एवमनादिसंसारे संधावतो जीवस्य गुणविशेषानुपलब्धिग्तरतस्य भवसंक्रमणं निरर्थकमित्येवमादिभवसंक्रमण-

और हजारों नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती उसीप्रकार संसारमें भी इन विषय सुखोंसे न कभी तृप्ति होती है और न कभी शांति होती हैं। ये विषय-सुख इसलोक और परलोक दोनो लोकोंमें अनेक उपद्रव करनेवाले हैं तथा महादुःखके कारण हैं तथापि संसारी प्राणी इन्हें सुखका कारण मानते हैं यद्यपि ये आत्मासे बाह्य है तथापि लोग इन्हें इष्ट मानते हैं परंतु वास्तवमें देखा जाय तो ये अनिष्ट ही हैं इसप्रकार वैराग्यके विशेष विशेष कारणोंका चिंतवन करना छठा विरागविचय नामका धर्म्यध्यान है। सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, मिश्र, संवृत, विवृत, मिश्र य नौ योनियां हैं इनमें यह जीव जरायुज अंडज पोत उपपाद संमूर्च्छन रीतिसे जन्म लेकर एक भवसे दूसरे भवमें परिभ्रमण किया करता है उस समय अर्थात् एक भव छोडकर दूसरे भवमें जाते समय इषु गति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति ये चार गतियां होती हैं। इनमेंसे इषुगति कुटिलतारहित (मोडा रहित) होती है एक समयमें होती है और सीधी होती है तथा संसारी जीवोंके भी होती हैं और मुक्त होनेवाले जीवोंके भी होती है। पाणिमुक्तागति एकविग्रहा अर्थात् एक मोडा सहित होती है, दो समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। लांगलिकागति द्विविग्रहा अर्थात् दो मोडा सहित

दोषानुचिंतनं सप्तमं धर्म्यं । यथावस्थितमीमांसा संस्थानविचयं तद् द्वादशविधं, अनित्यत्वमशरणत्वं संसार एकत्वमन्यत्वमशुचित्वमास्रवः संवरो निर्जरा लोको बोधिदुर्लभो धर्मस्वाख्यात इत्यनुप्रेक्षा । उक्तं हि -

समुदेति विलयमृच्छति भावो नियमेन पर्ययनयस्य । नोदेति नो विनश्यति भवनतया लिंगितो नित्यम् ॥

तत्रानित्यत्वमात्मना रागादिपरिणामात्मना कर्मणो कर्मभावेन गृहीतानि पुद्गलद्रव्याण्यगृहीतानि परमाण्वादीनि तेषां सर्वेषां द्रव्यात्मना नित्यत्वं,पर्यायात्मना सततमनुपरतभेदसंसर्गवृत्तित्वादनित्यत्वमिमानि हि शरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणि समुदायरूपाणि

होती है तीन समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। गोमूत्रिकागति तीन विग्रहवाली (तीन मोडावाली) होती है चार समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। इसप्रकार अनादि संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवके सम्यग्दर्शन आदि विशेष गुणोंकी प्राप्ति नहीं होती इसलिये इसका संसारमें परिभ्रमण करना व्यर्थ ही है इसप्रकार संसारमें परिभ्रमण करनेके दोषोंका बार बार चिंतवन करना सातवां भवविचय नामका धर्म्यध्यान है। संसारमें जो पदार्थ जिस अवस्थामें विद्यमान हैं उनका उसीप्रकार विचार वा मनन करना आठवां संस्थान विचय नामका धर्म्यध्यान है। वह अनित्यत्व, अशरणत्व, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म्यस्वाख्यातके भेदसे बारह प्रकारका है इन्हीं बारहोंको अनुप्रेक्षा कहते हैं। लिखा भी है—समुदेति इत्यादि।

पर्याय नयसे समस्त पदार्थ नियमरूपसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते रहते हैं परंतु द्रव्यार्थिक नयसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट ही होते हैं द्रव्यार्थिक नयसे सब पदार्थ नित्य हैं।

रागादिपरिणाम स्वरूप आत्माके द्वारा जो कर्मोंके योग्य पुद्गल द्रव्य कर्मरूपसे ग्रहण किये गये हैं अथवा परमाणु आदि जो पुद्गल द्रव्य आजतक ग्रहण नहीं किये हैं वे सब द्रव्य

जलबुद्‌बुदवदनवस्थितस्वभावानि गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि मोहोदयादत्राऽज्ञानी नित्यतां मन्यते, न किंचित्संसारे ध्रुवमस्त्यात्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यत्वानुप्रेक्षा, एवमस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वंगाभावाद् भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते।

अशरणत्वं—शरणं द्विविधं, लौकिकं, लोकोत्तरं चेति। प्रत्येकं त्रिविधं जीवाजीवमिश्रकभेदात्। तत्र लौकिकं जीवशरणं राजा देवता, प्राकाराद्यऽजीवशरणं, प्राकारान्वितं ग्रामनगरादि मिश्रकं। लोकोत्तरं जीवशरणं पंच गुरवस्तत्प्रतिबिम्बाद्यऽजीवशरणं

शरीर और इंद्रियोंके विषयोंके उपभोग परिभोग करने योग्य समुदायरूप सब द्रव्य भी जलके बुद्‌बुदाके समान अनवस्थित स्वभाव हैं अर्थात् शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं। गर्भ आदि विशेष अवस्थाओंमें भी संयोग और वियोग सदा प्राप्त होते रहते हैं परंतु मोहनीय कर्मके उदयसे यह अज्ञानी जीव इस संसारमे सबको नित्य मानता है। संसारमे आत्माके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग स्वभावके सिवाय और कुछ भी नित्य नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अनित्यानुप्रेक्षा है, इसप्रकार इस भावनाके चिंतवन करने से उन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि नहीं होती और ममत्वबुद्धि के न होनेसे उपभोग कर छोडे हुए गंध माला आदि पदार्थों के समान उनका वियोग होने पर भी किसी तरहका क्लेश उत्पन्न नहीं होता है।

इस ससारमें शरण दो प्रकारका है—एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर। तथा वे दोनोंही जीव, अजीव और मिश्र के भेदसे तीन तीन प्रकारके हैं। राजा देवता आदि लौकिक जीव शरण हैं। कोट शहर पनाह आदि लौकिक अजीव शरण हैं और कोट खाई सहित गांव नगर आदि लौकिक मिश्र शरण है। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांचो ही गुरु लोकोत्तर

सधर्मसाधुवर्गोपकरणं मिश्रकशरणं। यथा मृगशावकस्यैकान्ते बलवता क्षुधितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिद्रुतस्य न किंचिच्छरणमस्ति तथा जन्मजराव्याधिप्रियवियोगाप्रियसंयोगेप्सितालाभदारिद्र्यदौर्मनस्यादिसमुत्थितेन दुःखेनाभिभूतस्य जन्तोः शरणं न विद्यते। परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायी भवति न व्यसनोपनिपाते रुति। यत्नेन संचिता अप्यर्था न भवान्तरमनुगच्छन्ति। संविभक्तसुखदुःखाःसुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते बन्धवः समुदिताश्च रुजा परीत न परिपान्ति। अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तरणोपायो भवति। मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणं तस्माद्भवव्यसनसंकटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्य-

जीव शरण हैं इन अरहंत आदिके प्रतिबिंब आदि लोकोत्तर अजीव शरण हैं। धर्मसहित साधुओंका समुदाय तथा उनके उपकरण आदि लोकोत्तर मिश्र शरण हैं। जिसप्रकार किसी एकांत स्थानमें अत्यंत बलवान भूखा और मांसका लोलुपी बाघ किसी हिरणके बच्चेको पकड़ लेता है और फिर उसे कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार जन्म जरा (बुढापा) व्याधियां, इष्टका वियोग, अनिष्टका संयोग, इष्टका लाभ न होना, दरिद्रता, दुर्मनस्कता (मनका चंचल रहना) आदिसे उत्पन्न हुए अनेक दुःखोंसे ग्रसित हुए इस प्राणीको कोई शरण नहीं है दुःखोंसे इसे कोई नहीं बचा सकता। यह अत्यंत पुष्ट किया हुआ वा पाला पोसा हुआ शरीर भी केवल भोजनकेलिये सहायक होता है परंतु किसी आपत्तिके आजानेपर यह बिल्कुल सहायता नहीं देता। बडे यत्नसे संचित किया हुआ धन भी दूसरे जन्ममें साथ नहीं जाता। सुख दुखको बांटने वाले मित्रगण भी मरनेके समय रक्षा नहीं कर सक्ते और भाई बधु सब मिलकर भी उस रोगी पुरुषको नहीं बचा सकते। इस संसारमें इस जीवको यदि कोई सहायक है तो अच्छीतरह आचरण किया हुआ धर्म ही है। यह धर्म ही संसाररूपी महासागरसे पार होनेका साधन है जिससमय मृत्यु इस जीवको ले जाने लगता है उससमय इंद्र भी इसकी रक्षा

ननुयायी नान्यत्किञ्चिच्छरणमिति' भावनमशरणानुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य सांसारिकेषु भावेषु ममत्वविगमो भवति, भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीतागम एव प्रतिपन्नो भवेत् ;

संसारस्य, संसारोऽसंसारो नोसंसारस्त्रित्रितयव्यपायश्चेति चतुर्विधावस्था । तत्र संसारश्चतसृषु गतिषु नानायोनिविकल्पासु परिभ्रमणं, शिवपदपरमामृतसुखप्रतिष्ठाऽसंसारः, सयोगकेवलिनश्चतुर्गतिभ्रमणाभावात्संसारान्तप्राप्त्यभावाच्चेषत्संसारो नोसंसार इति, तत्त्रितयव्यपायोऽयोगिकेवलिनो भवभ्रमणाभावात् सयोगकेवलिवत्प्रदेशपरिस्पन्दविगमात्ससारान्तावाप्त्यभावाच्च देहपरिस्पन्दा-

नहीं कर सकता इसीलिये संसारकी समस्त आपत्तियोंके समय एक धर्म ही शरण है मित्र और धन भी इस जीवके साथी नहीं हैं अतएव इस संसारमें कोई भी शरण नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अशरणानुप्रेक्षा है इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे "मैं सदा अशरण हूं अर्थात् मेरा कोई शरण नहीं है" इस तरहकी भावनासे इस जीवका चित्त सदा उद्विग्न वा विरक्त रहता है और फिर विरक्त परिणाम होनेसे संसारके समस्त पदार्थोंसे उसका ममत्व छूट जाता है तथा भगवान सर्वज्ञ अरहंतदेवके कहे हुए आगममें उसका चित्त तल्लीन हो जाता है।

संसार, असंसार, नो संसार और त्रितयव्यपाय अर्थात् तीनोंसे रहित ये संसारकी चार अवस्थाएं हैं। अनेक भेदरूप योनियोंमें जन्म मरण करते हुए चारों गतियोंमें परिभ्रमण करना संसार कहलाता है। मोक्षपदरूप परमामृत सुखकी प्राप्ति होना असंसार है। सयोग केवली चारों गतियोंमें परिभ्रमण नहीं करते और उनके संसारका अंत भी हुआ नहीं है इसलिये उन्हें ईषत्संसार अथवा नोसंसार कहते हैं। तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् इन तीनोंसे रहित अयोग केवली हैं क्योंकि उनके संसारके परिभ्रमणका अभाव है सयोग केवलियोंके समान उनके

ऽभावेऽपि देहिनः सततं प्रदेशाचलनमस्ति तत. सदा संसार एव, सिद्धानामयोगिकेवलिनां च नास्ति प्रदेशाचलनं तद्योग्यकर्मसाम-ऽभावादितरेषां त्रिधाऽवसीयते। स पुन. संसारः, अभव्यापेक्षयाऽनाद्यनिधनः, भव्यसामान्यार्पणयाऽनादिरुच्छेदवान्, भव्यवि-शेषविवक्षया क्वचित्सादिः सनिधनः। असंसारः सादिरनिधनः। तत्त्रितयव्यपायोऽन्तर्मुहूर्तकालः। नोसंसारो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः, उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिलक्षः सादिःसपर्यवसान. संसारो जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्त. उत्कृष्टेनार्धपुद्गलपरावर्त्तनकालः स च संसारो द्रव्यक्षेत्रका-लभवभावभेदात् पंचविधो, द्रव्यनिमित्तः संसारो द्विविधः कर्मनोकर्मविवक्षाभेदात्कर्मद्रव्यसंसारो ज्ञानावरणादिविषयो नोकर्मद्रव्यसंसार

प्रदेशोंका परिस्पंदन नहीं होता और उनके संसारका अंत नहीं हुआ है। शरीरके परिस्पंदनका अभाव होने पर भी संसारी जीवोंके सदा प्रदेश परिस्पंदन हुआ करता है। इसीलिये उनके सदा संसार रहता है। सिद्ध और अयोग केवलियोंके प्रदेश परिस्पंदन नहीं होता क्योंकि उनके प्रदेश परिस्पंदन होनेके लिये उसके योग्य कर्मरूप सामग्रीका अभाव है। शेष जीवोंके मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा प्रदेश परिस्पंदन होता है। वह संसार अभव्य जीवकी अपेक्षासे अनादि तथा अनिधन है [आदि अंत दोनोंसे रहित है] भव्य सामान्यकी अपेक्षासे अनादि तो है परंतु नष्ट हो सकता है। भव्य विशेषकी अपेक्षासे कचित् सादि है परंतु सनिधन अर्थात् सांत है। असंसार अर्थात् मोक्ष सादि है परंतु अनिधन अर्थात् अंत रहित है। तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् चौदहवें गुणस्थानका समय अंतर्मुहूर्त है। नोसंसारका समय जघन्य, अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कुछ कम एक करोड पूर्व है। सादि और सांत संसारका समय जघन्य अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरावर्तन है। द्रव्य क्षेत्र काल भव भावके भेदसे संसार पांचप्रकारका है। द्रव्यनिमित्तिक संसार अर्थात् द्रव्यसंसार कर्म और नोकर्मकी विवक्षाके भेदसे दो प्रकार है। कर्म द्रव्य संसार ज्ञानावरण आदि कर्मोंके विषयभूत है और नोकर्म द्रव्यसंसार

औदारिकवैक्रियिकाऽऽहारकतैजसशरीराणामाहारशरीरेन्द्रियाऽऽनपानभाषामनःपर्याप्तीनां निचयः । क्षेत्रहेतुः संसारो द्विविधः, स्वक्षेत्रपरक्षेत्रविकल्पात् । लोकाकाशतुल्यप्रदेशस्यात्मनः कर्मोदयवशात्संहरणविसर्पणधर्मिणः हीनाधिकाकाशप्रदेशपरिमाणावगाहनं स्वक्षेत्रसंसारः । सम्मूर्छनगर्भोपपादजन्मनवयोनिविकल्पालंबनः परक्षेत्रसंसारः । परमार्थव्यवहारभेदेन कालो द्विविधः । तत्र यावंतो लोकाकाशप्रदेशास्तावंतः कालाणवः परस्परं प्रत्यबंधाः एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकव्यापिनो मुख्योपचारप्रदेशकल्पनाभावान्निरवयवाः, मुख्यप्रदेशकल्पना हि धर्माधर्मजीवाकाशेषु पुद्गलेषु च द्व्यणुकादिस्कन्धेषु परमाणुषूपचारप्रदेशकल्पना

औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर तथा आहार शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके विषयभूत हैं । जिसमें क्षेत्र ही कारण हो उसको क्षेत्रसंसार कहते हैं वह स्वक्षेत्र और परक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है । इस आत्माके प्रदेश लोकाकाशके प्रदेशोंके बराबर हैं परंतु कर्मोंके उदयके कारण उनमें संकोच विस्तार होनेकी शक्ति है । इसीलिये यह आत्मा कभी आकाशके थोडेसे प्रदेशोंमें ही अवगाहन करता है और कभी अधिक प्रदेशोंमें इसीको स्वक्षेत्रसंसारकहते हैं संमूर्च्छन गर्भ उपपाद इन तीनों जन्म तथा नौ योनियोंके भेदोंका सहारा लेकर जन्म मरण करना परक्षेत्र संसार है। परमार्थ और व्यवहारके भेदसे काल भी दो प्रकारका है। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतने ही कालाणु हैं वे परस्पर कभी बंध रूप नहीं होते अर्थात् मिलते नहीं, एक एक लोकाकाशके प्रदेशपर एक एक कालाणु है इसतरह वे कालाणु समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं, उनमें न तो मुख्य प्रदेश कल्पना है और न उपचारसे प्रदेश कल्पना है इसलिये वे कालाणु अवयवरहित हैं । धर्म, अधर्म, जीव, आकाश और द्व्यणुक आदि स्कंधरूप पुद्गलोंमें मुख्य प्रदेश कल्पना है तथा परस्पर मिलनेकी शक्ति होनेसे पुद्गल परमाणुमें उपचारसे प्रदेश कल्पना है । कालाणुमें किसी तरहकी प्रदेश कल्पना नहीं है, उनके नाश होनेका कोई कारण नहीं है इसलिये वे नित्य हैं और अनेक तरहसे परिणमनशील ऐसे

प्रचयशक्तियोगात् । विनाशहेत्वभावान्नित्याः, विविधपरिणामि-षट्द्रव्यपर्यायपरिवर्त्तनहेतुत्वादनित्याः, रूपरसगन्धस्पर्शयोगाभावादमूर्त्ताः, जीवप्रदेशवत्प्रदेशान्तरसंक्रमणाऽभावान्निष्क्रिया इति परमार्थकालः । व्यवहारकालः परमार्थकालवर्तनया लब्धकालव्यपदेशः परिणामादिलक्षणः । कुतश्चित्परिच्छिन्नोऽपरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः । भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति त्रिविधः कालः परस्परापेक्षत्वात्, यथा वृक्षपंक्तिमनुसरतो देवदत्तस्यैकैकं तरुं प्रति प्राप्तप्राप्नुवत्प्राप्स्यद्व्यपदेशस्तथा तत्कालाणूननुसरता द्रव्याणां क्रमेण वर्तमानपर्यायमनुभवतां भूतवर्तमानभविष्यद्व्यवहारसद्भावः । तत्र परमार्थकाले भूतादिव्यवहारो गौणो व्यवहारकाले तु मुख्यः । किमत्र बहुनोक्तेन परमा-

छहों द्रव्योंकी पर्यायोंके परिवर्तनका कारण होनेसे अनित्य हैं । उनमें रूप रस गंध स्पर्शका संबध नहीं है इसलिये अमूर्त हैं और जीवोंके प्रदेशोंके समान वे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक जा आ नहीं सके इसलिये निष्क्रिय वा क्रियारहित हैं ऐसे उन कालाणुओंको परमार्थ काल कहते हैं । परमार्थकालकी वर्तनाके द्वारा जिसे कालसंज्ञा प्राप्त हुई है, परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व जिसका लक्षण है अर्थात् इन तीनोंसे जो जाना जाता है उसे व्यवहार काल कहते हैं यह व्यवहारकाल किसी अन्यसे (सूर्योदयादिकसे) परिच्छिन्न है और अपरिच्छिन्न द्रव्योंके परिच्छेदका कारण है ।

वह व्यवहार काल भूत वर्तमान और भविष्यतके भेदसे तीन प्रकारका है । जिसप्रकार अनेक वृक्षोंकी पंक्तियोंके अनुसार कोई देवदत्त नामका पुरुष चल रहा हो तो उसके लिए एक एक वृक्षके प्रति यह भाव उत्पन्न होता है कि इस वृक्षतक वह पहुंच गया इस वृक्षके समीप जा रहा है और इस वृक्षपर जायगा उसीप्रकार अनुक्रमसे वर्तमान पर्यायोंका अनुभव करते हुए उन कालाणुओंके अनुसार रहनेवाले द्रव्योंके भूत वर्तमान भविष्यत् व्यवहार प्रगट होता है । उसमें भी परमार्थकालमें भूत वर्तमान भविष्यतका व्यवहार गौण रीतिसे होता है और

ंकालेन कारणभूतेन तेन षट् द्रव्याणि कार्यरूपाणि परावर्त्यन्ते तेषा द्रव्याणां परिच्छेदकाः समयावलिकादयः । द्रव्यस्यैकपर्याय एकः समयो द्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानन्तपर्यायकलापाः द्वित्रिचतुःसंख्येया असंख्येया अनन्तसमया यथा प्रदीपः स्वपरप्रकाशकस्तथैव कालः स्वपरप्रवर्तकः, अथवा सर्वजघन्यगतिपरिणतस्य परमाणोः स्वावगाहाकाशप्रदेशव्यतिक्रमणं कालः परमनिरुद्धो निर्विभागः समय

इति कालसंसारः ।

भवनिमित्तसंसारो द्वात्रिंशद्विधः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः प्रत्येकं चतुर्विधाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदात् । वनस्पतिकायिका

व्यवहार कालमें इन तीनोंका व्यवहार मुख्य रीतिसे होता है। यहांपर बहुत कहनेसे क्या लाभ है केवल इतना समझ लेना चाहिये कि उस कारणभूत परमार्थ कालसे छहों द्रव्य कार्यरूप परिणत होते रहते हैं। उन द्रव्योंका परिच्छेद करनेवाले समय आवलिका आदि हैं। द्रव्यका एक पर्याय एक समयरूप है तथा दो तीन चार संख्यात असंख्यात अनंत पर्यायोंका समूह दो तीन चार संख्यात असंख्यात और अनंत समयरूप है। जिसप्रकार दीपक स्वप्रकाशक होकर परप्रकाशक है उसीप्रकार काल भी स्वप्रवर्तक होकर परप्रवर्तक है। अथवा सबसे जघन्यगतिरूप परिणत हुआ पुद्गलका परमाणु जितने देरमें अपने रहने योग्य आकाशके प्रदेशका उल्लंघन करता है अर्थात् समीपवर्ती प्रदेश तक पहुचता है उतने परम निरुद्ध और और विभाग रहित कालको समय कहते हैं यह काल संसार है।

भव निमित्तक संसार बत्तीस प्रकारका है। पृथिवीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक और अग्निकायिक। ये चारों ही प्रकारके जीव सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक, बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं सब सोलह भेद होते हैं। वनस्पतिकायिक दो प्रकारके हैं एक प्रत्येक शरीर और दूसरा साधारण शरीर। पर्याप्त अपर्याप्तकके भेदसे प्रत्येक

द्वेधा प्रत्येकशरीराः साधारणशरीराश्चेति । प्रत्येकशरीरा द्वेधा पर्याप्तकापर्याप्तकभेदात्। साधारणशरीरा आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्त्युत्पादननिमित्तमाहारवर्गणायाः गृहीतपुद्गलपिंडास्तत्र यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र मरणमनंतानां यत्रैकश्चोत्पद्यते तत्राऽनंतानामुत्पत्तिर्भवति तेषां लिंगं गूढशिरादि । उक्तं च—

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणंच । साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥ १ ॥

जत्थेक्कु मरइ जावो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं । चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं ॥ २ ॥

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं । साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ ३ ॥

शरीर भी दो प्रकारके हैं । आहार, शरीर, इंद्रिय, उच्छ्वास, निश्वास और पर्याप्तिके निमित्त कारण आहार वर्गणाके पुद्गलपिंड ग्रहण करनेवाले साधारण शरीर कहलाते हैं । उनमेंसे यदि एकका मरण हो तो सबका मरण हो जाता है और एककी उत्पत्ति हो तो अनंत जीवोंकी उत्पत्ति होती है उन साधारण जीवोंका चिन्ह गूढशिरा आदि है। लिखा भी है—साहारण इत्यादि ।

भावार्थ—इन साधारण जीवोंका साधारण ही आहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वासका ग्रहण होता है साधारण जीवोंका लक्षण परमागममें साधारण ही कहा है॥ १९१ ॥ साधारण जीवोंमें जहांपर एक जीव मरण करता है वहांपर अनंत जीवोंका मरण होता है और जहांपर एक जीव उत्पन्न होता है वहां अनंत जीव उत्पन्न होते हैं ॥ १९२ ॥ जिनका शिरा, संधि पर्व अप्रगट हों और जिसका भंगकरने पर समान भंग हो और दोनों भंगोंमें परस्पर तंतु न लगा रहे, छेदन करनेपर भी वृद्धि हो जाय उसको साधारण शरीर कहते हैं और इसके विपरीतको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८६ ॥ जिन वनस्पतियोंके मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल (नये

मूलं कंदं छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे। समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ४ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वावि बहुलतरी। छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दु तणुकदरी ॥५॥

... च साधारणशरीराश्चतुर्धा सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात्। त्रित्रिचतुरिन्द्रियाः प्रत्येकं द्वेधा, पर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात्। पंचेन्द्रियाश्चतुर्धा संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकापेक्षयेति।

भवनिमित्तसंसारो द्वेधा स्वभावपरभावाश्रयात्। स्वभावो मिथ्यादर्शनकषायादिः परभावो ज्ञानावरणादि कर्मरसादिः। एवमेतस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन्नयं जीवः कर्मयंत्रप्रेरितः पिता भूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति। माता भूत्वा भगिनी, भार्या दुहिता च भवति। किं बहुना स्वयमात्मनः पुत्रो भवतीत्येवमादिसंसारस्वभावचिन्तनं संसारानुप्रेक्षा। एवमस्य भावयतः संसारदुःखभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति निर्विण्णश्च संसारप्रहाणाय प्रतियतते।

पत्ते) छोटीशाखा पत्र फूल फल तथा बीजोंको तोडनेसे समान भंग हो उनको साधारण कहते हैं और जिनका भंग समान न हो उनको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८७ ॥ जिन वनस्पतियों के कंद मूल क्षुद्रशाखा या स्कंधकी छाल मोटी हो उनको साधारण कहते हैं और जिसकी छाल पतली हो उसको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८८ ॥ (ये गोम्मटसार जीवकांडके गाथा हैं)

ये साधारण जीव सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक, बादर पर्याप्तक और बादर अपर्याप्तक के भेदसे चार प्रकारके हैं दो इंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय जीव भी पर्याप्तक अपर्याप्तकके भेदसे दो दो प्रकारके हैं। पंचेंद्रिय जीव संज्ञी पर्याप्तक, संज्ञी अपर्याप्तक, असंज्ञी पर्याप्तक और असंज्ञी अपर्याप्तकके भेदसे चार प्रकारके हैं इस प्रकार सब बत्तीस भेद होते हैं। भावनिमित्तक संसार के दो भेद हैं—एक स्वभाव दूसरा परभाव। मिथ्यादर्शन कषाय आदि स्वभाव संसार है और ज्ञानावरणादि कर्मोंके रसादिक परभाव संसार है। इस प्रकार अनेक योनियां और लाखों कुल-

अथैकत्वानुप्रेक्षावर्णनं । जन्मजरामरणाऽऽवृत्तिमहादुःखानुभवनं प्रति सहायानपेक्षत्वमेकत्वं । एकत्वमनेकत्वमेतद्द्वयं द्रव्यक्षेत्रकालभावविकल्पं । तत्र द्रव्यैकत्वं जीवादिष्वन्यतमद्रव्यविषयत्वेनाऽभेदत्वं । क्षेत्रैकत्वं परमाणुवदगाढप्रदेशः । कालैकत्वमभेदसमयः । भावैकत्वं मोक्षमार्गः । तथाऽनेकत्वमपि भेदविषयं, न हि किंचिदेकमेव निश्चलमस्ति अनेकमेव वा, एकमपि सामान्यार्पणया विशेषार्पणयाऽनेकमपि भवति । तत्र परित्यक्तबाह्याभ्यंतरोपधित्यागस्य सम्यग्ज्ञानादेकत्वनिश्चयमास्कन्दतः यथाख्यातचारि-

कोडियों से भरे हुए इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ यह जीव कर्मरूपी यंत्रों से प्रेरित हो कर पिता होकर भाई हो जाता है, पुत्र हो जाता है तथा पौत्र हो जाता है, माता होकर बहिन स्त्री और पुत्री हो जाती है बहुत कहनेसे क्या ? वह स्वयं मरकर अपना पुत्र हो जाता है। इस प्रकार संसारके स्वभावका चिंतवन करना संसारानुप्रेक्षा है।

बार बार होनेवाले जन्म जरा मरणोंके महादुखोंके अनुभवके लिए सहायताकी अपेक्षा न रखना एकत्व है। एकत्व और अनेकत्व ये दोनों ही द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार चार प्रकारके हैं। जीवादिक पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थके विषयको लेकर अभेद बुद्धि रखना द्रव्य एकत्व है। परमाणुके रहने योग्य प्रदेशको क्षेत्र एकत्व कहते हैं। अभेदरूप समयको काल एकत्व कहते हैं। तथा मोक्षमार्गको भाव एकत्व कहते हैं। जिसप्रकार अभेद विषयको एकत्व कहते हैं उसीप्रकार भेद विषयको अनेकत्व कहते हैं। संसारमें न तो कोई भी पदार्थ एक है और न अनेक ही हैं किंतु सामान्यकी अपेक्षासे एक है और विशेषकी अपेक्षासे अनेक है। जिस जीवने बाह्य आभ्यंतर उपाधियोंका त्याग कर दिया है तथा सम्यग्ज्ञानसे एकत्वका निश्चय कर लिया है उसके एक यथाख्यात चारित्रकी वृत्ति धारण करनेसे मोक्षमार्गके भाव प्रगट

नैरासुख्येश्चिन्ताभीभारेनैकत्वं तदात्मत्व एक एवाऽहं न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते एक एव जायेऽहं एक एव म्रियते न मे कश्चिज्जनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति, बंधुमित्राणि श्मशानं नाऽतिवर्तन्ते धर्म एव मे सहायः सदाऽनपायीति चिन्त-नमेकत्वाऽनुप्रेक्षा। एवमस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबंधो न भवति, परजनेषु द्वेषानुबंधो नोपजायते, ततो निःसंगताऽभ्युपजायते ततो निःसंगतो मोक्षोऽवघटते। इत्येकत्वानुप्रेक्षा।

अथाऽन्यत्वाऽनुप्रेक्षाकरण। अन्यत्वं चतुर्धा व्यवतिष्ठते, नामस्थापनाद्रव्यभावाऽऽलंबनभेदात्। आत्मा जीव इति नामभेदः।

होते हैं इसलिये उसके वह एकत्व कहलाता है। उस एकत्वको प्राप्तिके लिए "इस संसारमें मैं अकेला हूं स्व और पर मेरा कोई नहीं है मैं अकेला ही जन्म लेता हूं और अकेला ही मरता हूं स्वजन और परजन कोई मनुष्य भी मेरी व्याधियां, बुढापा, और मरण आदिके दुःखोंको दूर नहीं कर सकता। बंधु मित्र आदि श्मशानसे आगे नहीं जा सकते एक धर्म ही मेरा सहायक है और वही ऐसा है जो कभी नाश न होगा" इसप्रकार चिंतवन करना एकत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार चिंतवन करनेसे अपने कुटुंबी लोगोंसे प्रेम नहीं बढता और अन्य लोगोंमें द्वेष नहीं बढता। इसप्रकार राग द्वेपका अभाव होनेसे निःसंगता बढती है और निःसंगता बढनेसे मोक्ष प्राप्त होती है। इसप्रकार एकत्व अनुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य, भावके अवलंबनके भेदसे अन्यत्व चार प्रकारका होता है। आत्मा है जीव है यह नाम भेद है। काष्ठ पाषाण आदिकी बनाई हुई प्रतिमा स्थापना भेद है। यह जीव द्रव्य है, अजीव है आदि द्रव्य भेद है। एक ही जीव द्रव्यमें बालक युवा मनुष्य देव आदि भाव भेद है। यद्यपि जीव कर्मोंका बंध होनेसे दोनों एक हो रहे हैं तथापि लक्षणभेदसे दोनों भिन्न भिन्न हैं। जीव ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगरूप है

काष्ठप्रतिमेति स्थापनाभेदः । जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति द्रव्यभेद । एकस्मिन्नपि द्रव्ये बालो युवा मनुष्यो देव इत्यादि भावभेदः जीवकर्मणोः बंधं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्यत्वं, जीवस्तावज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणः । वर्णगंधरसस्पर्शवन्तः पुद्गला इति लक्षणकृतो भेदः । प्रतिसमयमनंतानंताः कर्माणवो योगवशादागत्य जीवप्रदेशेष्वन्योन्यप्रदेशाऽनुप्रविष्टाः सन्तः कषायवशादवतिष्ठन्ते समयं प्रत्यनंतानंताः कर्मपुद्गला जीवं परित्यज्य प्रच्यवन्त इति बधं प्रति भेदः । नोकर्मपुद्गला अपि बन्धनगुणेन जीवे क्षीरनीरन्यायेनैकबन्धनबद्धा भूत्वा प्रतिक्षणं निर्जीर्यन्ते । जीवः स्वयं कर्मवशात्तत्प्रायोग्यशरीरं निर्माय शरीरस्थोऽपि यथा नखरोमदन्तास्थिषु

तथा पुद्गल वर्ण गंध रस स्पर्शवाला है यह लक्षणसे दोनों में भेद हुआ । प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म परमाणु योगों के निमित्तसे आते हैं तथा जीवके प्रदेशों में (दूधपानीके समान) परस्पर एक दूसरेके प्रदेशों में मिलकर एक हो जाते हैं कषायों के निमित्तसे उनमें ठहरनेकी शक्ति हो जाती है इसलिये वे वहीं ठहर भी जाते हैं । इसीप्रकार प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म पुद्गल जीवको छोडकर अलग भी हो जाते हैं । इसप्रकार यह बंधके प्रति भेद सिद्ध होता है । नोकर्म पुद्गल भी बंधन गुणसे जीवमें दूध पानी के समान एक बंधरूप हो जाते हैं और फिर प्रति क्षणमें निर्जीर्ण होते जाते हैं, । यह जीव स्वयं कर्मोंके निमित्तसे उनके योग्य शरीर बनाता है परंतु वह उस शरीरमें रहकर भी जिसप्रकार नख, रोम और दांतोंकी हड्डियोंमें नहीं रहता उसीप्रकार रुधिर वसा शुक्र रस श्लेष्मा पित्त मूत्र पुरीष (विष्टा) और मस्तिष्क आदिके प्रदेशोंमें भी नहीं रहता । इसप्रकार यह जीव कर्मोंके द्वारा बने हुए शरीरसे बिल्कुल भिन्न रहता है । तथा किसी कुशल पुरुषके प्रयोग करनेपर (मोक्षके लिए उद्यम करनेपर) शरीरसे अत्यंत भिन्न होनेके कारण जो आत्मासे कभी भिन्न हो नहीं सकते ऐसे ज्ञान आदि अनंत गुणोंके साथ साथ मोक्ष स्थानमें जाकर प्राप्त होता है । उस मोक्षस्थानके प्राप्त होनेके लिए "यह

न [illegible] यथा [illegible]मांसरुधिरश्लेष्मपित्तमूत्रपुरीषादि [illegible]कादिषु प्रदेशेष्वपि नास्ति एवं कर्मशरीराच्च [illegible]ऽन्यत्वं तत. कुश-[illegible] शरीरादन्यत्वं [illegible]ऽऽत्मनो ज्ञानादिभिरनन्तैर्गुणैर्युक्तावस्थानं तदवाप्तये—ऐन्द्रियिकं शरीरमतीन्द्रियोऽहं, अज्ञं शरीरं ज्ञस्वभावोऽहं, अनित्यं शरीरं नित्योऽहं। आद्यन्तवच्छरीरमनाद्यनन्तोऽहं बहूनि मे शरीरशतसहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमतः स एवाऽहमन्यस्तेभ्य इति शरीरादन्यत्वं मे। किमंग पुनर्बाह्येभ्य इति चिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा। एवमस्य मनः समादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते ततश्च श्रेयसे वर्तते। इत्यन्यत्वाऽनुप्रेक्षा।

अथाऽशुचित्वाऽनुप्रेक्षा—शुचित्वं द्वेधा, लोकोत्तरं लौकिकं चेति। तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्मकलंकस्य स्वात्मन्यव-

शरीर इंद्रियमय है, मैं अतींद्रिय हूं, शरीर अज्ञान वा जड स्वरूप है परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूं यह शरीर अनित्य है, मैं नित्य हूं, शरीरका आदि अंत दोनों हैं परन्तु मेरा न आदि है, न अंत है संसारमें परिभ्रमण करते हुए मेरे वहुतसे शरीर व्यतीत हो गये परंतु मैं ज्योंका त्यों वही बना हुआ हूं और उन शरीरोंसे सर्वथा भिन्न हूं। हे अंग (हे जीव) यह मेरा आत्मा शरीरसे भी भिन्न है फिर धन धान्य आदि बाह्य परिग्रहोंकी तो बात ही क्या है अर्थात् उनसे तो भिन्न है ही।" इसप्रकार चिंतवन करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार मनको समाधान करनेवाले इस जीवके शरीर आदिमें स्पृहा वा इच्छा नहीं होती और उन पदार्थोंकी इच्छा न होनेसे यह जीव अपने कल्याणमें लग जाता है। इसप्रकार यह अन्यत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

अब आगे अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते हैं। पवित्रता दो प्रकारकी है—एक लोकोत्तर और दूसरी लौकिक। जिसने विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे अपने समस्त कर्ममल कलंक धो डाले हैं नष्ट कर दिए हैं ऐसे आत्माका अपने ही आत्मामें स्थिर रहना लोकोत्तर पवित्रता कहलाती है। उस लोकोत्तर पवित्रताके साधन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपश्चरण हैं तथा सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र तपश्चरणको धारण करनेवाले साधु जन उस पवित्रताके

रित्र

स्थानं लोको ऽशुचित्वं तत्साधनानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छुचिव्यपदेशमर्हन्ति । लौकिकं शुचित्वं कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयसलिलाऽज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदादष्टविधं । तदिदं शरीरं शुचीकर्तुं न शक्यते कुतोऽत्यन्ताऽशुचित्वात् शरीरमिदमाद्युत्तराशुचिकारणादिभिरशुचि लक्ष्यते । तद्यथा—आद्यं तावत्कारणं शरीरस्य शुक्रं शोणितं च तदुभयमत्यन्ताऽशुचि । उत्तरकारणमाहारपरिणामादि कवलाऽऽहारोपि ग्रस्तमात्रः श्लेष्माशयं प्राप्य श्लेष्मणा द्रवीकृतोऽधिकमशुचि भवति, ततः पित्ताशयं प्राप्य पच्यमान आम्लीकृतोऽशुचिरेव भवति, पक्वो वाताशयम-

अधिष्ठान वा आधार हैं। अथवा उस लोकोत्तर पवित्रताके उपायभूत होनेसे निर्वाण भूमि आदि भी पवित्र कहलाती हैं। लौकिक पवित्रता काल, अग्नि, भस्म, मृत्तिका (मिट्टी) गोमय (गोवर) जल, अज्ञान और निर्विचिकित्साके भेदसे आठ प्रकार है। परंतु यह शरीर किसी तरहसे पवित्र नहीं किया जा सकता इसका भी कारण यह है कि वह अत्यंत अपवित्र है इस शरीरके आदिकारण और अंतके कारण दोनोंही अपवित्र हैं इसलिये यह शरीर भी अपवित्र है इसी बातको आगे दिखलाते हैं—शरीरके आदि कारण अर्थात् शरीर बननेके कारण शुक्र और शोणित हैं परंतु वे दोनों ही महा अपवित्र हैं। शरीरके उत्तर कारण आहारका परिणाम आदि हैं यह आहार खानेके साथही श्लेष्माशयको प्राप्त होता है और वहांपर श्लेष्माके द्वारा कुछ द्रवीभूत होकर पतला होकर और अधिक अपवित्र हो जाता है। वहांसे पित्ताशयमें पहुंचता है और पककर कुछ खट्टासा होकर उससे भी अधिक अपवित्र हो जाता है। पककर वह आहार वाताशयमें पहुंचता है और वहां वायुसे विभक्त होकर (अलग अलग भाग में बटकर) खलभाग और रसभागोंमें बट जाता है। खलभाग मूत्र पुरीष (भिष्टा) आदि पतले और कडे जलसे विकारमें परिणत होकर अलग निकल जाता है। रसभाग शोणित

सा

वाप्य वायुना विभज्यमानः खलरसभावेन भिद्यते । मलभागो मूत्रपुरीषादिद्रवघनमलत्रिकारेण विविच्यते, रसभागः शोणितमांस-मेदोऽस्थिमज्जाशुक्रभावेन परिणमते । सर्वेषां चैषामशुचीनां भाजनं शरीरमवस्करवदशक्यप्रतीकारं । खल्विद शरीरं स्नानानुलेपन-धूपप्रवर्षवस्त्रमालादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुं अंगारवदाश्रितमपि द्रव्यमाश्वेवाऽऽत्मस्वभावमापादयति । शरीरजा अपि गोमयगोरोचनदन्तिदंतचमरीबालमृगनाभिखड्गविषाणमयूरपिच्छसर्पमणिशुक्तिमुक्ताफलादयो लोकेषु शुचित्वमुपगताः । नास्त्यत्र पुनः शरीरे किंचित्कमनीयं शुचि वा न जलादीनां शुचिहेतुत्वं । सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यंतिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीति तत्त्वभावनमशुचित्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य संस्मरतः शरीरनिर्वेदो भवति, निर्विण्णश्च जन्मोदधितरणाय चित्तं समाधत्त इत्यशुचित्वा-

(रक्त वा खून लोहू) मांस मेदा हड्डी मज्जा और शुक्ररूप परिणत हो जाता है इन सब अपवित्र पदार्थोंका पात्र यह शरीर है जो कि भिष्टाके समान ऐसा अपवित्र है कि उसको पवित्र करनेका कोई उपाय हो ही नहीं सकता । इस शरीरकी अपवित्रता स्नान करने उबटन लगाने घिसने और वस्त्र माला आदिके पहननेसे भी कभी दूर नही हो सकती । जिस प्रकार अग्निमें जो चीज पड जाती है वह भी अग्नि रूप ही हो जाती है उसी प्रकार चन्दनादि जो पदार्थ इस शरीर पर लगाये जाते हैं वे भी शरीर रूपही अपवित्र हो जाते हैं । गोबर, गोरोचन, हाथीके दांत, चमरीगायके बाल, मृगनाभि (कस्तूरी) गेंडाके सींग, मोरकी पूंछ, सांपकी मणि और सीपके मोती आदि शरीरसे उत्पन्न हुए पदार्थ संसारमें पवित्र माने जाते हैं परंतु इस शरीरमें कुछ भी भाग पवित्र और सुंदर नहीं है, न जलादि ही इसको पवित्रताके कारण हो सक्ते हैं। इस संसारमें केवल सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही ऐसे हैं कि जिनकी भावना करनेसे यह जीव अत्यंत पवित्र हो जाता है । इसप्रकार शरीरके वास्तविक तत्त्वका चिंतवन करना अशुचित्वा-नुप्रेक्षा है । इस प्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे शरीरसे वैराग्य उत्पन्न होता है और

ऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

अथाऽस्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । उद्वेगार्थमास्रवोपक्षेपः, आस्रवा हीहाऽमुत्र चापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियादयः । अविरलसरलसल्लकीसहकारवंशकुडंगप्रमथनस्वच्छसरोवरसलिलावगाहन मृदुसुखस्पर्शिमहीतलविहरणादिगुणसपन्ना वनविहारिणो मदान्धा महाकाया बलवन्तोऽपि वारणा हस्तिबन्धुकीषु स्पर्शनेन्द्रियप्रसक्तचित्ता मनुष्यविधेयतामुपगम्य वधबन्धदमनवाहनाङ्कुशताडनपार्ष्णिघातादिजनितं तीव्रं दुःखमनुभवन्ति । नित्यमेव च स्वयूथस्वच्छन्दप्रचारसुखस्य वनवासस्याऽनुस्मरन्तो महान्तं

फिर विरक्त होकर यह जीव जन्म मरण रूपी महासागरके पार होनेकेलिये अपना चित्त लगाता है। इस प्रकार अशुचित्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे आस्रवानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—यहांपर अनुप्रेक्षाओंमें केवल वैराग्य प्रगट करनेके लिए ही आस्रव ग्रहण किया गया है। संसारमें कर्मोंके जितने आस्रव हैं वे सब इस लोक और परलोक दोनों जगह इस जीवके स्वाभाविक गुणोंका नाश करनेवाले हैं। ये इंद्रियां आदि किसी महानदीकी तीक्ष्ण जानेवाली धाराके समान हैं। देखो! अत्यंत घने और सीधे ऐसे साल, आम, बांस और कुडंगके पेडोंका तोडना, स्वच्छ सरोवरके जलमें अवगाहन करना, मुलायम और जिसका स्पर्श सुख देनेवाला है ऐसी पृथ्वीपर विहार करना आदि अनेक गुणोंसे सुशोभित, वनमें विहार करनेवाले, मदांध, महाकाय (जिनका बहुत बडा शरीर है) और बहुत बलवान हाथी कृत्रिम हथिनीमें स्पर्शनेन्द्रियके सुखके लिए आसक्त चित्त होकर मनुष्योंके वश हो जाते हैं और फिर मारना, बांधना, दमन करना, सवारी करना, अंकुशोंसे ताडना और पैरकी एडीसे मारना आदि अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए अनेक तीव्र दुःखोंका अनुभव करते हैं। वह प्रतिदिन अपने समूहमें स्वतंत्रता पूर्वक विहार करनेवाले वनवासके सुखका

खेदमवाप्नुवन्ति । तथैव जिह्वेन्द्रियविषयलोभात् स्रोतोवेगावगाहिमृतहस्तिशरीरस्था वायसा अपारसागरावर्तान्तःपातव्यसनमुपनिपतन्ते । मत्स्या आगाधसलिलसचारिणो लोचनगोचरातीता रसनेन्द्रियवशंगता आमिषलोभेन लोहमास्वाद्य म्रियन्ते । घ्राणेन्द्रियलोलुपाश्चौषधगंधलुब्धपन्नगा विनिपातमिच्छन्ति, मधुकराश्च दानगंधलुब्धा गजकर्णझलझलामुपगम्य मरणमासादयन्ति । चक्षुरिन्द्रियविषयीकृताः प्रदीपावलोकेन लोला. पतंगा व्यसनप्रपाताऽभिमुखा भवन्ति । श्रोत्रेन्द्रियविषयसंगाकृष्टमनसो गीतध्वनिविषंगविस्मृततृणग्रसना हरिणा अनर्थोन्मुखा भवन्ति । परत्र च नानाजातिषु बहुविधदुःखप्रज्वलितासु पर्यटन्ति । तथा स्वयंप्रभागसंगतसुखस्मरण करते हैं और बार बार उसका स्मरणकर अत्यंत दुःखी होते हैं । इसीतरह जिह्वा इंद्रियके विषयके लोभसे किसी नदीके प्रवाहके वेगमें पडे हुए मरे हाथीके शरीरपर बैठे हुए कौवे अपार महासागरके भीतर पहुंच जाते हैं और वहांपर अनेक तरहके दुःख उठाते हैं । इसीप्रकार अगाध जलमें रहनेवाली और नेत्रोंके द्वारा दिखाई न देनेवालीं मछलियां भी केवल रसना इंद्रियके वश होकर मांसके लोभसे लोहेकी कीलका आस्वादन कर मर जाती हैं । घ्राण इंद्रियके लोलुपी सर्प औषधि मिली हुई सुगंधिके लोभमें आकर मरनेकी इच्छा करते हैं भ्रमर भी हाथीके मदकी सुगंधके लोभमें पडकर हाथीके इधर उधर चलाये हुए कानोंकी चोट खाकर मर जाते हैं । चक्षु इंद्रियके विषयके वशीभूत हुए पतंग दीपकको देखकर चंचल हो जाते हैं । और उसमें पडकर जल जाते हैं वा मर जाते हैं । जिनका मन श्रोत्र इंद्रियके विषयमें (मधुर रागमें) आसक्त हो गया है ऐसे हिरण भी गीतोंकी मधुर ध्वनिके रागमें खडे होकर हरी घासका खाना भी भूल जाते हैं और फिर बहेलियोंके द्वारा मारे जाते हैं । ये सब दुःख तो इन्हें इस लोकमें ही भोगने पडते हैं । तथा इनके सिवाय परलोकमें भी अनेक तरहके दुःखोंसे भरी हुई बहुतसी योनियोंमे उन्हें परिभ्रमण करना पडता है । (यह तो तिर्यंचोंका उदाहरण बत-

स्पर्शलाभतोऽभ्यासक्तचित्तोऽश्वग्रीवो विद्याधरचक्रवर्ती त्रिखंडाधिपतिः सपुत्रः सबांधवो निधनतामुपगतः। तथा च रसनेन्द्रियलोलुपः सुभूमः सकलचक्रवर्ती षट्खंडाधिपतिर्वणिग्वेषधारिणा जन्मान्तरवैरिणा समुद्रमध्ये मरणमुपगतः। तथा च बर्बरीचिलातिकानृत्यावलोकनविहिताऽऽसक्तिर्दमितारिरर्द्धचक्रवर्ती सकलपरिजनसमेतो विराममुपजगाम। तथा च हस्तिपकमधुरगीतरवश्रवणासक्तमतिरमृतमतिर्यशोधरमहाराजमहादेवी स्वकुलपरिभ्रष्टा कुष्ठाधिष्ठितशरीरा मृतिमुपगम्य नरकदुःखभागिना बभूव एवमेकैकेन्द्रियविषयैर्विपसमैस्तथाविधा अपि विनष्टाः किं पुनः पचेन्द्रियविषयाभिलाषिण इत्येवमाद्यास्रवदोषाऽनुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा। एवमस्य चिन्तयतः क्षमादि-

लाया। मनुष्योंमें भी अनेक बडे पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्हें एक एक इंद्रियकी आसक्तिसे अनेक तरहके दुःख भोगने पडे हैं) अश्वग्रीव विद्याधरोंका चक्रवर्ती राजा था और तीन खंडका स्वामी था परंतु उसका चित्त स्वयंप्रभाके अंगस्पर्शसे उत्पन्न हुए सुख और स्पर्शके लाभ होनेके लोभमें फंस गया था इसीलिये उसे पुत्र भाइयों सहित मरना पडा था। राजा सुभूम सकल चक्रवर्ती राजा था और छहों खंडोंका स्वामी था तथापि रसना इंद्रिय और घ्राण इंद्रियका लोलुपी होनेसे उसे बीच समुद्रमें जाकर वैश्यके भेषको धारण करनेवाले जन्मांतरके वैरीके हाथसे मर जाना पडा। इसीतरह अर्द्धचक्रवर्ती दमितारि भीलनीका नृत्य देखनेमें आसक्त होकर अपने सब कुटुंबियों समेत मरणको प्राप्त हुआ था। इसीप्रकार यशोधर महाराजकी अमृतमति नामकी महादेवी हाथीवानके (महावतके) मधुर गीतोंके शब्द सुननेमें आसक्त होकर अपने कुलसे भ्रष्ट होगई थी, उसका शरीर सब कोढसे भर गया था और मरकर उसे नरकके अनेक दुःख भोगने पडे थे। इसप्रकारके महापुरुष लोग भी विषके समान केवल एक एक इंद्रियके विषयोंसे नष्ट हो गये थे फिर पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा करनेवालोंकी तो बात ही क्या है? इसप्रकार आस्रवके दोषोंका चिंतवन करना आस्रवानुप्रेक्षा है। इसतरह

परमेव श्रेयस्त्वनुद्धिर्न प्रच्यवते। सर्वेऽप्येते आस्रवदोषाः कूर्मवत्संवृतेन्द्रियस्य न भवन्ति। इत्यास्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं।

अथ संवराऽनुप्रेक्षावर्णन विनीयते। आस्रवनिरोधः संवरः। यथा वणिङ् महार्णवे यानपात्रविवरद्वारजलास्रवपिधाने निरुपद्रवमभिलषितदेशान्तरं प्राप्नोति तथा मुनिरपि संसारार्णवे शरीरपोतस्येन्द्रियविषयद्वारकर्मजलास्रवं तपसा पिधाय मुक्तिवेलापत्तनं निर्विघ्नं प्राप्नोति। इत्येव संवरगुणाऽनुचिंतनं संवराऽनुप्रेक्षा। एवमस्य चिन्तयतः संवरे नित्योद्युक्तता भवति। इति-संवराऽनुप्रेक्षावर्णनं

चिंतवन करनेसे क्षमादि धर्म ही कल्याणकारी जान पडते हैं और फिर उनसे अपनी बुद्धि कभी नहीं हटती। ये आस्रवके सब दोष कच्छपके समान इंद्रियोंका निरोध करनेवालोंके नहीं होते हैं। इसप्रकार आस्रव अनुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे संवरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—आस्रवका रोकना ही संवर है। जिसप्रकार कोई वैश्य महासागरमें चलते हुए जहाजके छिद्रोंको या पानी आनेके मार्गको बंदकर फिर निर्विघ्न रीतिसे देशांतर पहुंचता है उसीप्रकार मुनिराज भी संसाररूपी महासागरमें पडे हुए शरीररूपी जहाजके कर्मरूपी जलके आनेके कारण ऐसे इंद्रियोंके विषयरूपी द्वारोंको तपश्चरणके द्वारा बंदकर निर्विघ्न रीतिसे मोक्षरूपी महानगरमें पहुंच जाते हैं। इसप्रकार संवरके गुणोंका चिंतवन करना संवरानुप्रेक्षा है। इसप्रकार चिंतवन करनेसे संवरमें सदा सावधानी और तत्परता रहती है। इसप्रकार संवरानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—कर्मोंका एकदेश नष्ट होना निर्जरा है। वह भी उदय और उदीरणाके भेदसे दो प्रकार की है। नरकादि गतियोंमें कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं उसको उदयसे होनेवाली निर्जरा कहते हैं और परिषहोंके जीतने वा तपश्चरण

अथ निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। कर्मैकदेशगलनं निर्जरा, सादि द्वेधा, उदयोदीरणाविकल्पात्। तत्र नरकादिषु कर्मफलविपाकोदयोद्भवा, परीषहजयादुदीरणोद्भवा। सा शुभाऽनुबंधा निरनुबंधा चेत्येवं निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जराऽनुप्रेक्षा। तस्य अनुस्मरतः कर्मनिर्जरायै वृत्तिर्भवति। इति निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं।

अथ लोकाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। जीवादिपदार्थाधिकरणं लोकः। समन्तादनंतानंतस्वात्मप्रतिष्ठाऽऽकाशसुबहुमध्यप्रदेशस्थितस्तनुवातघनानिलघनोदधिवेष्टितो लोकस्तन्मध्यगता त्रसनाडी, तन्मध्ये महामेरुस्तस्याधःस्थिता नरकप्रस्तारा: मेरुपरिवृताः शुभ-

आदिसे जो कर्म विना फल दिये हुए नष्ट हो जाते हैं, वह उदीरणासे होनेवाली निर्जरा कहलाती है। वह निर्जरा भी दो प्रकारकी है, एक वह कि जिससे शुभ कर्मोंका बंध हो और दूसरी वह जिससे किसी कर्मका बंध न हो। इसप्रकार निर्जराके गुण दोषोंका चिंतवन करना निर्जरानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे कर्मोंकी निर्जरा करनेमें प्रवृत्ति होती है। इसप्रकार निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—जो जीवादि समस्त पदार्थोंका आधार है वह लोक कहलाताहै। यह आकाश सब ओरसे अनंतानंत है और अपने ही आधार है। आकाशका अन्य कोई आधार नहीं है। उसी आकाशके अत्यंत मध्यवर्ती प्रदेशोंमें यह लोक विराजमान है। यह लोक तनुवात घनवात और घनोदधिवातसे घिरा हुआ है अर्थात् लोकके चारों ओर घनोदधिवात है उसके चारों ओर घनवात है उसके चारों ओर तनुवात है और उसके चारों ओर आकाश है। उस लोकाकाशके मध्यमें त्रसनाडी है उसके मध्यभागमें यहां मेरु पर्वत है। मेरुपर्वतके नीचे नरकोंके प्रस्तार हैं तथा मेरुके चारों ओर शुभ नामोंको धारण करनेवाले दूना दूनी चौडाईवाले कंकणके आकारके (असंख्यात) द्वीप समुद्र हैं। मेरुके ऊपर स्वर्गोंके

नामानो द्वीपसमुद्रा द्विर्द्विर्विष्कंभा वलयाकृतयो, मेरोरुपरि स्वर्गपटलानि, तेषामुपरि सिद्धक्षेत्रं । एवमधस्तिर्यगूर्ध्वभेदभिन्नस्य चतुर्दशरज्जुविस्तारदक्षिणोत्तरदिग्भागस्य वेत्रासनझल्लरीमृदंगसमानाऽऽकारस्य षट्द्रव्यनिचितस्याकृत्रिमस्यानादिनिधनस्य लोकस्य स्वभावपरिणामपरिणाहसंस्थानाऽनुचिंतनं लोकानुप्रेक्षा । एवमस्याध्यवस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति । इति लोकानुप्रेक्षावर्णनं ।

अथ बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । स्कन्धाऽण्डराऽऽवासपुलविशरीरेषु स्कंधा असंख्यातलोकमात्रा., एकैकस्मिन् स्कंधे-

पटल हैं स्वर्गपटलोंके ऊपर सिद्धक्षेत्र है। इसप्रकार इस लोकके अधोलोक तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोकके भेदसे तीन भेद होते हैं। यह समस्त लोक चोदह राजू ऊंचा है पूर्व पश्चिमकी ओर नीचे सात राजू चौडा, मध्यमें एक राजू चौडा है ऊपर जाकर फिर पांच राजू चौडा है और सबसे ऊपर जाकर एक राजू चोडा है। दक्षिण उत्तरकी ओर सर्व जगह सात राजू लंबा है। अधोलोक वेंतके आसनके समान ऊपरसे सकरी और नीचेसे चौडी तिपाईके समान है मध्यलोक झालरके समान है और ऊर्ध्व लोक मृदंग वा पखावजके समान है। इसके सिवाय यह लोक छह द्रव्योंसे भरा हुआ है अकृत्रिम है और अनादि तथा अनिधन है। इसप्रकार लोकका स्वभाव लोकका परिमाण परिधि और उसका आकार चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इसके मनन करनेसे तत्त्वज्ञानकी विशुद्धि होती हैं इसप्रकार लोकानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे बोधिदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—स्कंध, अंडर, आवास, पुलवि और शरीरों में स्कंधोंकी संख्या असंख्यात लोकमात्र है। एक एक स्कंधमें असंख्यात लोकमात्र अंडर हैं। एक एक अंडरमें असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवासमें असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं। एक एक पुलविमें असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं और एक एक निगोद

ऽसंख्याततलोकमात्रा अंडरा एकैकस्मिन्नंडर आवासा असंख्याततलोकमिता एकैकस्मिन्नावासे पुलवयोऽसंख्याततलोकप्रमाणाः, एकैकस्मिन्पुलवौ असंख्याततलोकप्रमितानि शरीराण्येकैकस्मिन्निगोदशरीरे जीवाः सर्वातीतकालसिद्धानामनंतगुणाः । उक्तं च—

एयणिओयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेहिं वितीदकालेहिं ।

इत्येवं सर्वलोको निरन्तर निचितः स्थावरैस्ततस्तत्र बालुकासमुद्रे पतितवज्रसिकताकणिकेव त्रसता दुर्लभा तत्र च विकलेंद्रियाणां प्रचुरभूयिष्ठत्वात्पंचेन्द्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या। तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभवश्चतुष्पथे रत्नराशिवद्दुरासदस्तत्प्रच्यवे पुनस्तदुपपत्तिर्दग्धतरुपुद्गलतद्भावाऽऽपत्तिवद्दुर्लभा । तल्लाभे च कुदेशानां हिताहितविचारविर-

शरीरमें समस्त अतीत कालमें होनेवाले सिद्धोसे अनंतगुणे जीव हैं। यह बात अन्य ग्रन्थोंमें भी (गोम्मटसारमें) लिखी है—एयणिओय इत्यादि ।

अर्थात् " एक निगोद शरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीवोंकी संख्या समस्त व्यतीत कालके सिद्धोंसे अनंतगुणी है " इसप्रकार यह समस्त लोक स्थावर जीवोंसे सदा भरा रहता है । जिसप्रकार वालूके समुद्रमें पडे हुए हीराके कणोंका मिलना अत्यंत कठिन है इसीप्रकार इन स्थावर जीवों मेंसे त्रसपर्याय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। त्रसपर्यायमें भी विकलेन्द्रियोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार गुणोंमें कृतज्ञता अत्यंत कठिनता से मिलती है उसीप्रकार त्रसोंमें पंचेंद्रिय होना अत्यंत कठिन है। पंचेंद्रियोंमें भी पशु हिरण पक्षी सांप आदि तिर्यंचोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार किसी चौराये पर (चौरस्ते पर) रत्नोंकी राशि मिलना कठिन है उसी प्रकार पंचेंद्रियोंमें मनुष्यभव प्राप्त होना अत्यंत कठिन है। यदि मनुष्य जन्म मिलकर नष्ट होगया तो जिसप्रकार जिसकी लकडी जड आदि सब जलादी गई हैं ऐसा वृक्ष फिरसे नहीं उग सकता उसीप्रकार मनुष्य जन्मका फिरसे मिलना अत्यंत कठिन है। कदाचित् दुवारा मनुष्य

हितानां पशुसमानमानवाकीर्णानां बहुत्वात्सुप्रदेशः पाषाणेषु मणिरिव न सुलभः । लब्धेऽपि सुदेशे पापकर्मजीवकुलाकुलत्वात्कुले जन्म वृद्धोपसेवाविहीने विनयवत्कृच्छ्रलभ्य । लोकस्य कुले हि जातिः प्रायेण शीलविनयाचारसंपत्तिकरी भवति । सत्यामपि कुलसंपदि दीर्घायुरिन्द्रियबलरूपनीरोगत्वादीनि दुर्लभानि । सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलभो यदि न स्यात् व्यर्थं जन्म वदनमिव दृष्टिविकलं । तमेवमतिदुर्लभं सद्धर्मं कथं कथमप्यवाप्य विषयसुखे रंजनं भस्मार्थे चन्दनदहनमिव निष्फलं । विरक्तविषयसुखस्य तपोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षणः समाधिर्दुर्लभस्तस्मिन्सति बोधिलाभः फलवान् भवतीति चिंतनं बोधिदुर्लभत्वाऽनुप्रेक्षा

जन्म मिल भी जाय तो जिन्हें हिताहितका कुछ विचार नहीं है और जो मनुष्यों का आकार धारण करनेवाले पशुओं के समान हैं ऐसे कुदेशों में रहनेवाले म्लेच्छों की संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार पत्थरों में मणिका मिलना सुलभ नहीं है उसीप्रकार किसी सुप्रदेशमें उत्पन्न होना भी सुलभ नहीं है। कदाचित् सुप्रदेशमें भी मनुष्य जन्म प्राप्त होजाय तो भी यह लोक प्रायः पापकर्म करनेवाले जीवों के समूहों से भरा हुआ है इसलिये जिसप्रकार वृद्धों की सेवा न करनेवालोंके विनयका प्राप्त होना कठिन है उसीप्रकार अच्छे कुलमें जन्म लेना बहुत ही कठिन है। अच्छा कुल मिलनेपर भी प्रायः जीवों की जाति ही शील विनय आचार संपदा देनेवाली होती है। यदि कदाचित् कुल संपदा आदि प्राप्त भी होजाय तो दीर्घ आयु, इंद्रिय, बल, रूप और नीरोगता आदि प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। उन समस्त संयोगके प्राप्त होने पर भी यदि सद्धर्म धारण करनेका लाभ न हो तो जिसप्रकार विना नेत्रों के मुखमंडल व्यर्थ है उसीप्रकार उसका मनुष्य जन्म लेना भी व्यर्थ ही है। यदि वही अत्यंत दुर्लभ सद्धर्म जिस तिसतरहसे प्राप्त हो जाय और फिर भी वह जीव विषय सुखमें निमग्न रहे तो जिसप्रकार केवल भस्मके लिये चंदन का जलाना व्यर्थ है उसीप्रकार उसका सद्धर्म प्राप्त होना भी निष्फल है। जो विषयसुखोंसे

एवमस्य भावयतो बोधिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति । इति बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

अथ धर्मस्वाख्याताऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । चतुर्दशगुणस्थानानां गत्यादिचतुर्दशमार्गणास्थानेषु स्वतत्त्वविचारलक्षणो धर्मः । निःश्रेयसप्राप्तिहेतुरर्हो भगवद्भिरर्हद्भिः स्वाख्यात इति चिंतनं धर्मस्वाख्याततत्त्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य चिंतयतो धर्मानुरागः सदा प्रतिपन्नो भवति । इत्येवं चिन्तनं संस्थानविचयमष्टमं धर्म्यं ।

अथाऽऽज्ञाविचयस्वरूपाद्युच्यते । आज्ञाविचयमतीन्द्रियज्ञानविषयं विज्ञातुं चतुर्षु ज्ञानेषु बुद्धिशक्त्यभावात्परलोकबंधमोक्ष-

विरक्त हो गया है उसके लिये भी तपश्चरणकी भावना, धर्मकी प्रभावना और सुखमरण अर्थात् समाधिमरण रूप समाधि वा ध्यानकी प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। इन सब सामग्रियों के मिल जाने परभी रत्नत्रयका प्राप्त होजाना ही सफल गिना जाता है। इसप्रकार चिंतवन करना बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इसके चिंतवन करनेसे रत्नत्रयको पाकर फिर कभी प्रमाद नहीं होता है। इसप्रकार बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं–गति आदि चौदह मार्गणा स्थानों में चौदह गुणस्थानों के आत्मतत्त्वका विचार करना धर्म है। मोक्षकी प्राप्तिका उपाय भगवान अर-हंत देवने ही बतलाया है इसप्रकार चिंतवन करना धर्मस्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे धर्मानुराग सदा बढता रहता है इसप्रकार बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन करना संस्थानविचय नामका आठवां धर्म्यध्यान है।

अब आगे आज्ञाविचयका स्वरूप कहते हैं—जो पदार्थ अतींद्रिय ज्ञानके गोचर हैं जिनमें बुद्धिकी शक्ति काम नहीं देती ऐसे परलोक, बंध, मोक्ष, लोक, अलोक बुद्धिको प्राप्त हुए सत् असत् विवेकका प्रभाव, धर्म अधर्म कालद्रव्य आदि पदार्थोंमें तथा चारों ज्ञानोंमें " संसारमें

ला ा ा न र म द्रि हृ नि प्रमान र्मा वि र्ग कालद्रव्यादिपदार्थेषु सर्वज्ञप्रामाण्यात्तत्प्रणीताऽऽगमकथितमवितथं नान्यथेति सम्यग्दर्शनस्व-भावः आज्ञाविचयचिंतनं नवमं धर्म्यं ।

अथ हेतुविचयस्वरूपमुच्यते । हेतुविचयमागमविप्रतिपत्तौ नयविशेषगुणप्रधानभावोपनयदुर्धर्षस्याद्वादप्रतिक्रियाऽवलंबिनस्तर्कानुसारिरुचः पुरुषस्य स्वसमयगुणपरसमयदोषविशेषपरिच्छेदेन यत्र गुणप्रकर्षस्तत्राऽभिनिवेशः श्रेयानिति स्याद्वादतीर्थकरप्रवचने पूर्वापराविरोधहेतुग्रहणसामर्थ्येन समवस्थानगुणानुचिंतनं हेतुविचयं दशमं धर्म्यं ।

सर्वज्ञ प्रमाण है और उनकी प्रमाणतासे उनके वचनोंके अनुसार कहे हुए आगममें जो कुछ उनका स्वरूप कहा गया है वह सब सत्य है वह कभी अन्यथारूप नहीं हो सकता " इसप्रकार सम्यग्दर्शनका स्वभाव होनेसे वास्तविक तत्त्वका चिंतवन करना आज्ञाविचय नामका नौवां धर्म्यध्यान है ।

आगे हेतुविचयका स्वरूप कहते हैं । आगममें किसी तरहका विरोध आनेपर जो पुरुष विशेष विशेष नयोंकी मुख्यता और गौणतासे प्राप्त हुए अत्यंत कठिन स्याद्वादके द्वारा उस विरोधका प्रतीकार करता है तथा न्यायानुसार हो जिसकी रुचि है ऐसा पुरुष अपने मतके विशेष गुण और परमतके विशेष दोषोंको अच्छी तरह समझकर जहां गुणोंकी अधिकता हो वहीं श्रद्धान करना उसीको मानना कल्याणकारी है इसप्रकार तीर्थंकरके कहे हुए स्याद्वाद स्वरूप आगममें पूर्वापर अविरोधरूप हेतुओंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्यसे उसमें रहनेवाले गुणोंका वार बार चिंतवन करना हेतुविचय नामका दशवां धर्म्यध्यान है ।

ये सब तरहके धर्म्यध्यान पीत पद्म और शुक्ललेश्याके बलसे होते हैं चौथे गुणस्थानसे लेकर सराग गुणस्थानतक होते हैं । द्रव्य भावरूप सातों प्रकृतियोंके (मिथ्यात्व, सम्यक्मि-

सवमेतद् धर्मध्यानं पीतपद्मशुक्ललेश्याबलाधानमविरतादिसरागगुणस्थानभूमिकं द्रव्यभावात्मकसप्तप्रकृतिक्षयकारणं । आ अप्रमत्तादन्तर्मुहूर्त्तकालपरिवर्त्तनं परोक्षज्ञानत्वात् क्षायोपशमिकभावं स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्त्तनीयं । शेषैकविंशतिद्रव्यभावलक्षण-मोहनीयोपशमक्षयनिमित्तमिति ।

शुक्लध्यानं द्विविधं, शुक्लं, परमशुक्लमिति । शुक्लं द्विविधं पृथक्त्ववितर्कवीचारमेकत्ववितर्कावीचारमिति । परमशुक्लं द्विविधं, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिसमुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिभेदात् । तल्लक्षणं द्विविधं, बाह्यमाध्यात्मिकमिति । गात्रनेत्रपरिस्पन्दविरहितं जृंभजृंभोद्गारादिवर्जितमनभिव्यक्तप्राणापानप्रचारत्वमुच्छिन्नप्राणापानप्रचारत्वमपराजितत्वं बाह्यं, तदनुमेयं परेषामात्मनः स्वसंवेद्य-

थ्यात्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ) क्षय होनेके कारण हैं सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक होते हैं और अन्तर्मुहूर्ततक ही होते हैं,फिर वदल जाते हैं, परोक्षज्ञानके गोचर होनेसे क्षायोपशमिक भी हैं, स्वर्गमोक्षरूप फल देनेवाले हैं और वाकीकी मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतियोंके क्षय होनेके निमित्त कारण हैं ।

शुक्लध्यानके दो भेद हैं एक शुक्ल और दूसरा परमशुक्ल । उसमें भी शुक्लध्यान भी दो प्रकारका है एक पृथक्त्ववितर्कवीचार और दूसरा एकत्वावितर्कावीचार । परमशुक्ल भी दो प्रकारका है—एक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और दूसरा समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति । इस समस्त शुक्लध्यनका लक्षण भी दो प्रकारका है—एक बाह्य और दूसरा आध्यात्मिक । शरीर और नेत्रों को परिस्पंद रहित रखना, जंभाई जंभा उद्गार आदि नही होना, प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार नष्ट हो जाना और किसीके भी द्वारा जीता न जाना वाह्य शुक्लध्यान है । यह बाह्य शुक्लध्यान अन्य लोगोंको अनुमानसे जाना जा सकता है तथा जो केवल आत्माको स्वसंवेद्य हो वह आध्यात्मिक शुक्लध्यान कहा जाता है । नानात्व अथवा अनेकपनेको पृथक्त्व कहते हैं । द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं । अर्थ, व्यंजन

माध्यात्मिकं तदुच्यते । पृथक्त्वं नानात्वं, वितर्को द्वादशांगश्रुतज्ञान, वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः, व्यंजनमभिधानं, तद्विषयोऽर्थः, मनोवाक्कायलक्षणो योगः, अन्योऽन्यतः परिवर्त्तनं संक्रांतिः । पृथक्त्वेन वितर्कस्यार्थव्यंजनयोगेषु संक्रांतिवीचारो यस्मिन्नस्तीति तत्पृथक्त्ववितर्कवीचारं प्रथमं शुक्लं । तद्यथा—अनादिसंभूतदीर्घसंसारस्थितिसागरे पारं जिगमिषुर्मुमुक्षुः स्वभावविजृंभितपुरुषाकारसामर्थ्याद् द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वैकमवलम्ब्य संहृताऽशेषचिंताविक्षेपो महासंवरसंवृतः कर्मप्रकृतीनां स्थित्यनुभागौ ह्रासयन्नुपशमयन् क्षपयंश्च परमबहुकर्मनिर्जरा स्त्रिषु योगेष्वन्यतमस्मिन्वर्त्तमान एकस्य द्रव्यस्य गुणं वा पर्यायं वा बहुनयगहननिलीन श्रुतरविकिरणोद्योतबलेनान्तर्मुहूर्तकालं ध्यायति, ततः परमर्थान्तरं संक्रामत्यथ वास्यैवार्थस्य गुणं वा पर्यायं वा संक्रामति

और योगों की संक्रांतिको वीचार कहते हैं। किसी पदार्थके नामको व्यंजन कहते हैं और उस व्यंजनके विषयभूत पदार्थका अर्थ कहते हैं। मन वचन कायके द्वारा आत्माके प्रदेशोंके परिस्पंदनको योग कहते हैं। एकसे दूसरेमें बदल जाना संक्रांति है। जिस ध्यानमें द्वादशांग श्रुतज्ञान अर्थ व्यंजन योगोंमें अनेक तरहसे संक्रमण करता है उसको पृथक्त्ववितर्कवीचार नामका प्रथम शुक्लध्यान कहते हैं। आगे इसीका खुलासा लिखते हैं। जब यह अनादि कालसे चले आये दीर्घ संसारकी स्थितिरूप महासागर के पार जानेकी इच्छा करनेवाला मोक्षार्थी जीव स्वभावसे प्राप्त हुए पुरुषाकारकी सामर्थ्यसे द्रव्य परमाणु अथवा भाव परमाणुमेंसे किसी एकका अवलंबनकर (उसका चिंतवनकर) बाकीके समस्त चिंतवनोंको रोक लेता है तथा उसीसमय महासंवर करता है कर्मोंकी प्रकृतियोंको स्थिति और अनुभागको घटाता है अथवा उन कर्म प्रकृतियोंका उपशम और क्षय करता है बहुतसे कर्मोंकी परम निर्जरा करता है मन वचन काय तीनोंमेंसे किसी एक योगमें स्थित रहता है और श्रुतज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके प्रकाशकी सामर्थ्यसे अंतर्मुहूर्ततक अनेक नयोंकी गहनतामें डूबे हुए किसी

पूर्वयोगाद्योगान्तरं व्यंजनाद्व्यजनान्तरं संक्रामति इति अर्थार्थान्तरगुणगुणान्तरपर्यायपर्यायान्तरेषु योगत्रयं संक्रमणेन तस्यैव ध्यानस्य द्वाचत्वारिंशद्भंगा भवन्ति। तद्यथा—षण्णां जीवादिपदार्थानां क्रमेण ज्ञानवर्णगतिस्थितिवर्त्तनाऽवगाहनादयो गुणास्तेषां विकल्पाः पर्यायाः। अर्थादन्यो गुणान्तरं पर्यायादन्यः पर्यायान्तरं। एवमर्थार्थान्तरगुणगुणांतरपर्यायपर्यायान्तरेषु षट्सु योगत्रयसंक्रमादष्टादश भंगाः। अर्थाद् गुणगुणांतरपर्यायपर्यायान्तरेषु चतुर्षु योगत्रयसंक्रमणेन द्वादश भंगा भवन्ति। एवमर्थान्तरस्यापि द्वादशभंगा भवन्ति। सर्वे संपिंडिता द्वाचत्वारिंशद्भंगाः, एवंविधं प्रथमशुक्लध्यानमुपशांतकषायेऽस्ति, क्षीणकषायस्यादावस्ति। तत्र शुक्लतर-

एक द्रव्यके गुण वा उसके पर्यायका ध्यान करता है। उसके बाद उस पदार्थसे बदलकर किसी दूसरे पदार्थका चिंतवन करता है अथवा उसी पदार्थके गुण वा पर्यायका संक्रमण करता है। पहिलेके योगसे किसी दूसरे योगपर संक्रमण करता है और एक व्यंजनसे दूसरे व्यंजनपर संक्रमण करता है। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर एक गुणसे दूसरे गुणपर और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर तीनों योगोंके द्वारा संक्रमण करनेसे इस प्रथम ध्यानके व्यालीस भेद हो जाते हैं। वे व्यालीस भेद इसप्रकार हैं—संसारमें जीवादिक छह द्रव्य हैं। ज्ञान, वर्ण, गतिसहकार, स्थितिसहकार, वर्तना और अवगाहन ये अनुक्रमसे उन द्रव्योंके गुण हैं तथा उनके भेदोंको पर्याय कहते हैं। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर संक्रमण करनेको अर्थान्तर कहते हैं। एक गुणसे दूसरे गुणपर संक्रमण करनेको गुणांतर कहते हैं और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर संक्रमण करनेको पर्यायांतर कहते हैं इसप्रकार अर्थ अर्थांतर गुण गुणांतर और पर्याय पर्यायांतर इन छहोंमें तीनों योगों के संक्रमणके द्वारा अठारह भेद होते हैं। इसीतरह अर्थसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं। तथा अर्थांतरसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं।

लेश्यावलाधानमंतर्मुहूर्तकालपरिवर्त्तनं क्षायोपशमिकभावमुपात्तार्थव्यंजनयोगसंक्रमणं चतुर्दशदशनवपूर्वधरयतिवृषभनिषेव्यमुपशांतक्षीणकषायभेदात् स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्त्तनीयमिति ।

द्वितीयशुक्लध्यानमुच्यते । एकस्य भाव एकत्वं, वितर्को द्वादशांगं, अवीचारोऽसंक्रांतिः । एकत्वेन वितर्कस्य श्रुतस्यार्थव्यंजनयोगानामवीचारोऽसक्रांतिर्यस्मिन्ध्याने तदेकत्ववितर्कावीचारं ध्यान । एकयोगेनार्थगुणपर्यायेष्वन्यतमस्मिन्नवस्थानं । द्रव्यभावात्मकज्ञानदर्शनावरणान्तरायघातिकर्मत्रयवेदनीयप्रभृत्यघातिकर्मसु केषांचिद्भावकर्मविनाशनसमर्थमुत्तमतपोऽतिशयरूप पूर्वोक्तक्षीणक-

इसप्रकार सब मिलकर व्यालीस भेद होते हैं। इसप्रकारका यह प्रथम शुक्लध्यान उपशांत कषायमें रहता है और क्षीण कषायके प्रारम्भमें रहता है। यह ध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है और अन्तर्मुहूर्तकालके बाद बदल जाता है। यह क्षायोपशमिक भाव है, प्राप्त हुए अर्थव्यंजन योगोंके संक्रमणपूर्वक होता है चौदह पूर्व वा नौ पूर्व धारण करनेवाले उत्तम मुनियोंके द्वारा सेवन (धारण) करने योग्य है और उपशांतकषाय तथा क्षीणकषायके भेदसे स्वर्ग और मोक्ष फलको देनेवाला है ।

आगे दूसरे शुक्लध्यानको कहते हैं। एकके भावको एकत्व कहते हैं। द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। संक्रमण न करनेको अवीचार कहते हैं। जिस ध्यानमें श्रुतज्ञानके अर्थ व्यंजन योगोंका एकरूपसे ही ध्यान किया जाय, किसी तरहसे अर्थ व्यंजन योगोंका संक्रमण न हो, उसको एकत्व वितर्कावीचार नामका दूसरा शुक्ल ध्यान कहते हैं। यह ध्यान किसी एक योगसे अर्थ गुण पर्यायोंमेंसे किसी एकके चिंतवनमें स्थित रहता है, पहिलेके समान समस्त पूर्वोंको धारण करनेवाले उत्तम यतियोंके द्वारा धारण किया जाता है। इस ध्यानमें द्रव्यभाव स्वरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय इन तीनों घातिया कर्मोंमेंसे तथा वेदनीय आदि

पायावशिष्टकालभूमिकमशेषार्थव्यंजनयोगसंक्रमणविषयचिन्ताविक्षेपरहितं असंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणं भवति। एवंविधे द्वितीय-शुक्लध्याने घातित्रयविनाशनानन्तरं क्षायिकज्ञानदर्शनसम्यक्त्वचारित्रदानलाभभोगोपभोगवीर्यातिशयशक्तिगभस्तिप्रज्वलितजिनभास्करोदयो व्यतिक्रान्तछद्मस्थज्ञानदर्शनशरीरभाषान्तःकरणप्रक्रांतः संजायते। स खलु केवलिजिनकुंजरो भगवांस्तीर्थंकर इतरो वा कृतकृत्यः सिद्धसाध्यो बुद्धबोध्योऽत्यंताऽपुनर्भवलक्ष्मीपरिष्वक्तात्माचिन्त्यज्ञानवैराग्यैश्वर्यमाहात्म्यः सर्वलोकेश्वराणामभिगमनीयोऽभिवन्द्यश्चोत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिकालं विहरति सयोगिभट्टारकः स यदांतर्मुहूर्तशेषायुष्कः समस्तितवेद्यनामगोत्रश्च भवति तदा बादरकाययोगे स्थित्वा क्रमेण बादरमनोवचनोच्छ्वासनिःश्वास बादरकाययोगं च निरुद्ध्य ततः सूक्ष्मकाययोगे स्थित्वा क्रमेण सूक्ष्म-

अघातिया कर्मोंमेंसे कितने ही भावकर्मोंके नाश करनेको सामर्थ्य है। यह उत्तम तपश्चरणका अतिशय स्वरूप है। पहिले कहे हुए क्षीणकषायके समयसे बाकी बचे हुए समयमें यह दूसरा शुक्लध्यान होता है। अर्थ व्यंजन योगोंके संक्रमणमें होनेवाली समस्त चिंताओं के (चिंतवनके) विस्तारसे रहित है। तथा कर्मोंको असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करनेवाला है। इस प्रकारके दूसरे शुक्लध्यानमें तीनों घातिया कर्मोंके नाश होनेके बाद क्षायिक ज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिकवीर्यकी अतिशयशक्तिरूप किरणोंके द्वारा केवली भगवान जिनेंद्रदेव रूपी सूर्यके उदयका प्रकाश होता है तथा छद्मस्थ ज्ञान दर्शन शरीर भाषा और अन्तः करणका नाश हो जाता है। उस समय वे जिनेंद्रदेव केवली भगवान तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली कृतकृत्य (समस्त पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाले) सिद्धसाध्य (समस्त साध्योंको सिद्ध करने-वाले) और बुद्धबोध्य (समस्त जानने योग्य पदार्थोंके जानकार वा सर्वज्ञ) होजाते हैं जिसमें जन्म मरणका अत्यंत अभाव है ऐसी मोक्षरूपी लक्ष्मीमें उनका आत्मा तल्लीन होजाता है,

मनोवचनोच्छ्वासनिश्वासं निरुद्ध्य सूक्ष्मकाययोगः स्यात्तस्यैव सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानं भवति । तच्छुक्लं सामान्येन तृतीयं परमशुक्लाऽपेक्षया प्रथमं यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तदधिकस्थितिकर्मत्रयः सयोगिजिनस्तदात्मोपयोगातिशयः कर्मारातिशातनसमर्थः सामायिकखड्गसहायो विशिष्टक्रियो महासंवरसंवृतो लघुकर्मपरिपातनश्च भूत्वा शेषकर्मरेणुपरिशातनशक्तिस्वभावात्समयैकदंडके चतुः समये दंडकपाटलोकप्रतरपूरणाभिः स्वात्मप्रदेशविसर्पणे जाते तावद्भिरेव समयैरुपसंहृतविसर्पण आयुष्यसमीकृताऽघा-

ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्यका माहात्म्य प्रगट हो जाता है। वे लोकके समस्त इन्द्रोंके द्वारा पूज्य बंदनीय और दर्शनीय हो जाते हैं और ऐसी अवस्थामें अधिकसे अधिक कुछकम एक करोड पूर्वतक विहार करते रहते हैं। उन सयोग केवली परम भट्टारक भगवान जिनेंद्रदेवकी आयु जब अन्तर्मुहूर्तको रह जाती है तथा वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति आयुके बराबर ही होती है तब वे बादरकाय योगमें विराजमान रहते हैं फिर वे अनुक्रमसे बादर मन वचन श्वासोच्छ्वास और बादर काय योगका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगमें विराजमान रहते हैं उसी समय वे अनुक्रमसे सूक्ष्म मन वचन और श्वासोच्छ्वासका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगको धारण करते हैं उसीसमय उनके सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामका शुक्लध्यान होता है। यह ध्यान सामान्य शुक्लध्यान की अपेक्षा तीसरा है और परम शुक्लध्यानकी अपेक्षा पहिला है। परन्तु जब उनका आयु अन्तर्मुहूर्त ही रह जाता है और वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति अधिक होती है तब वे केवलिसमुद्घात करते हैं। उस समय उन सयोगी भगवानके आत्मोपयोगका अतिशय प्राप्त होता है, कर्मरूपी शत्रुओंको क्षीणकरनेमें वे समर्थ होते हैं, सामायिकरूपी तलवार ही उनको सहायक होती है और वे उस समय एक विशेष क्रिया करते हैं। उस समय उनके महा संवर होता है छोटे छोटे कर्मोंको नाश कर डालते हैं और बाकीके

तित्रपस्थितिनिर्वर्तितसमुद्घातक्रियः पूर्वशरीरपरिमाणो भूत्वांऽतमुहूर्तेन पूर्ववत्क्रमेण योगनिरोधं विधाय प्रथमपरमशुक्लध्यानं निष्ठापयन् ततः समये द्वितीयपरमशुक्लध्यानं प्रारब्धुमर्हति ।

तत्पुनरत्यंतपरमशुक्लं समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगप्रदेशपरिस्पंदक्रियाव्यापारतया समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तीत्युच्यते । तत्र ध्याने सर्वास्रवनिरोधे सति सर्वशेषकर्मपरिशातनसामर्थ्योत्पत्तिमतोऽयोगिकेवलिनः संपूर्णशीलगुणं सर्वसंसारदुःखज्वा-

कर्मपरमाणुओंको क्षीण करनेकी स्वाभाविक शक्ति उनमें हो जाती है। उस समय उनके आत्माके प्रदेश पहिले समयमें दंड रूप, दूसरे समयमें कपाटरूप, तीसरे समयमें लोकप्रतररूप और चौथे समयमें लोकपूरण रूप हो जाते हैं इसतरह उनके आत्माके प्रदेश फैल जानेपर फिर उतनेही समयमें उपसंहार रूप हो जाते हैं अर्थात् पांचवें समयमें लोकप्रतररूप, छठे समयमें कपाटरूप, सातवें समयमें दंडरूप और आठवें समयमें शरीर प्रमाण हो जाते हैं।

प्रदेशोंके इन उपसंहार विस्तारमें तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान कर लेते हैं। इसप्रकार समुद्घात क्रियाको पूर्णकर अपने पहिले शरीरके परिमाणके बराबर होकर अन्तर्मुहूर्तमें ही पहिलेके समान योगोंका निरोध करते हैं तथा इसतरह प्रथम परमशुक्लध्यानको पूर्णकर उसीसमयमें दूसरे परमशुक्लध्यानका प्रारंभ करते हैं। इस दूसरे परम शुक्लध्यानमें प्राणापानका प्रचार (श्वासोच्छ्वासका चलना) समस्त मन वचन कायके योग और प्रदेशों का परिस्पंदन आदि क्रियाओंके व्यापार सब नष्ट हो जाते हैं इसीलिये इसको समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति कहते हैं। इस ध्यानमें समस्त आस्रवोंका निरोध हो जाता है और बाकीके समस्त कर्मोंको नाश करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है। ऐसे उन अयोगकेवलीके समस्त संसारके दुःखोंकी ज्वालाके स्पर्श तकको नाश करनेवाले और साक्षात् मोक्षके कारण ऐसे

नापरिणामस्तदेदजनः। सा तास्मोक्षकारणं भवति। स पुनरयोगकेवलिभगवान्स्वः ध्यानानलेन निर्दग्धकर्ममलकलंकेन्धनो निरस्तकि-ट्टपाषाणजातकनकवदात्मस्वभावस्तदनंतरं पूर्वप्रयोगादाविद्धकुलालचक्रवदसंगत्वादपगतलेपालाबुवत्तथा बंधच्छेदादेरंडबीजवत्स-भावतिपरिणामादग्निशिखावदूर्ध्वं गच्छतीत्यालोकांताद्गत्युपग्रहकारणभूतधर्मास्तिकायाऽऽभावादलोकं न गच्छति। एवमुक्तधर्म्य-शुक्लयोः सिद्धांतसद्भावविषयसामान्ययोर्विषय प्रत्य भेदः, अयं तु विशेषः—धर्म्यध्यानं सकषायपरिणामस्यैकस्मिन्वस्तुनि चिरकालं न तिष्ठति रथ्याऽवस्थितप्रदीपवत्। शुक्लध्यानं पुनर्वीतरागपरिणामस्यैकस्मिन वस्तुनि धर्मध्यानावस्थानकालात्संख्येयगुणमचंचलत्वा-दवतिष्ठते मणिप्रदीपवत्।

समस्त शील और गुण प्रगट हो जाते हैं। फिर उसीसमय व अयोगकेवली भगवान् ध्यान–रूप अग्निके द्वारा समस्त कर्ममलकलंकरूपी इंधनको जला डालते हैं और फिर उनके आ-त्माका स्वभाव, जिस कनकपाषाणमेसे किट्ट कालिमा आदि सब दोषनष्ट हो गये हैं ऐसे स्वच्छ सुवर्णके समान, निर्मल हो जाता है उसके बाद वे फिराये हुए कुम्हारके चाकके समान मोक्षके लिये पहिलेका प्रयोग होनेसे, जिसका मिट्टीका सब लेप उतर गया है ऐसी तूंबीके समान बंध रहित होनेसे, रेंडीके बीजके समान बंधन टूट जानेसे और अग्निकी शिखाके समान ऊपरकी ओर गमन करनेका स्वभाव होनेसे, ऊपरको गमन करते हैं और लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं। गमन करनेमें धर्मद्रव्य सहायक है और वह लोकाकाशके आगे, है नहीं इसलिये वे अलोकाकाशमें नहीं जाते। इसप्रकार ऊपर कहे हुए धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान का विषय सिद्धांतके अनुसार साधारण है इसलिये विषयकी अपेक्षासे तो इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है यदि इन दोनोंमें कोई विशेषता है तो यह है कि धर्म्यध्यान सकषाय परिणामवा–लोंके होता है और इसीलिये गलीमें रक्खे हुए दीपकके समान वह बहुत देरतक किसीएक पदार्थके चिंतवनमें नहीं ठहर सकता, चंचल रहता है तथा शुक्लध्यान वीतराग परिणामवा-

एवमुक्तं द्वादशविधं तपः सर्वार्थसाधनं, तत एव हि ऋद्धयः संजायते। ताऋद्धयो बुद्धिक्रियाविक्रियातपोबलौषधरसक्षेत्रभेदादष्टविधाः। तत्र बुद्धिमहर्द्धिनाम—बुद्धिरवगमो तद्विषया बुद्धिऋद्धिरष्टादशविधा, केवलमवधिर्मनःपर्ययज्ञानं बीजबुद्धिः कोष्ठबुद्धिः पादानुसारित्वं संभिन्नश्रोतृत्वं दूराऽऽस्वादनस्पर्शनघ्राणदर्शनश्रवणसमर्थता दशपूर्वित्वं चतुर्दशपूर्वित्वं चाष्टांगमहानिमित्तज्ञता प्रज्ञाश्रवणत्व प्रत्येकबुद्धिता वादित्वं चेति तत्र द्रव्यक्षेत्रकालभावकरणक्रमव्यवधानाऽभावे युगपदेकस्मिन्नेव समये त्रिकालवर्तिसर्वद्रव्यगुणपर्यायपदार्थावभासकं केवलज्ञानं। द्रव्यक्षेत्रकालभावैः प्रत्येकं विज्ञायमानदेशपरमसर्वभेदभिन्नमवधिज्ञानाऽऽवरणक्षयोपशमनिमित्त

लेके होता है और धर्म्यध्यानकी स्थितिके समयसे संख्यातगुणा निश्चल ठहरता है इसलिये मणिके दीपकके समान वह एक ही पदार्थमें अर्थात् एक ही पदार्थके चिंतवनमें ठहर जाता है।

इसप्रकार समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला यह वारह प्रकारका तपश्चरण कहा। इसी तपश्चरणसे अनेक ऋद्धियां प्रगट होती हैं। वे ऋद्धियां बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्रके भेदसे आठ प्रकारकी हैं। बुद्धि ज्ञानको कहते हैं इसलिये ज्ञानविषयक ऋद्धियोंको बुद्धिमहर्द्धि कहते हैं। उस बुद्धि ऋद्धिके नीचे लिखे अठारह भेद हैं। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरास्वादनसामर्थ्य, दूरस्पर्शनसामर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य, दूरश्रवणसामर्थ्य, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगमहानिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रवणत्व, प्रत्येकबुद्धिता और वादित्व। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव तथा इंद्रियोंके क्रम और व्यवधानके विना एक साथ एक ही समयमें भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंके समस्त द्रव्य गुण पर्यायरूप पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान कहलाता है। जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, रूपी पदार्थ ही जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसके प्रत्येक भेदकी सीमा नियत है

रूपिद्रव्यविषयमवधिज्ञानं। द्रव्यादिभेदैः प्रत्येकमवगम्यमानजुं विपुलमतिविकल्पं मनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमकारणं रूपिद्रव्यानंतभागविषयं मनःपर्ययज्ञानं। सुकृष्टसुमतीकृते क्षेत्रे सारवति कालादिसहायापेक्षं बीजमेकमुप्तं यथाऽनेककोटिबीजप्रदं भवति तथा नोइन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति संख्येयशब्दस्यानंतार्थप्रतिवद्धस्यानंतलिंगैः सहैकपदस्य ग्रहणादनेकार्थप्रतिपत्तिर्बीजबुद्धिः। कोष्ठाऽगारिकस्थापितानामसंकीर्णानामविनष्टानां भूयसां धान्यबीजानां यथा कोष्ठावस्थानं तथा परोपदेशादवधारितानामर्थग्रन्थबीजानां भूयसामव्यतिकीर्णानां बुद्धयवस्थानं कोष्ठबुद्धिः। पादानुसारित्वं त्रेधा प्रतिसार्यनुसार्युभयसारिभेदात्। तत्र बीजपदादधः स्थितान्येव पदानि बीजपदस्थितिलिंगेन जानाति प्रतिसारि,उपरिस्थितान्येव जानात्यनुसारि, उभयपार्श्वे स्थितानि पदानि नियमेना-

ऐसा देशावधि परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका अवधिज्ञान है। मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशम होनेसे उत्पन्न होता है रूपी द्रव्यके अनंतवे भाग जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसका प्रत्येक भेद जाना जाता है ऐसा ऋजुमति और विपुल मतिके भेदसे दो प्रकारका मनःपर्ययज्ञान है। जिसप्रकार किसी उपजाऊ भूमिके अच्छे जोते हुए खेतमें अच्छे समयपर बोया हुआ एकही बीज अनेक करोड बीजोंको उत्पन्न कर देता है उसीप्रकार नोइन्द्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर किसी एकही पदका ग्रहण कर लेनेसे अनंत लिंगोंके साथ साथ अनंत अर्थोंसे भरे हुए संख्यात शब्दोंके अनेक अर्थोंका ज्ञान होजाता है आत्माकी ऐसी शक्तिको बीजबुद्धि नाम की ऋद्धि कहते हैं। जिसप्रकार किसी कोठेमें भरे हुए नाश न होनेवाले भिन्न भिन्न बहुतसे धानोंके बीजोंका समूह उस कोठेमें भरा रहता है उसीप्रकार दूसरोंके उपदेशसे धारण किये हुए भिन्न भिन्न बहुतसे अर्थ ग्रन्थ और बीजोंके समूह बुद्धिरूपी कोठामें भरे रहते हैं। आत्मा की ऐसी शक्तिको कोष्ठबुद्धि कहते हैं।

नियमेन वा जानात्युभयसारि । एवमेकस्य पदस्यार्थं परत उपश्रुत्यादावंते मध्ये वाऽशेषग्रन्थार्थावधारणं पदानुसारित्वं । द्वादशयोजनाऽऽयामे नवयोजनविस्तारे चक्रधरस्कंधावारे गजवाजिखरोष्ट्रमनुष्यादीनामक्षरानक्षररूपाणां नानाविधकरंबितशब्दानां युगपदुत्पन्नानां तपोविशेषबललाभाऽऽपादितसर्वजीवप्रवेशप्रकृष्टश्रोत्रेन्द्रियपरिणामात्सर्वेषामेककाले ग्रहणं तत्प्रतिपादनसमर्थत्वं च संभिन्नश्रोतृत्वं । तपःशक्तिविशेषाऽऽविर्भाविताऽसाधारणरसनेन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभापेक्षस्यावधृतनवयोजनक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टक्षेत्रादायातस्य रसास्वादनसामर्थ्यं दूरास्वादनमेवं शेषेष्वपीन्द्रियविशेषेष्ववधृतक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टदेशादायातेषु

पादानुसारित्वके तीन भेद हैं—प्रतिसारी, अनुसारी और उभयसारी । बीजोंके पदोंमें रहने-वाले चिन्होंके द्वारा उस बीजपदके नीचे नीचेके पदोंको जान लेना प्रतिसारी है । ऊपर ऊपरके पदोंको जान लेना अनुसारी है । तथा दोनों ओर रहनेवाले पदोंको नियमित अथवा अनियमित रीतिसे जान लेना उभयसारी है । इसप्रकार दूसरेसे किसी एक पदके अर्थको सुनकर उस ग्रंथके आदि अंत मध्यका अर्थ धारण कर लेना अथवा समस्त ग्रन्थका अर्थ धारण कर लेना पदानुसारित्व नामकी ऋद्धि है । बारह योजन लम्बे नौ योजन चोडे चक्रवर्तीकी सेना ठहरनेके स्थानमें हाथी, घोडे, गधे, ऊंट, और मनुष्य आदिकोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक ऐसे अनेक तरहके मिले हुए शब्द एक साथ उत्पन्न होते हैं उन सबको जो विशेष तपश्चरणका बल प्राप्त होनेसे समस्त जीवोंके प्रदेशोंमें उत्कृष्ट श्रोत्रेंद्रियका परिणाम प्राप्त होता है उससे एकही कालमें ग्रहण कर लेना तथा उन सबको प्रतिपादन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होजाना संभिन्नश्रोतृत्व नामकी ऋद्धि है । तपश्चरणकी विशेष शक्ति उत्पन्न होनेके कारण जिन्हें रसनेंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतरायका असाधारण क्षयोपशम प्राप्त हुआ है तथा अंगोपांग नाम कर्मका लाभ प्राप्त हुआ है ऐसे मुनिराजके रसनेन्द्रियका विषय जो नौ योजन क्षेत्रतक

गहागमाग पें यो न । रोहिण्यादिपंचशतमहाविद्यादेवताभिरनुगतांगुष्ठप्रसेनादिसप्तशतक्षुल्लकविद्यादेवताभिस्ताभिरागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूपसामर्थ्याविष्करणकथनकुशलाभिर्वेगवतीभिरचलितचारित्रस्य दशपूर्वदुस्तरसमुद्रोत्तारण दशपूर्वित्वं श्रुतकेवलिनां चतुर्दशपूर्वित्वं । अष्टौ महानिमित्तान्यांतरिक्षभौमांगस्वरव्यंजनलक्षणच्छिन्नस्वप्ननामानि । तत्र रविशशिग्रहनक्षत्रताराभगणोदयास्तमयादिभिरतीतानागतफलप्रतिभागप्रदर्शनमांतरिक्षं । भुवो घनसुषिरस्निग्धरूक्षादिविभावनेन पूर्वादिदिक्सूत्रविन्यासेन वा वृद्धिहानिजयपराजयादिविज्ञानं भूमेरंतर्निहितसुवर्णरजतादिसंसूचनं च भौमं तिर्यग्मनुष्याणां सत्त्वस्वभाववातादिप्रकृतिरसरुधिरादिधातुशरीरवर्णांग-

निश्चित है उसके बाहर अनेक योजनकी दूरीवाले क्षेत्रसे आये हुए रसके आस्वादन करनेका सामर्थ्य उत्पन्न होना दूरास्वादन सामर्थ्य नामकी ऋद्धि है। इसीप्रकार स्पर्शनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय नेत्रेन्द्रिय और-श्रोत्रेन्द्रियका विषय जितने दूर क्षेत्र तक नियत है उससे बाहर बहुतसे योजन दूर देशसे आये हुए स्पर्श गंध रूप और शब्दोंको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होना अनुक्रमसे दूरस्पर्शनसामर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य और दूर श्रवण सामर्थ्य नामकी ऋद्धियां हैं।

इस संसारमें रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं और अनुगत अंगुष्ठ प्रदेशन आदि सातसौ क्षुल्लक विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं। ये सब देवता अपने रूपकी सामर्थ्य प्रगट करने और कथन करनेमें अत्यंत कुशल हैं तथा उनका वेग अत्यंत तीव्र है ऐसी देवताओंके आनेपर भी जिनका चारित्र विचलित नहीं होता ऐसे मुनिराजके दशपूर्व रूपी अथाह समुद्रको पार करदेनेवाली (दश पूर्वका ज्ञान उत्पन्न करानेवाली) दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि है। इसी प्रकार श्रुतकेवलीके चतुर्दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि होती है। आगे अष्टांग महानिमित्त ऋद्धिको कहते हैं। आंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण,

न्धनिम्नोन्नतागप्रत्यंगदर्शनस्पर्शनादिभिस्त्रिकालभाविसुखदुःखादिविभावनमंग । नरनारीखरपिंगलोलूककपिवायसशिवाशृगालादीनामक्षराऽनक्षरात्मकशुभाशुभशब्दश्रवणेनेष्टानिष्टफलाविर्भावकः स्वरः शिरोमुखग्रीवादिषु तिलकमशकलक्ष्मव्रणादिवीक्षणेन त्रिकालहिताहितवेदनं व्यजनं । पाणिपादनलवक्षःस्थलादिषु श्रीवृक्षस्वस्तिकभृंगारककलशकुलिशादिलक्षणवीक्षणात् त्रैकालिकस्थानमानैश्वर्यादिविशेषणं लक्षणं वस्त्रशस्त्रोपानहासनशयनादिषु देवमानुषराक्षसकृतविभागेः शस्त्रकंटकमूषिकादिकृतच्छेददर्शनात् कालत्रयविषयलाभालाभसुखदुःखादिसंसूचनं छिन्नं । वातपित्तश्लेष्मोदयरहितस्य पश्चिमरात्रिविभागे चन्द्रसूर्यधराद्रिसमुद्रमुखप्रवेशनसकलमहीमंडलोप-

छिन्न और स्वप्न ये आठप्रकारके महा निमित्त कहलाते हैं। उनमें सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र और तारा आदि नक्षत्रोंके उदय अस्त होने आदिसे अतीत अनागत फलका कोईसा भी भाग जानलेना आंतरिक्ष नामका निमित्तज्ञान है। पृथ्वीके घन (कठिन) सुषिर [पोला] स्निग्ध रूक्ष [रूखा चिकना] आदि होनेवाले परिणामसे अथवा पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंमें सूत रखकर वृद्धि हानि जय पराजय आदिका ज्ञान होना अथवा भूमिके भीतर रक्खे हुए सोना चांदी आदि पदार्थोंका जान लेना भौम नामका निमित्त ज्ञान है। तिर्यंच मनुष्योंका स्वभाव बात पित्त आदि प्रकृति, रस रुधिर आदि धातु, शरीरका वर्ण गंध, नीचाई ऊंचाई, अंग प्रत्यंगका देखना छूना आदिके द्वारा भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंमें होनेवाले सुख दुखादिकोंको जान लेना अंग नामका निमित्त ज्ञान है स्त्री, पुरुष, गधा, सांप, उल्लू, बंदर कौआ, बकरा, गीदड आदि जीवोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक शुभ अशुभ शब्दोंको सुनकर इष्ट अनिष्ट फलोंको प्रगट करनेवाला स्वर नामका निमत्त ज्ञान है। मस्तक मुंह और ग्रीवा [गरदन] आदि स्थानोमें तिल मस्सा वा अन्य कोई चिन्ह अथवा घाव आदि देखकर तीनों कालोंका हिताहित जानना व्यंजन नामका निमित्त ज्ञान है। हाथकी

[illegible]शुभस्वप्नदर्शनात घृततैलाभ्यक्तात्मीयदेहखरकरभारूढापाग्दिग्गमनाद्यशुभस्वप्नदर्शनादागामिजीवितमरणसुखदुःखाद्यनि-
र्भेदि[illegible] स्वप्न. । स न द्विविधः, छिन्नमालाविकल्पेन । गजेन्द्रसिंहपोतादि[illegible]छिन्नः, पूर्वापरसंबंधानां भावानां दर्शनं माला।
[illegible] महानिमित्तेषु कौशलमष्टांगमहानिमित्तज्ञता ।

अनिमृत्ता निरवविचारगहने चतुर्दशपूर्विण एव विषयेऽनुपयुक्ते पृष्टेऽनधीतद्वादशांगचतुर्दशपूर्वस्य प्रकृष्टश्रुतावरणवीर्यान्तराय-

हथेली पांवके तलवे और वक्षः स्थल छाती आदि शरीरके अंगोमें श्रीवृत्त स्वस्तिक [सांथि-
या] भृंगार वा झारी कलश (घडा) और वज्र आदिके लक्षण देखकर तीनों काल सम्बन्धी
स्थान मान ऐश्वर्य आदि जान लेना लक्षण नामका निमित्त ज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, उपानत्
[जूता] आसन शयन शस्त्र कांटा चूहे आदिके द्वारा छिद्र होना देखकर तीनकाल संबन्धी
लाभ हानि सुख दुख आदि जान लेना छिन्न नामका निमित्तज्ञान है। बात पित्त श्लेष्माके
उदयसे रहित मनुष्यके रात्रिके पिछिले भागमें चंद्रमा सूर्य पृथ्वी पर्वत समुद्र मुखप्रवेशन
(किसी बैल आदिका मुखमें प्रवेश करना) समस्त पृथ्वी मंडलका छिपना आदि शुभ
स्वप्न दिखाई दे अथवा घी तेलसे मर्दन किया हुआ अपना शरीर, गधा अथवा ऊंटपर चढकर
दक्षिण दिशाकी ओर गमन करना आदि अशुभ स्वप्न दिखाई दें तो उन्हें देखकर वा जानकर
आगामी कालमें जीवित रहने मरने वा सुख दुःखादिकको प्रगट करनेवाला स्वप्न नामका
निमित्तज्ञान है। वह स्वप्न नामका निमित्तज्ञान छिन्न और मालाके भेदसे दो प्रकारका है।
हाथी सिंहका बच्चा आदिका देखना छिन्न है और पूर्वापर संबंध रखनेवाले पदार्थोंका देखना
माला है। इन महानिमित्तोंमें कुशल होना अष्टांगमहानिमित्तज्ञता नामकी ऋद्धि है। जो
मुनि चौदह पूर्वोंमें कहे हुए अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंमें रहनेवाले तत्त्वों के (उनमें रहनेवाले भावों)

क्षयोपशमाविभूताऽसाधारणप्रज्ञाशक्तिलाभान्निःसंशयनिरूपणं प्रज्ञाश्रवणत्वं । सा च प्रज्ञौत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा । तत्र जन्मांतरविनयजनितसंस्कारसमुत्पन्नौत्पत्तिकी । विनयेन द्वादशांगानि पठतः समुत्पन्ना वैनयिकी । दुश्चरतपश्चरणबलेन गुरूपदेशमंतरेण समुत्पन्ना कर्मजा । स्वकीयस्वकीयजातिविशेषेण समुत्पन्ना पारिणामिकी चेति ।

परोपदेशमन्तरेण स्वशक्तिविशेषादेव ज्ञानसंयमविधाने नैपुण्यं प्रत्येकबुद्धिता ।

शक्रादिष्वपि प्रतिबंधकेषु सत्स्वप्रतिहततया प्रतिभया निरन्तराभिधानं पररंध्रान्वेषणं च वादित्वं । इति बुद्धिऋद्धिप्रकरणं ।

विचार करने योग्य गहन विषयोंमें उपयुक्त न हों और उसी विषयको कोई पूछे तथा द्वादशांग और चौदह पूर्व उन्होंने पढे भी न हों तो भी श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण बुद्धिकी असाधारण शक्तिका लाभ प्रगट होनेसे उसका संशय दूर कर देना प्रज्ञाश्रवणत्व नामकी ऋद्धि है। वह प्रज्ञा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकीके भेदसे चार प्रकारकी है। उनमेंसे जो प्रज्ञा जन्मांतरके विनयसे उत्पन्न हुए संस्कारोंसे प्रगट होती है उसको औत्पत्तिकी कहते हैं। विनयपूर्वक द्वादशांग पढनेसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी प्रज्ञा है। अत्यंत घोर तपश्चरणकी सामर्थ्यसे गुरुके उपदेशके विना उत्पन्न हुई प्रज्ञा कर्मजा कहलाती है। अपनी अपनी जाति विशेषसे उत्पन्न हुई प्रज्ञा पारिणामिकी कहलाती है। इसप्रकार प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धिका स्वरूप समझना चाहिए। परोपदेशके विना केवल अपनी विशेष शक्तिसे ही ज्ञान और संयमके भेद प्रभेदोंमें निपुणता प्राप्त होना प्रत्येक बुद्धिता नामकी ऋद्धि है। यदि इन्द्रादिक भी आकर अपना विरोधी बना हो तथापि अपनी अपनी बुद्धि और प्रतापके द्वारा उसे निरुत्तर कर देना तथा उसके दोषोंको ढूंढ निकालना वादित्व नामकी ऋद्धि है। इसप्रकार बुद्धि नामकी ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ क्रियर्द्धिः। क्रियाविषया ऋद्धिर्द्विविधा, चारणत्वमाकाशगामित्वं चेति। तत्र चारणाऽनेकविधा, जलजंघातंतुपुष्पपत्रबीजश्रेण्यग्निशिखाद्यालंबनगमनाः। जलमुपादाय वाप्यादिष्वप्कायिकजीवानविराधयंतो भूमाविव पादोद्धारनिक्षेपकुशला जलचारणाः। भूमेरुपर्याऽऽकाशे चतुरंगुलप्रमाणे जंघोत्क्षेपनिक्षेपशीघ्रकरणपटवो बहुयोजनशताऽऽशुगमप्रवणा जंघाचारणाः एवमितरे बोद्धव्याः। पर्यंकावस्था वा निषण्णा वा कायोत्सर्गशरीरा वा पादोद्धारनिक्षेपणा वा ताभ्यामंतरेण वाकाशं गमनकुशला आकाशगामिनः इति क्रियर्द्धिः।

आगे क्रिया ऋद्धिको कहते हैं—क्रिया ऋद्धि दो प्रकारकी है—एक चारणत्व ऋद्धि और दूसरी आकाशगामित्व ऋद्धि। उनमेंसे जल, जंघा, तंतु, पुष्प, पत्र, बीज, श्रेणी और अग्निकी शिखा आदिका सहारा लेकर गमन करना चारणऋद्धि है और वह ऊपर लिखे सहारोंके भेदोंसे ही अनेक तरहकी हो जाती है। बावडी तलाव आदि जलाशयोंमें भी अप्कायिक जीवोंकी विराधना न करते हुए भूमिके समान पैरोंको उठाने रखनेकी कुशलता प्राप्त हो जाना जलका सहारा लेनेवाली जलचारण ऋद्धि है। भूमिके ऊपर चार अंगुल ऊंचे आकाशमें जंघाचारण ऋद्धिवाले चलते हैं वे अपनी जंघाओंको बडी शीघ्रताके साथ उठाने रखनेमें चतुर होते हैं और सैकडों योजन तक बडी शीघ्रतासे पहुंच जाते हैं। इसीप्रकार और क्रिया ऋद्धि वाले भी समझ लेने चाहिये। आकाशगामिनी ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि पर्यंक आसनसे बैठकर अथवा अन्य किसी आसनमे बैठकर कायोत्सर्ग शरीरको धारण कर पैरोंको उठा कर रख कर भी आकाशके ऊपर गमन करनेमें निपुण होते हैं अथवा विना पैरोंको उठाये रक्खे भी आकाशगमन करनेमें निपुण होते हैं। इसप्रकार क्रिया ऋद्धिका वर्णन किया।

आगे विक्रिया ऋद्धिको कहते हैं—विक्रिया ऋद्धिके अनेक भेद हैं और अणिमा, महिमा,

विक्रियागोचरा ऋद्धिरनेकविधा। अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यं, ईशत्व, वशित्वं, अप्रतिघातः, अंतर्धानं, कामरूपित्वमादि। तत्राऽणुशरीरविकरणमणिमा। बिसच्छिद्रमपि प्रविश्याऽऽसीत तत्र चक्रवर्तिपरिवारविभूति सृजेत्। मेरोरपि महत्तरशरीरविकरणं महिमा। वायोरपि लघुतरशरीरता लघिमा। वज्रादपि गुरुतरदेहता गरिमा। भूमौ स्थित्वांऽगुल्यग्रेण मेरुशिखरदिवाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यं प्राप्तिः। अप्सु भूमाविव गमनं भूमौ जल इवोन्मज्जनकरणं प्राकाम्यं, अनेकजातिक्रियागुणद्रव्याधीनं स्वांगाद् भिन्नमभिन्नं च निर्माणं प्राकाम्यं सैन्यादिरूपमिति केचित्। त्रैलोक्यस्य प्रभुत्वमीशित्वं। सर्वजीववशीकरणलब्धिर्वशित्वं। अद्रिमध्ये वियतीव गमनमप्रतिघातः। अदृश्यरूपताऽन्तर्धानं। युगपदनेकाऽऽकाररूपविकरणशक्तिः कामरूपित्वमिति, यथाऽभिलषितैकमूर्त्याकारं स्वांगस्य मुहुर्मुहुः करणं कामरूपित्वमिति वा। इति विक्रियर्द्धिप्रकरणं।

लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, और कामरूपित्व आदि उनके नाम हैं। छोटा शरीर बनानेकी शक्तिको अणिमा कहते हैं। अणिमा ऋद्धिको धारण करनेवाला कमलनालके छिद्रमें भी प्रवेश कर सकता है और वहीं पर चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न कर सकता है। मेरु पर्वतसे भी बड़ा शरीर बनानेकी शक्तिको महिमा कहते हैं। वायुसे भी हलके शरीर बनानेकी शक्तिको लघिमा कहते हैं। वज्रसे भी भारी शरीर बनानेकी शक्तिको गरिमा कहते हैं। पृथ्वीपर ठहरकर भी उंगलीके अग्रभागसे ही मेरु पर्वतका शिखर अथवा सूर्य आदिको छूनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाना प्राप्ति है। पानीमें पृथ्वीके समान चलनेको शक्ति होना तथा पृथ्वीपर पानीके समान उछलने डूबनेकी शक्ति होना प्राकाम्य है। कोई कोई आचार्य अनेक तरहकी क्रिया गुण वा द्रव्यके आधीन होनेवाले सेना आदि पदार्थोंको अपने शरीरसे भिन्न अथवा अभिन्न रूप बनानेकी शक्ति प्राप्त होनेको प्राकाम्य कहते हैं। तीनों लोकोंका प्रभाव प्राप्त हो जाना ईशित्व है। समस्त जीवोंको वश करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाना वशित्व है। पर्वतके भीतर होकर आकाशके समान गमन करने

तपोतिशयर्द्धिः सप्तविधा । उग्रदीप्ततप्तमहाघोरतपोघोरपराक्रमाः घोरब्रह्मचर्याः अघोरगुणब्रह्मचारिण इति । तत्रोग्रतपसो द्विविधाः उग्रोग्रतपसः, अवस्थितोग्रतपसश्चेति । तत्रैकमुपवासं कृत्वा पारणं विधाय द्विदिनमुपोष्य तत्पारणानन्तरं पुनरप्युपवासत्रयं कुर्वंत्येवमेकोत्तरवृद्ध्या यावज्जीवं त्रिगुप्तिगुप्ताः संतो ये केचिदुपवसंति त उग्रोग्रतपसः । दीक्षोपवासं कृत्वा पारणानंतरमेकांतरेण चरतां

की शक्तिको अप्रतिघात कहते हैं। अदृश्यरूप हो जानेकी शक्तिको अन्तर्धान कहते हैं। एक ही साथ अनेक आकार अथवा अनेक रूप बनानेकी शक्तिको कामरूपित्व कहते हैं अथवा अपनी इच्छानुसार अपने शरीरको वार वार एक मूर्त पदार्थके आकाररूप परिणत करने की शक्ति कामरूपित्व कहलाती है। इसप्रकार विक्रिया ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे तप ऋद्धिको कहते हैं। उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप, घोरतप, घोरपराक्रम और घोरब्रह्मचर्य, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारी ये सात प्रकारकी तपोतिशय ऋद्धियां होती हैं। इनमें उग्रतप नामकी ऋद्धि भी उग्रोग्रतप और अवस्थितोग्र तप के भेदसे दो प्रकारकी है। कोई मुनि एक उपवासकर पारणा करें फिर दो उपवासकर पारणा करें फिर तीन उपवासकर पारणा करें इसप्रकार उत्तरोत्तर एक एक अधिक उपवास अपने जीवन पर्यंततक करते रहें तथा मन वचन काय तीनों गुप्तियोंको बराबर पालन करते रहें उनके उग्रोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये। दीक्षा लेते समयका उपवासकर पारणा करें फिर उपवास पारणा उपवास पारणारूपसे बराबर करते रहें। फिर कुछ दिनतक दो उपवास पारणारूपसे करते रहें फिर तीन उपवास पारणारूपसे करते रहें इसप्रकार छह उपवासतक पहुंच जांय। छह छह उपवासके बाद पारणाका अभ्यास हो जानेपर आठ २ उपवास और फिर पारणा करते रहें फिर अनुक्रमसे दश दश फिर बारह बारह उपवासके बाद पारणा करते रहें इसप्रकार करते हुए जीवन

केनाऽपि निमित्तेन षष्ठोपवासे जाते तेन विहरतामष्टमोपवासासंभवे तेनाचरतामेवं दशद्वादशादिक्रमेणाधो न निवर्त्तमानानां यावज्जीवं येषां विहरण तेऽवस्थितोग्रतपसः। महोपवासकरणेऽपि प्रवर्द्धमानकायवाङ्मनोबला दुर्गंधरहितवदनाः पद्मोत्पलादिसुरभिनिःश्वासाः प्रतिदिनप्रवर्द्धमानाऽप्रच्युतमहादीप्तिशरीरा दीप्ततपसः। तप्तायसकटाहपतितजलकणवदाशु शुष्काल्पाऽऽहारतया मलरुधिरादिभाव-परिणामविरहिताभ्यवहरणास्तप्ततपसः। अणिमादिजलचारणाद्यष्टगुणालंकृता विस्फुरितकायप्रभा विविधाक्षीणर्द्धियुक्ताः सर्वौषधि-

पर्यंततक आचरण करते रहें बीचमें किसी भी समय अपने चलते हुए उपवासकी संख्या कम न करें उनके अवस्थितोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये। अनेक बडे बडे उपवास करने पर भी जिनके मन वचन कायका बल सदा बढता रहता है, जिनका मुंह सदा दुर्गंधरहित रहता है जिनका निःश्वास कमलके पुष्पके समान सुगंधित रहता है और जिनके शरीरकी महाकांति प्रतिदिन बढती ही जाती है कभी घटती नहीं उनके दीप्त तप नामकी ऋद्धि कही जाती है जिस-प्रकार तपायी हुई लोहेकी कढाईमें पडी हुई जलकी एक बूंद शीघ्र ही सूख जाती है उसीप्रकार अल्पाहार ग्रहण करनेसे जिनके भोजन करनेपर भी वह अन्न मल रुधिर आदि धातु उपधा-तुरूप परिणत नहीं होता उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये अथवा जो अणिमा आदि तथा जलचारण आदि आठों गुणोंसे परिपूर्ण हैं, जिनके शरीरकी प्रभा देदीप्यमान हो रही है, जो अनेक तरहकी अक्षीण ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं, समस्त औषधि ऋद्धियां जिन्हें प्राप्त हैं जिनके पाणिपात्रपर (हाथपर) आया हुआ सब तरहका आहार अमृतरूप हो जाता है जिनके देवोंके सब इन्द्रों से भी अनंतगुणा बल है और जो आशीविष दृष्टिविष ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये। जो समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले हैं तथा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानसे

प्राप्ता अमृतीकृतपाणिमात्रनिपतितसर्वाहाराः सर्वामरेंद्रेभ्योऽनंतबला आशीविषदृष्टिविषर्द्धिसमन्विताश्तप्ततपसश्च । सकलविद्याधारिणो मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावगतत्रिभुवनगतव्यापारा महातपसः वातपित्तश्लेष्मसंनिपातसमुद्भूतज्वरकासाक्षिशूलकुष्ठप्रमेहादिविविधरोगसंतापितदेहा अप्यप्रच्युताऽनशनादितपसोऽनशने षण्मासोपवासाः,अवमौदर्ये एककवलाहाराः,वृत्तिपरिसंख्याने चत्वरगोचरावग्रहाः रसपरित्यागे उष्णजलधौतौदनभोजिनः विविक्तशयनाऽऽसने भीमश्मशानगिरिगुहादरीकंदरशून्यग्रामादिषु प्रदुष्टयक्षराक्षसपिशाचप्रनृत्यत्प्रेतवेतालरूपविकारेषु परुषशिवारुतानुपरतसिंहव्याघ्रादिव्यालमृगभीषणस्वनघोरचौरादिप्रचलितेष्वभिरुचितावासाः, कायक्लेशेऽतिती-

जो तीनों लोकोंके समस्त व्यापारोंको जानते हैं उनके महातप नामकी ऋद्धि है। वात पित्त श्लेष्माके सन्निपातसे उत्पन्न हुए ज्वर, कास नेत्र शूल कोढ प्रमेह आदि अनेक तरहके रोगोंसे जिनका शरीर संतप्त हो रहा है तथापि जिन्होंने अनशन आदि तपश्चरणोंको नहीं छोडा है। अनशन तपश्चरणमें जो छह छह महीनेका उपवास करते हैं अवमौदर्य तपश्चरणमें जो केवल एक कवलका (एक ग्रास वा गस्सा) आहार लेते हैं, वृत्तिपरिसंख्यान तपश्चरणमें जो आहारके लिए केवल चार घर तक ही जाते हैं। रसपरित्याग में जो गर्म जलमें धोये हुए चांवलोंका ही आहार लेते हैं, विविक्त शय्यासनमें जो भयानक श्मशान, पर्वतोंकी गुफा दरी कंदरा वा सूने गांवोंमें निवास करते हैं अथवा जहांपर अत्यंत दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच आदि प्रेत वेताल आदिका विकृतरूप धारणकर नृत्य कर रहे हैं जहां गीदड रो रहे हैं सिंह बाघ भरे हुए हैं तथा गरज रहे हैं, हाथी चिंघाड रहे हैं अन्य घातक जानवरोंके भीषण शब्द हो रहे हैं और चोर डाकू आदि फिर रहे हैं ऐसे भयानक और एकांत स्थानमें रुचिपूर्वक निवास करते हैं। कायक्लेश तपश्चरणमें जो अत्यंत तीव्र शीत पडनेवाले प्रदेशोंमें खुले मैदानमें निवास करते हैं अत्यन्त तीव्र उष्णतावाले प्रदेशोंमें योग धारण करते हैं।

अशीतातपवर्षानिपातप्रदेशेष्वभ्रावकाशातापनवृक्षमूलयोगग्राहिणः एवमाभ्यंतरतपोविशेषेष्वप्युत्कृष्टतपोऽनुष्ठायिनो घोरतपसः। त एव गृहीततपोयोगवर्द्धनपराः त्रिभुवनोपसंहरणमहीवलयग्रसनसकलसागरसलिलसंशोषणजलाग्निशिलाशैलादिवर्षणशक्तयो घोरपराक्रमाः चिरोषितस्खलितब्रह्मचर्यावासाः प्रकृष्टचारित्रमोहक्षयोपशमात्प्रणष्टदुःस्वप्ना घोरब्रह्मचारिणः, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारिण इति पाठे अघोरं शांतं गुणः ब्रह्मचारित्रं येषां ते अघोरगुणब्रह्मचारिणः। शांतिपुष्टिहेतुत्वाद्येषां तपोमाहात्म्येन डमरेतिमारिदुर्भिक्षवैरकलहवधबंधनरोगादिप्रशमनशक्तिः समुत्पन्ने तेऽघोरगुणब्रह्मचारिणः। इति तपोऋद्धिः।

इसीप्रकार जो अभ्यंतर तपश्चरणोंमें भी विशेष समस्त तपश्चरणोंको उत्कृष्ट रीतिसे पालन करते हैं उनके घोर तप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये व ही घोर तप ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जो ग्रहण किये हुये तपोयोगको बढानेमें तत्पर हैं जिनमें तीनों लोकोंको उपसंहार करने, समस्त पृथिवीमंडलको ग्रास करने, समस्त महासागरोंसे जलको सोखने, जल, अग्नि, शिला और पर्वत आदिकी वर्षा करनेकी शक्ति है उनके घोरपराक्रम नामकी ऋद्धि कही जाती है। जिन्होंने बहुत दिन तक कभी स्खलित न होने वाले ब्रह्मचर्यमें निवास किया है और चारित्र-मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जिनके दुःस्वप्न सब नष्ट हो गये हैं वे घोरब्रह्मचारी गिने जाते हैं। अथवा इस ऋद्धिको धारण करनेवालेका नाम अघोरगुण ब्रह्मचारी भी है। अघोर शांतको कहते हैं जिनका ब्रह्मचारित्र शांत है उनको अघोरगुण ब्रह्मचारी कहते हैं। ऐसे मुनि शांति और पुष्टिके कारण होते हैं इसीलिये जिनके तपश्चरण-के माहात्म्यसे उग्र ईति मारी दुर्भिक्ष वैर कलह वध बंधन और रोग आदिको शांत करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाय उन्हें अघोरगुण ब्रह्मचारी कहते हैं। इसप्रकार तपोऋद्धिका वर्णन किया।

[illegible] [illegible]नात् [illegible], मनोवाक्कायविषयभेदात । तत्र श्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति खेदमंतरेणांत-
र्मुहूर्ते सकलश्रुतार्थ[illegible] मनोबलिनः । मनोजिह्वाश्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमातिशये सत्यंतर्मुहूर्ते सकलश्रुतो-
च्चारणसमर्थाः [illegible] सततमुच्चैरुच्चारणे सत्यपि श्रमविरहिता अहीनकंठाश्च वाग्बलिनः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षादाविर्भूताऽसाधा-
[illegible]मासिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिप्रतिमायोगधारणेऽपि श्रमक्लेशविरहितास्त्रिभुवनमपि कनीयस्यांगुल्योद्धृत्याऽन्यत्र
स्थापयितुं समर्थाश्च कायबलिनः । इति बलर्द्धिः ।

आगे वल ऋद्धिको कहते हैं—मन वचन कायके भेदसे वल तीन प्रकारका है इसलिये उनके अवलंवनसे यह ऋद्धि भी तीन प्रकारकी है। श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कृष्टता होनेपर विना किसी खेदके अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त श्रुतज्ञानके पदार्थों के चिंतवन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना मनोबल नामकी ऋद्धि है। मन नोइंद्रियावरण जिह्वेंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर अन्तर्मुहूर्त में ही समस्त श्रुतज्ञानके पद वाक्योंके उच्चारण करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना तथा सदा ऊंचे स्वरसे उच्चारण करनेपर भी किसी तरहका परिश्रम न होना और कंठ मंद न होना वाग्वल नामकी ऋद्धि है वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जो असाधारण शारीरिक वल प्रगट होता है उस शारीरिक वलसे एकमहीने, चारमहीने और एक वर्ष आदिका प्रतिमा योग धारण करने पर भी जिनके किसी तरहका श्रम और क्लेश नहीं होता तथा जिनमें तीनों लोकोंको भी हाथकी छोटी उंगलीसे उठाकर किसी दूसरी जगह स्थापन करनेकी सामर्थ्य होती है उनके कायबल ऋद्धि कही जाती है। इसप्रकार वल ऋद्धिका वर्णन किया।

आगे औषधि ऋद्धिको कहते हैं। औषधि ऋद्धि आठ प्रकार है—आमर्ष, क्ष्वेल, जल्ल,

अथौषधर्द्धिप्रकरणं । औषधर्द्धिरष्टविधा । असाध्यानामप्यामयानां सर्वेषां विनिवृत्तिहेतुरामर्शक्ष्वेलजल्लमलविट्सर्वौषधिप्राप्ता-ऽऽस्यनिपद्दृष्ट्यविषविकल्पात् । आमर्शः संस्पर्शो हस्तपाद्याद्यामर्शः सकलौषधिं प्राप्तो येषां त आमर्शौषधिप्राप्ताः, क्ष्वेलो निष्ठीवनं, उपलक्षणं चैतत्तेन श्लेष्मलालाविपुटसिंहाणकादयश्चौषधिं प्राप्ता येषां ते क्ष्वेलौषधिप्राप्ताः । स्वेदालंबनो रजोनिचयो जल्लः स औषधिं प्राप्तो येषां ते जल्लौषधिप्राप्ताः कर्णदंतनासिकादिसमुद्भवो मल औषधिं प्राप्तो येषां ते मलौषधिप्राप्ताः । विडुच्चारः शुक्र-मूत्रं चौषधिं प्राप्तो येषां ते विडौषर्द्धिप्राप्ताः । अंगप्रत्यंगनखदंतकेशादिरवयवस्तत्संस्पर्शी वाटवादिः सर्वौषधिं प्राप्तो येषां ते

मल, विट्, सर्वौषधि, आस्यविष और दृष्ट्यविष उसके नाम हैं। इन ऋद्धियोंको धारण करने-वाले मुनियोंके आमर्श आदि संसारके समस्त असाध्य रोगोंको भी दूर कर देते हैं। आमर्श स्पर्शका नाम है जिनके हाथ पैर आदिका स्पर्श ही सब तरहकी औषधियोंको प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसीसे सब रोग दूर हो जाते हैं वे मुनि आमर्शौषधि नामकी ऋद्धिको धारण करने वाले हैं। क्ष्वेल थूकको कहते हैं यह शब्द यहां पर उपलक्षण है थूकसे श्लेष्मा लाला (लार) विपुट (पसीनेकी बूंद) सिंहाणक (नाकका मल) आदि सब लेने चाहिए जिनके थूक लार नाकका मल पसीना आदि सब, सब तरहकी ओषधिरूप परिणत हो जांय उनके क्ष्वेलौषधि ऋद्धि समझनी चाहिये। पसीना आनेसे जो शरीरपर धूल वा मैल जम जाता है उसको जल्ल कहते हैं। जिनके शरीरका वह (पसीनेका) मैल ही सबतरहकी औषधिरूप हो जाय वे मुनि जल्ल ऋद्धिको धारण करनेवाले कहे जाते हैं। जिनके कान नाक दांत आदिसे उत्पन्न हुआ मल ही औषधिरूप हो जाय वे मलौषधि नामकी ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। विट् उच्चार अथवा शुक्र और मूत्रको कहते हैं जिनका शुक्र मूत्र ही औषधिका काम दे वे विडौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। जिनके अंग प्रत्यंग नख दंत केश आदि शरीरके अवयव अथवा उन अवयवोंको

सर्वौषधिप्राप्ताः । उग्रविषसंपृक्तोऽप्याहारो येषामास्यगतो निर्विषो भवति, यदीयवचःश्रवणाद्वा महाविषपरीता अपि निर्विषा भवन्ति त आस्यविषाः । येषामालोकनमात्रादेवातितीव्रविषदूषिता अपि विगतविषा भवन्ति ते दृष्ट्यविषाः । अथवा आशीविषमविषं येषां ते आश्यविषाः, दृष्टिविषाणां विषमविषं येषां ते दृष्ट्यविषाः इत्यौषधर्द्धिप्रकरणं ।

अथ रसर्द्धिप्रकरणमुच्यते रसर्द्धिप्राप्ताः षड्विधाः,आस्यविषाः, दृष्टिविषाः, क्षीरास्राविणःमध्वास्राविणः,सर्पिरास्राविणः, अमृतास्राविणश्चेति । प्रकृष्टतपोबला यतयो यं ब्रुवते म्रियस्वेति स तत्क्षणादेव महाविषपरीतो म्रियते त आस्यविषाः । आशीर्विषा

स्पर्श करनेवाली वायु ही समस्त औषधियोंका काम दे वे सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं । उग्र विषसे मिला हुआ भी आहार जिनके मुखमें जानेपर विषरहित हो जाय अथवा जिनके वचनोंको सुनकर महाविषमें डूबे हुए मनुष्य भी विषरहित हो जाय वे आस्याविष ऋद्धिवाले मुनि कहलाते हैं । जिनके दर्शन करनेमात्रसे ही अत्यंत तीव्रविषसे दूषित हुए जीव विषरहित हो जांय वे दृष्टयविष ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि हैं । अथवा जिनके लिए आशीविष भी विष न हो वे आश्यविष ऋद्धिवाले हैं और जिनकी आंखोंमें विष है जिनको देखलें वे मर जांय ऐसे दृष्टिविष जीवोंका विष भी जिनके लिये विष न हो वे दृष्टयविष ऋद्धिको धारण करनेवाले हैं इसप्रकार औषधि ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ ।

आगे रसऋद्धिको कहते हैं । रसऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि छह प्रकारके हैं—आस्यविष, दृष्टिविष, क्षीरास्रावी मध्वास्रावी, सर्पिरास्रावी और अमृतास्रावी । उत्कृष्ट तपश्चरणके बलसे "तू मर जा" कह दें तो वह उसीसमय महाविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनियोंको आस्यविष ऋद्धिधारी मुनि कहते हैं । कोई कोई आचार्य इस ऋद्धिका नाम आशीर्विष ऋद्धि कहते हैं इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर लिख चुके हैं क्योंकि ऐसे मुनियोंके बुरा आशीर्वाद

इति केचित्तत्राप्ययमेवार्थस्तदाऽऽशासनादेव म्रियमाणत्वात् । उत्कृष्टतपसो यतयः क्रुद्धा यमीक्षंते स तदैवोग्रविषपरीतो म्रियते ते दृष्टिविषाः । विरसमप्यशनं येषां निक्षिप्तं क्षीररसवीर्यपरिणामितां भजते, येषां वा वचनानि क्षीरवत्क्षीणानां तर्पकाणि भवन्ति ते क्षीराऽऽस्राविणः । येषां पाणिपुटे पतित आहारो नारसोऽपि मधुररसवीर्यपरिणामिता भजते येषां वा वचांसि श्रोतॄणां दुःखार्दितानामपि मधुरगुणं पुष्णाति ते मध्वाऽऽस्राविणः येषां पाणिपात्रगतमन्नं रूक्षमपि सर्पिरसवीर्यविपाकमवाप्नोति, सर्पिरिव येषां भाषितानि प्राणिना सतर्पकाणि भवन्ति ते सर्पिरास्राविणः । येषां करपुटप्राप्तं भोजनं यत्किंचिदमृतमास्कंदति, येषां वा व्याहृतानि प्राणिनामृतवदनुग्राहकाणि भवन्ति । इति रसर्द्धिप्रकरणं ॥

देनेसे ही वह मर जाता है। उत्कृष्ट तपश्चरणवाले मुनि क्रोधित होकर जिसको देख लें वह उसीसमय उग्रविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनि दृष्टिविष ऋद्धिधारी कहलाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस भोजन भी दूधकी शक्तिवाला हो जाय अथवा जिनके वचन दूधके समान दुर्बल और कृश मनुष्योंको संतुष्ट कारक हों, वे क्षीरास्रवी ऋद्धिवाले गिने जाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसकी शक्तिवाला (मीठा पुष्टिकारक) हो जाय अथवा जिनके वचन सुननेवाले अत्यंत दुखी जीवोंको भी मधुर गुणरूप परिणत हो जांय उन मुनियोंको मध्वास्रावी ऋद्धिधारी कहते हैं। जिनके हाथपर आया हुआ रूखा अन्न भी घीके समान रसवाला और शक्तिशाली हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन घीके समान प्राणियोंको तृप्त करनेवाले हों वे सर्पिरास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं। जिनके हाथ पर आया हुआ कुछ भी भोजन अमृतके समान वा अमृतरूप हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन अमृतके समान प्राणियोंका उपकार करें वे अमृतास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं। इसप्रकार रसऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ चेत्रर्द्धिप्राप्ता द्वि वा, अक्षीणमहानसः, अक्षीणमहालयश्चेति। लाभांतरायक्षयोपशमप्रकर्षप्राप्तेभ्यो यतिभ्यो भिक्षा दीयते ततो भोजनाश्चकधरस्कंधावारोऽपि यदि भुंजीत तद्दिवसे नान्नं क्षीयते तेऽक्षीणमहानसाः। अक्षीणमहालयलब्धि प्राप्ता यतयो यत्र हस्तचतुष्टयमात्रावासे वसंति तत्र देवमानुषतिर्यंचो यः सर्वेऽपि निवसेयुः परस्परमबाधमानाः सुखमासते तेऽक्षीणमहालया इति।

एवमुक्तं तपःसामर्थ्यं, तपस्विभिरध्युषितानि क्षेत्राणि तीर्थत्वमुपगतानि। परस्परविरोधिनोऽपि प्राणिनो जातिविरोधं कारण-विरोधं विमुच्य ते शांततरंगा भवन्ति तपसःसामर्थ्यात्। किं बहुना तपः किं न साधयत्यपि तु सर्वमेव साधयति। तदुक्तम्—

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

आगे क्षेत्रऋद्धिको कहते हैं। क्षेत्रऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि दो प्रकारके हैं—एक अक्षीणमहानस और दूसरे अक्षीणमहालय। लाभांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम प्राप्त होनेवाले जिन मुनियोंको आहार दिया जाय और उस बचे हुए भोजनमेंसे चक्रवर्तीकी सब सेना भी भोजन कर जाय तो भी उस दिन वह भोजन कम न हो ऐसे मुनिराज अक्षीणम-हानस ऋद्धिको धारण करनेवाले कहलाते हैं। अक्षीणमहालय ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जहां विराजमान हों और वह स्थान चाहे चार हाथ लंबा चौडा ही हो, तो भी उसमें समस्त देव मनुष्य तिर्यंच समाजांय परस्पर किसीको बाधा न हो, सब सुखपूर्वक बैठ जांय वे अक्षीणमहालय ऋद्धि धारी गिने जाते हैं। इसप्रकार क्षेत्र ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ*

इसप्रकार तपश्चरणकी सामर्थ्य निरूपण की। तपस्वी लोग जिस जिस स्थानमें निवास करते हैं वे तीर्थ कहलाते हैं। तपश्चरणके प्रभावसे परस्पर विरोध रखनेवाले जीव भी अपना जन्मसे उत्पन्न वैर अथवा किसी कारणसे उत्पन्न हुआ वैर छोडकर अपने हृदयको शांत बना

---

* बुद्धि १८ क्रिया ६ विक्रिया ११ तप ७ बल ३ औषध ८ रस ६ क्षेत्र २ सब मिलकर ६४ ऋद्धियां होती हैं।

तपो यस्य न विद्यते स चंचापुरुषो यथा, मुंचंति तं सर्वे गुणा:, नासौ मुंचति संसारं, उपधित्याग: पुरुषहितो यतो यतो परिग्रहाद-पेतस्ततस्ततः संयतो भवति। ततोऽस्य खेदो व्यपगतो भवति। परिग्रहपरित्याग एवैहिकामुत्रिकपरमसुखकारणं निरवद्यमनःप्रणिधानं पुण्यनिधानं। परिग्रहो बलवती सर्वदोषप्रसवयोनि। नत्वस्या उपधिभिस्तृप्तिरस्ति सलिलैरिव सलिलनिधेर्वडवायाः। उक्तं हि—

अनेकाऽऽधेयदुष्पूर आशागर्त्तश्चिरादहो। चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते ॥

अपि च—

कः पूरयति दुष्पूरमाशागर्त्तं दिने दिने। यत्रास्ते प्रस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते ॥

लेते हैं। बहुत कहनेसे क्या? तपश्चरणसे क्या सिद्ध नहीं होता? किंतु सब कुछ सिद्ध हो जाता है यही बात शास्त्रोंमें भी लिखी है—"यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्" अर्थात् जो दूर हो जिसका आराधन करना कठिन हो और जो बहुत दूरपर हो वह सब तपश्चरणसे सिद्ध हो जाता है। इस संसारमें तपश्चरण ही ऐसा है, जिसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जिसके तपश्चरण नहीं है वह चंचापुरुषके (केवल पुरुषके आकारके) समान है उसे समस्त गुण तो छोड देते ही हैं परंतु वह संसारको कभी नहीं छोड सकता।

इस संसारमें उपधियोंका (अंतरंग बहिरंग परिग्रहोंका) त्याग कर देना ही मनुष्यका हित करनेवाला है। जैसा जैसा यह परिग्रहोंको छोडता जाता है वैसा ही वैसा इसका संयम बढता जाता है और संयमकी वृद्धि होनेसे इसका खेद दूर होता है। परिग्रहोंका त्याग करना ही इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवाला है इसीसे मन सब तरहके दोषोंसे रहित होकर स्थिर होता है और यही परिग्रहका त्याग पुण्यका खजाना है। यह परिग्रह समस्त दोषोंको उत्पन्न

परिग्रहसंग एव दुःखभयादिकं जनयतीति उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय 'ममेदं' भावाऽभाव आकिंचन्यं । शरीरादपि निर्ममत्वात्परमनिर्वृतिमवाप्नोति । यथा यथा पोषयति तथा तथा लांपट्यं तज्जनयति,तपस्यप्यनादरो भवति शरीरादिषु कृताऽभिष्वंगस्य संसारे सर्वकालमभिष्वंग एव । मयाऽनुभूतांगना सुरूपेति सविलासेति कलागुणविशारदेति स्मरणं, तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलाधिवासितस्त्रीसंसक्तशयनाऽऽसनमित्येवमादि पूर्वरतानुचिंतनवर्जनं परिपूर्णब्रह्मचर्यमित्याख्यायते । ब्रह्मचर्यमनुपालयंतं हिंसादयो दोषा न संस्पृशंति । नित्याऽभिरतगुरुकुलवासमधिवसंति गुणसंपदः । वरांगनाविलासविभ्रमविधेयकृतः पापैरपि विधेयीक्रियंते । अजितेंद्रियता हि लोके प्राणिनामपमानविधात्री ।

करनेवाली जबर्दस्त योनि है । जिसप्रकार पानीसे समुद्रकी बडवानल अग्नि बुझती नहीं उसी-प्रकार इन परिग्रहोंसे यह जीव कभी तृप्त नहीं होता है । लिखा भी है– " अनेकाधेयदुष्पूर आशागर्तश्चिरादहो । चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते" अर्थात् यह बडे आश्चर्यकी बात है कि यह आशारूपी गढा जो कि अनेक दिनोंमें भी संसारमें रहनेवाले समस्त पदार्थोंसे भी नहीं भरा जाता वह एक त्यागसे (समस्त पदार्थोंका त्याग कर देनेसे) क्षणमात्रमें भर जाता है । तथा "कः पूरयति दुष्पूरमाशागर्तं दिने दिने । यत्रास्ते अस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते" अर्थात् "किसीसे न भरा जानेवाला इस आशारूपी गढ़ेको भला कौन भर सकता है क्योंकि इसमें प्रतिदिन डाला हुआ समस्त आधेय ही आधार बन जाता है भावार्थ–ज्यों ज्यों आशाएं पूर्ण की जाती हैं त्यों त्यों वे और बढती जाती हैं ।" इसलिये परिग्रहोंका समागम ही इस संसारमें दुःख और भय आदिकोंको उत्पन्न करनेवाला है ।

प्राप्त हुए शरीरादिकोंमें संस्कारोंको दूर करनेके लिए " यह मेरा है " ऐसे परिणामोंका अभाव होना आकिंचन्य है । शरीरादिकोंमें ममत्व बुद्धिका अभाव होनेसे परम वैराग्य प्राप्त

इत्येवमुत्तमक्षमाया उत्तममार्दवस्योत्तमार्जवस्योत्तमशौचस्योत्तमसत्यस्योत्तमसंयमस्योत्तमतपस उत्तमत्यागस्योत्तमाकिंचन्यस्योत्तमब्रह्मचर्यस्य तत्प्रतिपक्षाणां च गुणदोषविचारपूर्विकायां क्रोधादिनिवृत्तौ सत्यां तन्निबंधनकर्मास्रवाऽभावान्महान् संवरो भवति।

होता है। जैसा जैसा यह शरीर पुष्ट किया जाता है वैसी वैसी ही इससे लंपटता उत्पन्न होती रहती है और वैसा वैसा ही तपश्चरणमें अनादर उत्पन्न होता रहता है। शरीरादिकोंमें ममत्व रखनेवाले पुरुषके संसारमें भी सदा ममत्व बना ही रहता है।

"मेरी भोगी हुई स्त्री बडी रूपवती थी सबतरहके विलासोंमें निपुण थी, और कलागुणोंमें चतुर थी इसप्रकारके स्मरणका त्याग करना, स्त्रियोंकी कथाओंके सुननेका त्याग करना तथा यह शयन वा आसन उपभोगके समय जिसके शरीरमें अनेक तरहके सुगंधित पदार्थ लग रहे हैं ऐसी स्त्रीसे संबंध रखनेवाला है इसप्रकारके पूर्व भोगे हुए उपभोगोंके चिंतवनका त्याग करना परिपूर्ण ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको हिंसा आदि कोई भी दोष नहीं छू सकते, गुणरूपी संपदाएं सदा तल्लीन होकर गुरुकुलमें निवास करनेवाले उस ब्रह्मचारीमें ही आकर निवास करती हैं। जो वेश्याओंके विलास और हावभावोंसे दूर रहता है वह पापोंसे भी बहुत दूर रहता है। संसारमें जितेंद्रिय न होना ही प्राणियोंका अपमान कराने वाला है।

इसप्रकार उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्यके गुण तथा इसके प्रतिपक्षियोंके दोषोंका विचार करनेसे क्रोध मान आदि विकारोंका त्याग हो जाता है और क्रोधमान आदि

तत्त्वार्थराद्धान्तमहापुराणेष्वाचारशास्त्रेषु च विस्तरोक्तम् ।
आख्यात्समासादनुयोगवेदी चारित्रसारं रणरंगसिंहः ॥

इति सकलाऽऽगमसंयमसंपन्नश्रीमज्जिनसेनभट्टारकश्रीपादपद्मप्रसादाऽऽ
चतुरनुयोगपारावारपारगधर्मविजयश्रीमच्चामुण्डरायमहाराजविरचि
भावनासारसंग्रहे चारित्रसारेऽनगारधर्मः समाप्तः ।

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

विकारों का त्याग होनेसे क्रोधादिके द्वारा आनेवाले कर्मोंके आस्रवका अभाव हो जाता है तथा आस्रवका अभाव होनेसे महान् संवर होता है ।

चारों अनुयोगों के जानकार तथा रणांगणमें सिंहके समान ऐसे वीर महाराजा चामुंडरायने जिसका वर्णन तत्त्वार्थसूत्र सिद्धांत ग्रंथ और महापुराण आदि आचार ग्रंथों में वडे विस्तारके साथ कहा है ऐसे चारित्रसारको संक्षेपसे निरूपण किया है ।

इसप्रकार समस्त शास्त्र और संयमको धारण करनेवाले श्रीमज्जिनसेन भट्टारकके श्रीचरण कमलोंके प्रसाद से चारो अनुयोगरूपी महासागरके पार पहुंचनेवाले और धर्मके विजयका झंडा उडानेवाले श्रीमच्चामुण्डराय महाराजके बनाये हुए भावनासार संग्रहके अंतर्भूत चारित्रसारमें मुनिधर्मका वर्णन समाप्त हुआ ।

इसप्रकार यह ग्रंथ पूर्ण हुआ ।

वीरमार्तंड चामुण्डरायदेव विरचित

चारित्रसार

(हिन्दी भाषा सहित समाप्त)

वीरमार्तंड चामुण्डरायदेव विरचित

चारित्रसार

(हिन्दी भाषा सहित समाप्त)